सविता

अथवा

शेष का परिचय

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

मुख्य वितरक

मूल्य : पाँच रुपए पचास नए पैसे
प्रकाशक : भारती भाषा प्रकाशन
शाहदरा, दिल्ली
मुद्रक : शुक्ला प्रिंटिंग एजन्सी द्वारा
लव [illegible] प्रेस, दिल्ली

भूमिका

स्वर्गीय शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की गणना एशिया के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में है। यों तो शरत् बाबू के प्रत्येक उपन्यास के साथ 'उत्तमोत्तम' विशेषण लगा हुआ है, परन्तु 'सविता' की उनमें अपनी खास विशेषता है।

प्रस्तुत अनुवाद बंगला के श्रेष्ठ उपन्यास 'शेष का परिचय' का हिन्दी अनुवाद है। उनके विषय में हमें कुछ नहीं कहना है। पाठकगण मूल बंगला पुस्तक से मिलान करके स्वयं इसका निर्णय कर सकते हैं।

हमने इस अनुवाद में मूल लेखक के भावों को सुन्दर, सरल हिन्दी भाषा में लाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। इसमें हमें कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय पाठकों पर है।

— अनुवाद

१

तारकनाथ और राखाल केवल तीन महीने के ही साथ-सङ्गत से घनिष्ठ मित्र हो गये। जब तीन बज गये और तारक अभी तक नहीं आया तब रखाल के हृदय में घबराहट और बेचैनी उत्पन्न होने लगी। भवानीपुर में आज स्त्रियों की एक सभा होने वाली है। वहाँ पर बहुत से शिक्षित परिवारों की लड़कियाँ इकट्ठी होंगी और इस समय राखाल वहाँ के लिए चल देने को व्याकुल होता जा रहा था। जाने के सब प्रबन्ध कर चुका था। सफेद कुर्ता, धोती और सिल्क का साफा पलङ्ग पर तैयार रखे थे और पास ही ताजा पालिश किया हुआ जूता चमचमा रहा था। मेज पर रखी हुई सोने की रिस्टवाच भी सोने की चेन के साथ चमचमा रही थी।

स्टोव पर चाय का पानी आवश्यकता से अधिक औट चुका था, परन्तु तारक अभी तक आया नहीं था। द्वार पर किसी के आने की आहट सुनने के लिए कान अधीर हो रहे थे। सभा में जाने की व्याकुलता और मित्र का अभाव इन दोनों माया-चक्रों के मध्य इस समय राखाल का हृदय चक्कर काट रहा था। ताला लगाकर जा भी नहीं सकता था।

कई बार वह द्वार तक गया, सड़क पर भी चप्पल पहन कर हो आया, फिर लौटा और अकेले ही चाय पीने लगा। सोचा—केवल इस प्याले के समाप्त होने तक ही राह देखता हूँ, फिर चल पड़ूँगा। अब और अधिक भी भला क्या करूँ? कौन ऐसी राय लेनी है; यदि आवश्यकता होती तो साहब समय से पहले ही आ धमकते, न होगा तो कल उनके डेरे पर ही जाऊँगा। ऐसे विचार, चाय की प्याली ओठों तक पहुँचते-पहुँचते मस्तिष्क में चक्कर काटने लगे।

राखाल अपने को संन्यासी कहता है क्योंकि वह दुनिया में एकाकी है और वह ठीक प्रकार से यह अनुमान भी नहीं लगा सकता कि उसका परिवार

कैसा था और कब किस प्रकार उसका सम्बन्ध उससे टूट गया ? वह अपने परिवार के विषय में कुछ बतलाना ठीक नहीं समझता। पटलडांगा में एक किराये के मकान में वह एक कमरे में रहता है। कमरे में कुछ सील होते हुए भी वायु और प्रकाश आता है। राखाल शौकीन तबीअत का आदमी है इसलिए उसके कमरे में एक उम्दा पलंग, मेज, कुर्सी और दो आलमारियां हैं। पोशाक उसकी सुन्दर ही रहती है। बिजली का पंखा भी उसने अपने कमरे में लगा रक्खा है। तात्पर्य यह कि राखाल के पास शौकीनी की चीजों का अभाव नहीं है।

राखाल का काम एक वृद्ध दासी करती है और उसे वह नानी कहकर बुलाता है। वृद्धा उसे स्नेह करती है और बर्तन रगड़ने से लगा कर सामान लाने तक का काम उसी के ऊपर है। वेतन के अलावा राखाल उसे अच्छा पुरस्कार भी देता है। सवेरे राखाल लड़कों को पढ़ाता है और शेष समय सभाओं के लिए देता है। उसका स्थान राजनैतिक न होकर साहित्यिक है। राजनीति का अशान्त वातावरण उसे भाता नहीं। वह छोटी कक्षा के लड़कों को ही पढ़ाता है। नौकरी पाने के अपने प्रारम्भिक परिश्रमों में असफल हो जाने पर अब उसने परिश्रम करना ही त्याग दिया है।

साहित्यिक तो वह है, परन्तु किसी पत्र-पत्रिका में उसका कोई लेख दिखाई नहीं पड़ता। रात-रात भर जाग कर वह लिखता है, फिर उसका वह क्या करता है, यह भेद कोई नहीं जानता। वह किस कक्षा तक पढ़ा है, जब कोई आदमी इस प्रकार की जानकारी उससे करना चाहता है तो उसका चेहरा इस प्रकार का बन जाता है कि मिडिल से लगाकर डॉक्ट्रेट तक किसी भी डिगरी का अधिकारी उसे समझा जा सकता है। उसकी आलमारियों में काव्य, साहित्य, दर्शन, विज्ञान सभी विषयों पर पुस्तकें भरी पड़ी हैं। प्राचीन अथवा वर्तमान, डाक्टरी हो या विज्ञान—सभी विषयों पर वह पूर्ण अधिकार के साथ बातें करता है। बड़े-बड़े ग्रन्थों और उनके लेखकों के नाम पूर्ण परिचय के साथ उसे कण्ठस्थ हैं। होमर, स्पेंसर और ड्रक आर्थर के काव्यों की तुलनात्मक समालोचना और भारतीय दर्शनों के सामने उनकी तुच्छता का वर्णन जब वह करता है तो तत्वों के स्पष्टिकरण में अपने पूर्ण पाण्डित्य का प्रदर्शन कर डालता है। बोर-युद्ध का कौन सेनापति था, यह सब रहस्य उसके लिए

खेल है। भारतीय गोल्डस्टैंडर्ड, रिवर्स कौंसिल और मुद्रा विषयक प्रश्नों पर वह अपनी बहुत गम्भीर सम्मति दे सकता है, और देता भी है। यही नहीं, न्यूटन के विचार किस दिन आइंसटाइन के विचारों से मेल खाकर एक हो जायेंगे, यह भविष्य-वाणी वह बड़े गर्व से करता है। उसकी बातें सुनकर कोई हँस देता है और कोई श्रद्धा से शिष्य हो जाता है, इतना अवश्य है कि राखाल के परोपकारी होने में किसी को शक नहीं और यह सभी जानते हैं कि वह अपने भरसक दूसरों की सहायता करने में कभी पिछड़ता नहीं।

बहुत से घरों के द्वार राखाल के लिए चौबीसों घण्टे खुले रहते हैं। उसे बेगार करने में मजा आता है। बड़ी आयु वाली स्त्रियां राखाल से विवाह करने के लिए नित्य ही आग्रह करती हैं, परन्तु राखाल इसके उत्तर में कान पकड़ कर कवल इतना भर कह देता है—'कुछ और कहिए न ? ऐसी सम्मति न दीजिए। मैं अपनी आज की दशा में बहुत सुखी हूं।' राखाल के हितैषी उसकी इस प्रवृत्ति से दुःखी हैं, लेकिन उसके इस पागलपन को छुड़ाने के लिए आज तक किसी भी हितैषी ने यह नहीं कहा—'भाई राखाल, हमने एक सुन्दर युवती तुम्हारे विवाह के लिए ठीक कर दी है। इस विवाह की सभी व्यवस्था हो चुकी है और तुम्हें अब शादी करनी ही पड़ेगी।' हितैषियों में इतना अधिकार कहां था और कोरी सहानुभूति पर राखाल भला पिघलता भी क्यों ? इसी प्रकार राखाल अपनी जीवन-नौका को खे रहा था। राखाल अकेला है और भविष्य भी उसे ऐसा ही दिखाई देता है कि स्त्रियां इसकी इस कमी का सहानुभुति के साथ समर्थन करती है, इसी प्रकार वह उनके आग्रह को भी पूरी सहानुभूति के साथ स्वीकार करता हैं, और उनकी बेगारें करने में पीछे नहीं हटता।

चाय भी समाप्त हो गई लेकिन तारक अभी तक आया नहीं। राखाल कपड़े पहन कर जैसे ही दरवाजे की ओर बढ़ रहा था वैसे ही तारक सामने से आता हुआ दिखाई दिया। निकट आने पर राखाल ने कहा—'क्यों जी, इसी को आवश्यक सलाह कहते हैं ?'

'क्या नहीं जाना है ?'

'जी नहीं, मैं तो शाम तक यहीं बैठा रहूँगा।'

'परन्तु अभी सन्ध्या दूर है, बैठो न !'

'नहीं मित्र, अब कल सलाह होगी।' और साफा गर्दन में डाल लिया।

तारक गम्भीर स्वर में बोला—'तब तो समझिए सम्मति नहीं होगी ! कल तड़के मैं बहुत दूर चला जाऊंगा। फिर कभी--नहीं, ईश्वर ऐसा न करे, शायद बहुत दिनों तक मिलन ही न हो सके।'

'क्या मतलब ?' राखाल ने विस्मित होकर कुर्सी पर बैठते हुए पूछा।
'तात्पर्य यह कि बर्दवान जिले में, एक नये स्कूल की हैडमास्टरी मिल गई है। मुझे वहां नौकरी करने के लिए जाना पड़ेगा।'

'किसी प्राइमरी स्कूल मे।'

'नहीं हाईस्कूल में।'

'वेतन क्या मिलेगा ?'

'नब्बे रुपया महीना और एक छोटा-मोटा घर।'

'हो ! हो !' करके राखाल हंस पड़ा और बोला—'यह सब धोखा जान पड़ता है। वह रकम सौ से भी अधिक है। क्या संसार के और सब विद्वान् मर गये जो तुम्हारे पास ···?'

'अवश्य मर गये होंगे। फिर गंवारू गांव है, कौन विद्वान् जाने को प्रस्तुत होगा।'

राखाल हंस पड़ा और मुस्कराते हुए बोला—'भाई जाने को प्रस्तुत क्यों नहीं होगा ? सौ रुपये मिलने पर तो आदमी यमराज के यहां भी जा सकता है, बर्दवान की तो बात ही क्या है ?' इतना कहकर घड़ी की ओर देखा। तीन बजकर दस मिनट हो गये थे। 'यह सब पागलपन है मित्र ! कल सवेरे विचार करेंगे, देखूंगा कि उन्होंने क्या लिखा है ? यह सब धोखेबाजी है। अच्छा, अब तो मैं चलता हूं।' कह वह उठ खड़ा हुआ।

'मित्र, केवल दस मिनट और ठहरो। उन्होंने झूठ लिखा या सच, परन्तु मैं आज रात की गाड़ी से अवश्य जाऊंगा।'

'क्यों ? क्या मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है ?'

तारक ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया—'यदि किसी दिन तुमसे न मिलूं तो मन अधीर हो जाता है। कुछ आदत-सी बन गई है मेरी।' तारक ने

गम्भीरता से कहा।

'और शायद मेरी नहीं !' इतना कहकर राखाल चुप हो गया।

'यदि जीवित रहा तो बड़े दिन की छुट्टियों में मिलन होगा।' बात का सिलसिला बदलते हुए तारक ने अपनी अँगूठी मेज के एक कोने पर रखकर कहा—मुझे बीस रुपये की आवश्यकता है...।' धीरे से सिर झुकाकर विनीत भाव से कहा।

'यानी यह अँगूठी गिरवी रख रहे हो।' बीच ही में राखाल बोल उठा और अँगूठी उठाकर खिड़की के बाहर फेंकने ही वाला था कि तभी तारक जल्दी से हाथ पकड़कर बोला—'गिरवी क्यों मित्र ! इसको बेचने पर भी क्या कोई दस रुपये दे सकेगा ? जाने से पूर्व यह अपना स्मृति-चिह्न तुम्हारी अँगुली में पहिनाऊँगा।' इतना कहकर अँगूठी अँगुली में पहना दी और फिर कहने लगा—'बस ! अब तुम जा सकते हो। मैंने दस मिनट के लिए कहा था और पन्द्रह मिनट ले लिये।'

राखाल के मस्तिष्क में महफिल के चित्रों के स्थान पर अब दूसरे ही विचार अंकित हो चुके थे। दोनों मित्रों की आकृति बड़े शीशे में साफ दिखाई दे रही थी। राखाल अपने मध्यम कद, गौर वर्ण, गोल कपोल और सरल स्वभाव से भला आदमी दिखाई पड़ता है। तारक पतला, दुबला, कद लम्बा, श्याम वर्ण आदमी देखने में बहुत शक्तिशाली है। उसके नेत्रों में एक विशेष प्रकार का आकर्षण है। आदमी विश्वासी है, सुख-दुःख दोनों में विचलित न होने की योग्यता अपने में रखता है। आयु लगभग अठारह साल की होगी—राखाल से दो-तीन साल कम।

'तुम्हारा जाना ठीक नहीं है।' राखाल ने कड़े स्वर में कहा।

'क्यों ?' तारक गम्भीर मुद्रा किये खड़ा था।

'क्यों, क्या ? हाई स्कूल के दसवें दर्जे को पढ़ाना क्या कोई आसान काम है ? इतनी योग्यता होनी चाहिए कि उन्हें उत्तीर्ण करा सको। क्या...।'

'उन लोगों में योग्यता नहीं, कालेज की डिगरियाँ माँगी थीं। सो मैंने पेश कर दीं और कमेटी ने उनके आधार पर मुझे हेडमास्टरी के पद पर नियुक्त कर दिया। लड़कों को पढ़ाने का उत्तरदायित्व मुझ पर और पास कराने का

उन पर रहेगा ।'

'जो !' गम्भीरता से राखाल बोला—'तुम मुझसे बराबर झूठ बोलते रहे कि तुम पढ़ते-लिखते ही नहीं हो ! भला ऐसा तुमने क्यों किया ?'

तारक ने हँसकर कहा—'यह तो मैं अब भी कहता हूँ कि केवल डिगरियाँ ही तो ले ली हैं । पढ़ाई समाप्त करते ही नौकरी की खोज में लग गया । पढ़ने के लिए समय ही कहां मिला ? कलकत्ते में आकर तुम्हारी दया से दो समय भोजन का सहारा मिल गया ।'

'तारक ! देखना यदि फिर कभी तुमने····' पूरी बात भी समाप्त न होने पाई थी कि शीशे में एक तीसरा नारी प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर हुआ । यह एक अपरिचित स्त्री थी जिसकी आयु यौवन को लाँघकर आगे बढ़ चुकी थी, परंतु यह पहिचानना उतना सरल नहीं था जितना कि यह सत्य था । गौर वर्ण, शरीर कुछ दुबला, शरीर पर सुन्दर साड़ी, दो-चार गहने, माथे पर सिन्दूर बिन्दु—नारी और नारी का एक विचित्र आकर्षण उसमें झलकता था । क्षण भर के लिए दोनों मित्र मौन नवागन्तुक के मुख को देखते रहे और फिर अचानक राखाल कुर्सी छोड़कर बोला—'यह क्या ? मेरी नई मां !' और महिला के पैरों पर सिर रखकर इस प्रकार लेट गया मानो कितने ही दिन का भटका हुआ नमस्कार आज अपनी पूर्ण श्रद्धा को उड़ेल देना चाहता है ।

'बेटा राजू !' महिला ने राखाल की ठोड़ी थामकर उठाते हुए कहा और स्वयं कुर्सी पर बैठ गई । राखाल और उसका मित्र दोनों सामने धरती पर बैठ गये ।

'तुरन्त नहीं पहिचान सका मां !' राखाल ने कहा ।

'न पहिचानने की तो आशा ही थी बेटा ।'

'मैं सोच ही रहा था कि वैसे ही आपका लम्बा केशजाल दिखलाई पड़ गया । रंगीन आंचल में से झलकते हुए केश आपके पैरों की एड़ियों को चूम रहे हैं । उन दिनों की स्मृति कितनी स्पष्ट है कि जब वे लोग कहा करते थे—'इन बालों में से थोड़े बाल लेकर देवी की मूर्ति को सजाना चाहिए । आप भूली न होंगी मां वह बात ।'

मां हँसने लगीं और बातें बदलकर बोलीं—'यही तुम्हारे मित्र है न राजू ?

क्या नाम है इनका ?'

'तारक भट्टाचार्य।' राखाल बोला—'लेकिन आप कैसे जान गईं कि यह मेरे मित्र हैं ?'

उन्होंने इस प्रश्न को भी दबा रखा, कहा—'सुनती हूँ तुम लोगों में बहुत प्रेम है।'

'हाँ।' राखाल ने कहा—'परंतु यह आज भर का ही अतिथि है। बर्दवान जिले के किसी गाँव में हैडमास्टर बनकर जा रहा है। मैं इसे समझाता हूँ कि एम० ए० पास करके मास्टरी की क्या चिन्ता करते हो, किन्तु इसे विश्वास नहीं हो रहा है कि यहाँ इतने बड़े कलकत्ता शहर में इसे कोई काम मिल जायगा। कितनी बुरी बात है माँ ?'

नई माँ ने मुस्कराकर कहा—'तुम्हारी बात पर विश्वास न करना कोई बुरी बात नहीं लेकिन क्या तारक बाबू आप सचमुच चले ही जायँगे ?

'परंतु बात तो बुरी कुछ और ही हुई माँ ! राखालराज का इतना लम्बा नाम तो आपने छोटे से राजू में बदल दिया और मेरे नाम के पहिले बाबू का पुछल्ला लगा दिया। मेरा नाम भी आपको छोटा करना होगा माँ !' तारक ने विनीत भाव से कहा।

'ऐसा ही होगा तारक।' नई माँ ने मुस्कराते हुए कहा।

तारक प्रसन्न होकर कुछ कहना ही चाहता था कि उसकी वाणी मौन हो गई। उसी समय नई माँ बोली—'कभी उस मकान की ओर भी जाना होता है, राजू ?'

'चला तो जाता हूँ माँ ! लेकिन दुनिया भर के झंझट चैन नहीं लेने देते। पन्द्रह-बीस दिन में कभी···।'

'कुछ समाचार है कि रेणुका की शादी हो रही है।'

'किसने कहा आपसे ? मुझे तो कुछ भी सूचना नहीं है।'

'हाँ, निश्चय ही हो रही है। सवेरे दस बजे उसके शरीर पर तेल और उबटन मला जा चुका, परंतु तुम्हें शादी रोकनी होगी।'

'किसलिए, माँ ?'

क्योंकि यह हो नहीं सकती, इसलिए कि उसकी ससुराल में पागलपन का

रोग है। बाबा, बुआ दोनों पागल हैं। पिताजी अभी-अभी अच्छे हुए हैं लेकिन कुछ दिन पहले उन्हें भी जंजीर में बांधकर रखा जा चुका है।'

'कैसी आफत है जी, क्या इन बातों पर विचार नहीं किया गया ?'—राखाल बोला।

'लड़का सुन्दर, धनी है और अभी पढ़ रहा है और तुम जानते हो रेणुका के पिता को, सभी की बातों में आ जाते हैं, विश्वास कर बैठते हैं। यदि यह रहस्य जान भी जाते तो क्या हुआ ? सब कुछ समझ बूझकर भी वह इसमें भय नहीं मानते।'

'बात तो यही है।' राखाल ने कष्ट-पूर्ण स्वर में कहा।

चुपचाप बैठे तारक के मन में राखाल के इस 'बात तो यही है' निरुत्साही स्वर ने विचलन पैदा कर दी। राखाल को वह बिना फटकारे न रह सका कि आखिर किस प्रकार वह उस विवाह का होना सहन कर सकेगा ?

'परन्तु, भाई, क्या मेरे कहने मात्र से विवाह रुक सकेगा ? तुम ऐसा समझते हो !' राखाल ने कहा—'फिर अकेले रेणुका के पिता की ही बात नहीं है, घर में दूसरे लोग भी हैं तो।'

'रुकेगा क्यों नहीं ?' क्या लड़की के घर वाले भी लड़के के घर वालों के समान पागल हैं ? क्या लड़की को आग में झोंकना है ?'

'परन्तु हल्दी तो चढ़ चुकी।'

'तो क्या हुआ, लड़की के साथ अन्याय नहीं किया जा सकता।' महिला तराक की ओर बड़ी गम्भीरता से देख रही थी।

'मैं एक अपरिचित व्यक्ति हूं। मुझे उसके घर वालों की ऐसी कटु आलोचना करने का अधिकार भी नहीं परंतु राखाल, मेरा मन कहता है कि तुम्हें अपनी सम्पूर्ण शक्ति यह विवाह रोकने में लगा देनी चाहिए। मैं कहता हूं उसे मत होने दो मित्र !'

महिला ने कहा —'राजू ! और कौन हैं वहां ? केवल लड़की की सौतेली मां है सो उसे इस विषय में बोलने का कोई अधिकार नहीं।'

राखाल चुप था। महिला ने फिर कहा—'अच्छा राजू, तब तुम्हें बाग बाजार जाना होगा। वहां जाकर लड़की के मामा को जो कि उधर के कर्ता-

घर्ता हैं, उन्हें लड़की की माँ की कहानी सुना देना। हो सकता है कि काम पूरा हो जाय यदि न हुआ तो मुझे कुछ और प्रयत्न करना पड़ेगा। मैं रात में ग्यारह बजे के पश्चात् आऊँगी, इस समय जाती हूँ।' इतना कहकर वह जाने लगी।

राखाल व्याकुल था, वह कहने लगा—'परन्तु इसके पश्चात् रेणुका का विवाह नहीं हो सकेगा माँ। भेद खुल जाने पर...।'

'न सही बेटा!' दृढ़ होकर माँ ने कहा।

अधिक बात बढ़ाना राखाल ने उचित न समझा। चरण छूकर पूर्ववत् प्रणाम किया। तारक ने भी उसका अनुकरण किया। द्वार तक जाकर माँ फिर अचानक घूम पड़ीं और तारक को सम्बोधित करके बोलीं—'तारक! अधिकार तो नहीं किन्तु राखाल के मित्र होने के नाते मैं अनुरोध करती हूँ कि तुम अभी दो दिन यहीं और ठहरो।'

तारक ने बड़े विस्मय के साथ यह शब्द सुने। अचानक कोई उत्तर न बन पड़ा और वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही बाहर चली गईं। खिड़की से राखाल ने देखा कि वह पैदल ही जा रही थीं। गली के [illegible] पर एक दरबान उनकी प्रतीक्षा में खड़ा था, वह उनके पीछे-पीछे चल दिया।

२

राखाल ने कुर्ता उतार डाला।

तारक ने पूछा—जाओगे नहीं?

'नहीं। परन्तु तुम? आज ही बर्दवान जा रहे हो न?'

'ना। तुम क्या करते हो, यह देखूंगा। अपनी इच्छा से न करोगे तो बरबस कराऊँगा।'

'चाय की केटली और एक बार चढ़ा दूँ—क्यों?'

'चढ़ा दो।'

'कुछ नाश्ते के लिए बाजार जाकर ले आऊँ—क्यों?'

'मैं सहमत हूं -'

'तो तुम केटली में पानी चढ़ा दो, मैं दुकान पर जाऊं।

इतना कहकर वह धोती का पल्ला ओढ़कर, चट्टी पहनकर चल दिया। गली के मोड़ पर ही हलवाई की दुकान है—नगद पैसे नहीं देने होते—उधार मिल जाता है।

खाना-पीना समाप्त हुआ। सन्ध्या के पश्चात् लैंप जलाकर चाय की प्याली हाथ में लेकर दोनों मित्र टेबिल के पास बैठे।

तारक ने प्रश्न किया—अब क्या करोगे ?

राखाल ने कहा—मेरी अवस्था उस समय दस या ग्यारह वर्ष की होगी। मेरे पिता चार-पांच दिन पहले हैजे से मर गये थे। सबने कहा—'बाबू लोगों की मंझली बेटी सविता बाप के घर नवरात्र में दुर्गा-पूजा देखने आई है। तू जाकर उससे प्रार्थना कर।' बाबू लोगों का बूढ़ा गुमाश्ता मुझे साथ लेकर एक अन्तःपुर के भीतर उपस्थित हुआ। बाबू की मंझली लड़की दालान के आगे के चबूतरे पर एक किनारे बैठी सूप में तिल बीन रही थी। गुमाश्ते ने जाकर कहा—'मंझली बिटिया, यह ब्राह्मण का बालक तुम्हारा नाम सुनकर भिक्षा मांगने आया है। अचानक बाप की मृत्यु हो गई है—तीनों कुलों में ऐसा कोई नहीं जो इस संकट से इसे उबार ले।' सुनकर उनकी आंखों में आंसू भर आये। बोलीं—'तुम्हारे क्या अपना कोई नहीं है ?' मैंने कहा—'जी, मौसी हैं, लेकिन उन्हें मैंने कभी देखा नहीं।' उन्होंने पूछा—'तेरहीं-श्राद्ध करने में कितने रुपए लगेंगे।' यह मैंने सुन रखा था। मैंने कहा—'पुरोहित जी कहते हैं—पचास रुपये लगेंगे।' वह सूप रखकर उठ गई और एक बात भी नहीं पूछी। थोड़ी देर में लौट कर मेरे दुपट्टे के आंचल में दस-दस रुपए के पांच नोट बांध दिये। फिर पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है बेटा ?' मैंने कहा—'साधारण नाम है राजू। ठीक नाम है राखालराज।' बोलीं—'तुम चलोगे बेटा मेरे साथ मेरी ससुराल ? वहां अच्छा-सा स्कूल है, कालिज है; तुमको कोई कष्ट न होगा। चलोगे ?' मुझे उत्तर नहीं देना पड़ा, गुमाश्ता महाशय जैसे उछल पड़े, बोले—'जायगा क्यों नहीं ? जायगा—अभी जायगा। इतना बड़ा भाग्य यह कहां पावेगा ? इससे बढ़कर असहाय इस गांव में और कोई नहीं है

बिटिया। माँ दुर्गा तुम्हें धन और दूध-पूत से सदा सुखी रखेंगी।' इतना कह कर बूढ़ा गुमाश्ता जोर से रोने लगा।

सुनकर तारक की आँखें भी सजल हो उठीं।

राखाल कहने लगा—मेरे पिता का श्राद्ध और महामाया दुर्गा की पूजा दोनों ही काम निबट गये। तेरस के दिन यात्रा करके, चिरकाल के लिए देश छोड़कर, उनके स्वामी के घर में आकर मैंने आश्रय लिया। वह दूसरी पत्नी थीं, इसीसे सभी उन्हें नई-माँ कहते थे। मैं भी नई-माँ कहने लगा। सास-ससुर नहीं हैं; लेकिन सगे-सम्बन्धी पोष्य-परिजन बहुत हैं। आर्थिक दशा अच्छी है, धनी भी कहें तो कह सकते हैं। इस घर की वह केवल गृहिणी ही नहीं, पूरी स्वामिनी हैं—वह जो करती हैं वही होता है। स्वामी की अवस्था अधिक है, बाल सफेद हो चुके हैं। लेकिन उनका स्वभाव बच्चों का-सा सरल है। ऐसे मीठे स्वभाव का मनुष्य मैंने और कभी नहीं देखा। देखते ही अपने लड़के जैसे प्यार और आदर से मुझे ग्रहण किया। देश में उनके बाग-बगीचा, धरती और खेती-बारी भी थी, दो-एक छोटे-मोटे तालुके भी थे और कलकत्ते में कोई एक व्यापार भी चल रहा था। लेकिन वह अधिकांश समय घर में रहते थे और तब लगभग आधा दिन उनका पूजा-घर में व्यतीत होता था ठाकुर की सेवा में, पूजा-आह्निक में, जप-तप में।

मैं स्कूल में भर्ती हुआ। किताब-कापी-पेन्सिल-कागज-कलम आया; कुर्ता-धोती, जूता-मोजे कई जोड़े आये। घर में पढ़ाने के लिए मास्टर रखा गया। जैसे मैं इसी घर का लड़का हूँ। यह बात सब जैसे भूल गये कि निराश्रय जानकर नई-माँ मुझे अपने साथ ले आई हैं।—तारक, इस जीवन में वे सुख के दिन अब फिर नहीं लौटेंगे। आज भी मैं चुपचाप लेटा-लेटा वही सब बातें सोचा करता हूँ।

इतना कहकर राखाल चुप हो गया और बहुत देर तक न जाने कैसा अनमना-सा हो रहा।

तारक ने कहा—राखाल, न जाने क्यों मेरी हृदय धड़क रहा है। अच्छा, उसके पश्चात् ?

राखाल ने कहा—उसके पश्चात् इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये। स्कूल

में मैट्रिक पास करके कालिज में आई० ए० क्लास में भर्ती हुआ। इसी समय एक दिन एकाएक भूचाल-सा आ गया—सब उलट-पुलट कर विश्व-ब्रह्माण्ड जैसे तहस-नहस हो गया। सब तोड़-फोड़ से चूर-चूर हो गया—कहीं कुछ शेष न बचा।

इतना कहकर वह चुप हो गया।

किन्तु चुप भी नहीं रह सका। बोला—इतने दिन मैंने किसी से कोई बात नहीं कही और कहता ही किससे? नहीं जानता, आज भी कहना उचित है कि नहीं—लेकिन छाती के भीतर जैसे एक तूफान-सा उठता रहता है—

राखाल ने तारक के मुख पर एक असीम कौतूहल देखा; किन्तु तारक ने कोई प्रश्न नहीं किया। क्षण भर अपने मन की दुविधा से लड़कर अचानक उच्छ्वसित कण्ठ से राखाल ही कह उठा—तारक, अपनी माँ को मैंने आँखों से नहीं देखा। माँ कहने से मुझे नई-माँ ही याद आती हैं। यही वह मेरी नई-माँ हैं।

इतनी देर में अब सचमुच ही उसका गला रुँध गया। पहले दोनों आँखों में आँसू भर आये, उसके बाद बड़ी-बड़ी कई आँसुओं की बूंदें गिर पड़ीं।

दो-तीन मिनट बाद आँखें पोंछकर आप ही शान्त होकर उसने कहा—वह तुमसे दो-तीन दिन रहने को कह गई हैं। शायद उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है। बारह-तेरह साल पहले की बात कह रहा हूँ। उस दिन क्या घटना हुई थी, तुमको सुनाता हूँ। उसके पश्चात रहना न रहना तुम्हारे विचार पर निर्भर है।

तारक शान्त बैठा था, चुप ही रहा।

राखाल कहने लगा—उन दिनों उन लोगों के एक आत्मीय कलकत्ते से प्राय: उनके घर आया करते थे। कभी दो-एक दिन और कभी सप्ताह दो सप्ताह ठहरते थे। उनके साथ आता था तेल की मालिश करने को खानसामा, तमाखू भरकर देने को नौकर, ट्रेन में चौकसी करने को दरबान—और कितने ही प्रकार के बेशुमार फल-मूल-मिष्ठान्न। तिथि-त्योहार पर भेंट-उपहार का तो कोई परिमाण ही न रहता था। उनके साथ इन नई-माँ का कोई दूर का या गाँव-घर का हँसी-मजाक का नाता था। केवल किसी सम्पर्क के हिसाब से ही नहीं, जान पड़ता है, शायद धन के हिसाब से भी इस घर में उनका आदर

सत्कार बहुत था। लेकिन घर की औरतें धीरे-धीरे कुछ सन्देह-सा करने लगीं। बात ब्रज बाबू के कानों में पहुँची ; परन्तु उस पर विश्वास करना तो दूर, उल्टे वह अप्रसन्न हो उठे। उनकी दूर के एक रिश्ते की फुफेरी बहन को अपनी ससुराल चले जाना पड़ा। सुना है, ऐसा ही हुआ करता है—यही दुनिया का साधारण नियम है, इसके सिवा, अभी तो उनके मुंह से ही तुम सुन चुके हो कि ब्रज बाबू जैसे सरल-स्वभाव के भले आदमी संसार में बिरले ही हैं। किसी के किसी कलंक को मन के भीतर स्थान देना ही उनके लिए कठिन है।

दिन बीतने लगे। बात ऊपर से तो दब गई, लेकिन विद्वेष-विष के कीटाणुओं ने पोष्य परिजनों अर्थात् परवरिश पाने वाले दूर-सम्बन्ध के लोगों के एकान्त गृहकोण में अड्डा जमा लिया। जिन्हें नई-माँ ने ही बड़े आदर और स्नेह से आश्रय दिया था ; उन्हीं लोगों के मध्य। नई माँ एक दिन केवल मुझे ही 'चलोगे बेटा मेरे पास ?' कहकर नहीं बुला लाई थी—और भी बहुतों को ले आई थीं पृथक-पृथक स्थान से। यह उनका स्वभाव ही था। इसीसे फुफेरी बहन तो चली गई, किंतु उसका बदला लेने को बुआजी रह गईं।

तारक ने केवल गर्दन हिलाकर हाँ भरी। राखाल कहने लगा—इस नीच षड्यन्त्र कितना गहरा और घातक हो उठा था, इसकी सूचना एक दिन अचानक गहरी रात में मुझे मिली। न जाने कैसे एक प्रकार के दबे गले के कर्कश कोलाहल ने मुझे जगा दिया। उठकर बाहर आया। देखा, सामने के कमरे के दरवाजे में बाहर से सांकल चढ़ी है। आँगन के बीच पांच-छः लालटेनें जमा हैं। बरामदे में एक किनारे पर सिर झुकाये ब्रज बाबू स्तब्ध बैठे हैं और उस कमरे के सामने नवीन बाबू—उनके चचेरे छोटे भाई—खड़े बन्द दरवाजे पर लगातार धक्के मारकर कड़ी आवाज में बार-बार कह रहे हैं—रमणी बाबू, दरवाजा खोलो। हम कमरे को देखेंगे। निकल आओ।

यह नवीन बाबू ब्रज बाबू की कलकत्ते की आढ़त से बीस-पच्चीस हजार रुपए उड़ाकर कुछ दिनों से घर आ बैठे हैं।

घर की औरतें बरामदे के आस-पास खड़ी हैं। जान पड़ा, जैसे नौकर लोग पास ही कहीं आड़ में कपेक्षा कर रहे हैं। नींद से उठने के कारण पहले

मामला कुछ समझ में नहीं आया ; किंतु क्षण भर पश्चात ही सब समझ गया। अभी कोई भयानक काण्ड घटित होगा, यह सोचकर भय से मेरे सब अंग पसीने से तर हो गये। आंखों के आगे अँधेरा छा गया। शायद मूर्छा आने से वहीं गिर पड़ता। किंतु ऐसा नहीं हुआ। दरवाजा खोलकर रमणी बाबू का हाथ पकड़े नई-मां बाहर निकल आई। बोलीं—तुम कोई इनके हाथ न लगाना, मैं मना किये देती हूं। हम अभी इस घर से निकले जाते हैं।

एकाएक जैसे एक वज्रपात हो गया। यह क्या सचमुच ही इस घर की नई-मां हैं ! किंतु घर भर के सब लोग उन लोगों का अपमान क्या करते, मानो स्वयं ही लज्जा से मर गये। जो जहां था, वहीं स्तब्ध होकर खड़ा रहा। नई-मां और रमणी बाबू जब सदर द्वार पार कर गये, तब ब्रज बाबू अचानक फफककर रो उठे। बोले—नई बहू, तुम्हारी रेणु जो रह गई ! कल उसे मैं क्या कहकर समझाऊंगा !

नई-मां ने एक शब्द भी न कहा। चुपचाप धीरे-धीरे चली गईं। उस दिन रेणु तीन साल की थी, और आज उसकी अवस्था सोलह साल की है। इन तेरह वर्षों के बाद आज एकाएक मां दिखाई दी हैं लड़की को विपद से बचाने के लिए।

अब इतनी देर पश्चात् तारक ने बात की—सांस छोड़कर कहा—और इन तेरह वर्षों में मां ने लड़की को आंखों की ओट नहीं किया और केवल लड़की को ही नहीं, खूब सम्भव है, तुम लोगों में से किसी को भी नहीं।

राखाल ने कहा—यही तो जान पड़ता है भाई। किंतु क्या तुमने ऐसा मामला सुना है ?

तारक ने कहा—ना, नहीं सुना ; लेकिन पढ़ा है। मैं इसमें एक अंगरेजी के उपन्यास की झलक पाता हूं। पर आशा करता हूं इसका उपसंहार वैसा न हो।

राखाल ने कहा—जान पड़ता है, नई-मां के ऊपर अब तुम्हें घृणा उत्पन्न हुई है तारक ?

तारक ने कहा—घृणा उत्पन्न होना ही तो स्वाभाविक है राखाल।

राखाल चुप हो रहा। यह उत्तर उसे अच्छा नहीं लगा, बल्कि इससे

उसके मन पर जैसे कहीं चोट पहुँची। दम-भर बाद उसने कहा—इसके बाद फिर देश में रहना न हो सका। ज बाबू ने कलकत्ते आकर फिर ब्याह किया और तभी से वे यहीं हैं।

"और तुम ?"

राखाल ने कहा—मैं भी उनके साथ आया। बुआ जी ने मुझे निकाल देने की सिफारिश करके कहा—व्रज भैया, वह अभागिनी ही तो इस बला को बटोर लाई थी—इसे भी दूर कर दो।

मैं नई माँ के स्नेह का पात्र होने के कारण बुआ की आँखों में खटकता था—वह मुझ पर सदय नहीं थीं।

व्रज बाबू शान्त मनुष्य हैं ; किंतु बुआ जी की बात सुनकर उनकी आँखों का कोना कुछ रूखा हो उठा। तो भी शान्त भाव से ही बोले—यही तो उसे रोग था बुआ। आफत-बला उसने यही तो नहीं बटोरी थी—केवल इसी बेचारे को भगा देने से हम लोगों को सुविधा हो जायगी ?

बुआ की अपनी बात तब बहुत पुरानी हो चुकी थी—शायद उसका ध्यान भी अब उन्हें नहीं था। बोली—तो क्या इसे रोटी-कपड़ा देकर सदैव ही पालना-पोसना पड़ेगा ? ना, ना, यह जहाँ का आदमी है, वहीं जाकर रहे ; इसके मुंह से माँ-बाप बेटी की कीर्ति-कहानी सुनें ; अपने वंश का थोड़ा-सा परिचय पावें।

अबकी व्रज बाबू जरा हँसे। बोले—वह अभी बच्चा है, सब ठीक-ठीक बता न सकेगा, उसके लिए बल्कि तुम और कोई व्यवस्था कर दो।

उत्तर सुनकर बुआ अप्रसन्न होकर चली गईं। कह गईं—जो अच्छा समझो वह करो। मैं अब किसी के बीच में नहीं पड़ती।

नई-माँ के जाने के बाद इस घर में बुआ जी का प्रभाव कुछ बढ़ चला था। सभी जानते थे कि उन्हीं की बुद्धि से इतना बड़ा अनाचार पकड़ा गया। इतने दिनों की लक्ष्मी—श्री तो जाने ही को बैठी थी। नवीन बाबू के कारण जो व्यापार में हानि हुई, उसका मूल कारण भी यह गुप्त पाप ठहराया गया। नहीं तो, कहाँ, पहले तो कभी नवीन को ऐसी बुद्धि नहीं हुई ! बुआ ने यही कहना भी प्रारम्भ कर दिया था। कहती थीं—यह सब तो घर की लक्ष्मी से ही बँधा हुआ है। उनके चंचल होने पर तो ऐसा होना ही चाहिए। हुआ भी वही।

तारक ने बहुत देर चुप रहकर पूछा—कलकत्ते आकर क्या तुम उन्हीं लोगों के घर में रहे ?

राखाल—हाँ, लगभग दस साल तक।

तारक—फिर चले क्यों आये ?

राखाल ने कुछ इधर-उधर करके अन्त में कहा—फिर सुविधा नहीं हुई।

तारक—इससे अधिक कुछ और बताना नहीं चाहते ?

राखाल ने फिर कुछ देर मौन रहकर कहा—कहने से कोई लाभ नहीं है, लज्जा भी लगती है।

तारक ने फिर जानना नहीं चाहा, मौन बैठकर सोचने लगा। अन्त को बोला—तुम्हारी नई-माँ जो इतना बड़ा एक भार सौंप गई हैं, उसका क्या होगा ? एक बार ब्रज बाबू के पास जाओगे ?

राखाल ने कहा—वही बात सोच रहा हूँ। न हो, कल···

तारक ने कहा—कल ? लेकिन वह जो कह गई हैं कि आज रात को ही आवेंगी—तब उनसे क्या कहोगे ?

राखाल ने हँसकर सिर हिलाया।

तारक ने प्रश्न किया—सिर हिलाने का अर्थ ? क्या तुम कहना चाहते हो कि वह नहीं आवेंगी ?

राखाल—यही तो जान पड़ता है। कम-से-कम, इतनी रात को उनका आ सकना मुझे सम्भव नहीं जान पड़ता।

अब की तारक ने और अधिक गम्भीर होकर कहा—मगर मुझे सम्भव जान पड़ता है। सम्भव न होता तो वह कभी कहती नहीं। मुझे विश्वास है कि वह आवेंगी और ठीक ग्यारह बजे आवेंगी परन्तु तब तुम्हारे पास कोई उत्तर नहीं होगा।

राखाल—क्यों ?

तारक—क्यों क्या ? उनकी इतनी बड़ी दुश्चिन्ता की परवाह न करके तुमने एक पग भी घर से आगे नहीं बढ़ाया, यह तुम किस मुंह से उनके सामने कहोगे ? ना, यह न होगा राखाल, तुमको जाना होगा।

राखाल कई सेकेंड तक उसके मुंह की ओर ताकता रहा, इसके पश्चात

मन्द-मन्द बोला—मेरे जाने से भी कुछ नहीं होगा तारक ! मेरी बात उस घर का कोई आदमी नहीं सुनेगा।

तारक ने कहा—कारण ?

राखाल ने कहा—कारण यह है कि वर के पक्ष में जैसे एक मामा स्वामी हैं वैसे ही कन्या की ओर भी एक और मामा उपस्थित हैं—व्रज बाबू के तीसरे ब्याह के बड़े साले। वास्तव में वर के मामा का कितना प्रभाव है, यह मैं नहीं जानता, किन्तु इन मामा के पराक्रम को बहुत अच्छी प्रकार जानता हूँ। बाल्य-काल में बुआ की मुझे निकाल देने की उतनी बड़ी सिफारिश मुझे उस घर से हटा नहीं सकी, किन्तु इन मामा महाशय की आँख के इशारे का एका धक्का भी न संभाल सका—मुझे पोटली हाथ में लेकर विदा होना पड़ा।

इतना कहकर उसने जरा हँसकर फिर कहना शुरू किया—नहीं भाई तारक, मैं बहुत सीधा-सादा आदमी हूँ—लड़के पढ़ाता हूँ, भोजन बनाता-खाता हूँ। डेरे में आकर सो रहता हूँ। समय मिलने पर निबल-सबल का विचार किये बिना परिश्रमपूर्वक बड़े लोगों की इच्छाएँ पूरी करता हूँ—किसी प्रकार की आशा नहीं करता—वह सब भाग्यवानों के लिए है। अपने भाग्य को अच्छी तरह से ही जान रखा है—उसके लिए मन में दुःख भी नहीं है, एक प्रकार से सहने का अभ्यास हो गया है। दिन बुरे नहीं कट रहे हैं। लेकिन इसीलिए अखाड़े के किनारे खड़े होकर मामा-मामा में कुश्ती कराकर उनकी झपट का वेग मैं नहीं संभाल सकूँगा।

सुनकर तारक हँस पड़ा। राखाल को वह जैसा समझता था, देखा, वह वैसा भोंदू नहीं है। तारक ने पूछा—दोनों ओर मामा हैं, इसीलिए दोनों में मल्ल-युद्ध क्यों छिड़ जायगा ?

राखाल ने कहा—तो जरा खोलकर कहता हूँ। इधर के मामा महाशय ने मुझ से घर अवश्य छुड़ा दिया है, किन्तु वे उसी की माया-ममता अभी तक नहीं छुड़ा सके। इसीलिए वहाँ का थोड़ा-बहुत समाचार मेरे कानों तक पहुँच जाता है। सुना गया है—बहनोई की कन्या के ब्याह की चिन्ता ही साले के आराम में अधिक विघ्न डाल रही है। इस लड़के को खोज निकालना भी उन्हीं की कीर्ति है। अतएव इस मामले में मेरे द्वारा विशेष कुछ न होगा।

संभवत: किसी के भी किये कुछ न होगा। बरिच्छा, तिलक, आशीर्वाद और लगन तक सब हो गया है—इसलिए यह विवाह अवश्य होगा।

तारक ने कहा—अर्थात् उधर के मामा को कन्या की माता का किस्सा सुनाना ही होगा और उसके पश्चात उस घटना का हाल लोगों के मुंह से चारों ओर फैलते देर न लगेगी। फिर उसका अवश्य होने वाला परिणाम यह है कि उस लड़की का किसी अच्छे घर में ब्याह न हो सकेगा।

राखाल ने कहा—आशंका तो होती है कि अन्त को कुछ ऐसी ही बात होगी।

तारक ने कहा—लेकिन लड़की के पिता तो आज भी जीवित हैं ?

राखाल ने कहा—ना, पिता नहीं जीवित हैं, केवल व्रज बाबू जीवित हैं।

तारक ने क्षण-भर स्थिर रहकर कहा—राखाल, चलो न एक बार चल कर देख आवें—बाप एकदम मर गया है या इस आदमी में अब भी कुछ जान बाकी है।

राखाल ने कहा—तुम जाओगे ?

तारक ने कहा—इसमें क्या है ! कहना, यह वर के पड़ोसी हैं—बहुत कुछ जानते हैं।

राखाल ने हंसकर कहा—तुम्हारी भी अच्छी बुद्धि है ! पहले तो यह बात तर्क में सच नहीं है, दूसरे जब तुम गोलमोल उत्तर दोगे, तब उन लोगों के मन में घोर सन्देह उत्पन्न होगा—वे समझेंगे, तुम मोहल्ले के आदमी हो, व्यक्तिगत शत्रुता के कारण इस ब्याह में रोड़ा अटकाने आये हो। इससे काम तो सिद्ध होगा ही नहीं, विपरीत फल निकलेगा।

यही तो। तारक ने मन-ही-मन और एक बार राखाल की संसारिक बुद्धि की प्रशंसा की। कहा—यह ठीक कहते हो। तर्क में हम लोग उखड़ जायंगे। नई-माँ से हम लोगों को और भी अधिक समाचार ज्ञात कर लेना चाहिए था।—अच्छा, एक अपना मित्र कहकर ही मेरा परिचय देना।

राखाल – हाँ परिचय देना पड़ा तो यही दूंगा।

तारक ने कहा—इस ब्याह को बन्द करने की चेष्टा में तुम्हारी सहायता करूं—यही मेरी इच्छा है। और कुछ न कर सका तो इस मामा को ही एक

बार आँख से देख आ सकूँगा और भाग्य प्रसन्न हुआ तो केवल ब्रज बाबू ही नहीं, उनकी तीसरी धर्मपत्नी के भी दर्शन हो जायेंगे।

राखाल ने कहा—कम से कम यह असंभव नहीं है।

तारक ने पूछा—यह महिला कैसी है राखाल ?

राखाल ने कहा—खूब गोरा रंग, मोटी ताजी देह, परिपुष्ट गठन—खाते-पीते बंगाली के घर में कुछ अधिक अवस्था होने पर गृहिणियां जैसी हो जाती हैं वैसी।

तारक ने कहा—परन्तु स्त्री कैसी है ?

राखाल ने कहा—स्त्री तो जान लो, बंगाली के घर की लड़की है। बंगाली घरों की और जैसी दस औरतें होती हैं, वैसी ही। कपड़े-गहनों पर गहरा अनुराग, उत्कट और अन्ध सन्तान-वत्सलता, पराये दुःख में कातर होकर आँसू बरसाना, दो-आने दान करना और दमभर में ही सब भूल जाना। स्वभाव बुरा नहीं है—अच्छा कहना भी कुछ अपराध न होगा। थोड़ी-बहुत क्षुद्रता, छोटी-मोटी उदारता, एक-आध—

तारक ने बीच में रोकते हुए कहा—रुको-रुको। यह सब तुम क्या केवल ब्रज बाबू की स्त्री के विषय में कह रहे हो, या सारी बंगाली स्त्रियों को लक्ष्य कर के जो मुंह में आता है वही व्याख्याता के समान बकते जा रहे हो ? किसका यह वर्णन है ?

राखाल ने कहा—दोनों का ही रे भाई, दोनों का। सिर्फ उसका तात्पर्य समझना श्रोता की अभिज्ञता और अभिरुचि के अनुसार होता है।

सुन कर तारक सचमुच विस्मित हुआ। बोला, मैं नहीं जानता था कि स्त्रियों के सम्बन्ध में तुम्हारे मन में इतनी उपेक्षा का भाव है। बल्कि सोचता था कि···

राखाल चटपट कह उठा—ठीक ही सोचते थे भाई, ठीक ही सोचते थे। मैं जरा-सी भी उनकी उपेक्षा नहीं करता। उनके बुलाते ही दौड़ा जाता हूँ, न बुलाने पर भी बुरा नहीं मानता। दया करके वे काम करा लेती हैं, केवल इससे ही अपने को धन्य मानता हूँ। महिलाएं अनुग्रह भी यथेष्ट करती हैं, उनकी मैं कोई निन्दा नहीं कर सकूँगा।

तारक ने कहा—अनुग्रह जो करती हैं, उनका थोड़ा परिचय दो तो सुनूं।

राखाल ने कहा—अब की तुमने कठिनाई में डाल दिया। तर्क करने से ही मैं घबरा उठता हूँ। इस अवस्था में मैंने बहुत कुछ देखा और सुना, साक्षात् परिचय भी कुछ कम नहीं है; किन्तु ऐसी बुरी स्मरणशक्ति है कि कुछ भी याद नहीं रहता। न उनका बाहर का चेहरा, न उनके भीतर का रूप। सामने खूब काम चलता है, किन्तु जरा आड़ में आते ही सब चेहरा लिप-पुत कर एकाकार हो जाता है—एक के साथ दूसरी का भेद नहीं ठहरा पाता।

तारक ने कहा—हम गँवई गाँव के आदमी हैं। मोहल्ले के आत्मीय पड़ोसियों के घर की दो-चार महिलाओं के सिवा बाहर की किसी औरत को पहचानते भी नहीं, जानते भी नहीं। औरतों के बारे में हम लोगों की यही तो जानकारी है। किन्तु इस भारी शहर की कितनी नई, कितनी विचित्र···

राखाल ने हाथ उठाकर, रोककर कहा—कुछ चिन्ता न करो तारक, मैं उपाय बतला दूंगा। देहाती कहकर तुम जिनकी अवज्ञा करते हो—अथवा मन-ही मन जिनके विषय में भयभीत हो रहे हो, उन्हीं औरतों को शहर में लाकर पाउडर रूज आदि जरा जोर से मलकर दो-एक महीने थोड़े से चुने हुए नाटक-उपन्यास और उन्हीं के साथ दो-चार चलते गाने सिखा-पढ़ा दो—बस। अंग्रेजी नहीं जानतीं? न जानें। आरम्भ से अन्त तक सिखाना नहीं पड़ता; दस-बीस भव्य बातें या शब्द तो याद कर सकेंगी? बस, काम बन जायगा। इसके पश्चात्···

तारक ने खीभ कर टोका—'इसके पश्चात्' की अब आवश्यकता नहीं राखाल, रहने दो। अब समझ पा रहा हूँ कि तुम्हें क्यों चिन्ता नहीं है। इस लड़की का चाहे जिसके साथ ब्याह हो, उससे तुम्हारा कुछ नहीं आता-जाता। वास्तव में उन लोगों के साथ तुम्हें हमदर्दी नहीं है।

राखाल ने हँसी के तौर पर प्रश्न किया—हमदर्दी कैसे होगी, बता सकते हो?

तारक ने कहा—बता सकता हूँ। बिना बिचारे मिलना-जुलना जरा कम करो। जो खो दिया है, वह शायद एक दिन फिर पा सकते हो—अच्छा, केवल इसी कारण नई-माँ के अनुरोध को लापरवाही से टाल सके?

राखाल लगभग एक मिनिट तक तारक के मुंह की ताकता रहा। इसके पश्चात् उसकी परिहास की मुद्रा धीरे-धीरे बदल गई। उसने कहा—अबकी तुमसे भूल हुई। किन्तु तुम्हारी पहले की बात में शायद कुछ सत्य है—उन लोगों में से बहुतों का बहुत कुछ जान सकने में लाभ की अपेक्षा क्षति ही शायद अधिक होती है। अबसे मैं तुम्हारी बात सुनूंगा—मानूंगा। किन्तु जिनके विषय में तुमसे कह रहा था, वे साधारण स्त्रियां हैं—हजार में नौ सौ निन्नानवे। नई-मां उनमें नहीं हैं। कारण, हजार में एक जो शेष रही वही वह हैं। उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती, चाहने पर भी नहीं। तुम आज किस कारण बर्दवान नहीं जा पा रहे हो, इसे तुम नहीं जानते, किन्तु मैं जानता हूं। किसकी इच्छा से तुम मुझे ठेल-ठालकर अभी मामा बाबू की मांद में भेजना चाहते हो, इसका कारण तुम्हारे निकट स्पष्ट नहीं, किन्तु मैं उसे स्पष्ट देख पा रहा हूं! उनके पिछले इतिहास को सुनकर अभी तुमने जो कहा था तारक, कि ऐसी स्त्री को घृणा करना ही स्वाभाविक है—अपनी यह राय तुमको एक दिन बदलनी पड़ेगी। उससे काम न चलेगा।

तारक मुंह पर हंसी लाकर व्यंग के स्वर में बोला—काम न चलेगा तो तुमको सूचित करूंगा परन्तु तब तक अगर मैं यह कहूं कि मैं अपनी बात दूसरे की अपेक्षा अधिक जानता हूं तो अप्रसन्न न होओ राखाल। लेकिन इस तर्क से कोई लाभ नहीं है भाई,—इसे जाने दो। किन्तु तुम्हारा दृष्टि में आज तक एक नारी भी श्रद्धा की पात्री होकर टिकी हुई है—यह बड़ी आशा की बात है। मगर वह हम लोगों की पहुंच के बाहर है राखाल। हम तुम्हारी इन एक को त्याग कर शेष नौ सौ निन्नानवे के ऊपर ही श्रद्धा बनाये रख सकें, तो उसी से हम जैसे साधारण मनुष्य धन्य हो जायें।

राखाल ने तर्क नहीं किया—उत्तर नहीं दिया। केवल यह जान पड़ा कि वह सहसा जैसे कुछ उदास हो गया है!

तारक ने पूछा—क्यों जी, चलोगे?

राखाल ने कहा—चलो।

तारक—जाकर क्या कहोगे?

राखाल—जो कुछ सत्य है वही। कहूंगा—विश्वस्त सूत्र से सूचना पाई

गई है—इत्यादि इत्यादि

तारक—यही ठीक है।

दोनों मित्र उठ खड़े हुए। राखाल ने द्वार में ताला बंद करके जोड़े हुए हाथ माथे से लगाकर दो बार भगवती दुर्गा का नाम स्मरण किया। इसके उपरांत दोनों ब्रज बाबू के घर की ओर चल दिये।

तारक ने हंसकर कहा—आज कोई काम न होगा। नाम का माहात्म्य देख पाओगे।

२

दूसरे दिन अपराह्न में दोनों मित्र चाय की मेज पर आमने-सामने जा बैठे। राखाल ने चाय की प्याली में एक चम्मच चीनी डालकर चलाया जिससे कि चाय रंग छोड़ दे।

'नाम का प्रभाव देखा, राखाल !' तारक ने बात को प्रारम्भ करते हुए कहा—'राखाल, दुर्गा-माता में व्यर्थ ही तुमने अविश्वास किया, इसीलिए तो कल जाना निष्फल रहा। यदि अविश्वास न करते तो जाने का कुछ फल अवश्य मिलता।' तारक ने मुस्कराकर सिर हिला दिया।

मकान पर जमींदार साहब के अनुपस्थित होने से कोई काम सफल नहीं हुआ। वह कल कहीं दावत में गये थे, और मामा जी तबियत खराब होने के कारण संध्या से ही पलंग पर लेट चुके थे। 'राखाल, तुम हमें अभी भूले नहीं। घर के भीतर जाने पर जमींदार साहब की नई पत्नी ने कहा। रेणुका भी चलते समय ओट से बोली—'इतने दिन तक क्या दादा हमें भूल ही गये थे ?' राखाल ने कोई उत्तर न देकर और केवल इतना भर कह दिया—'अपने बाबूजी से कह देना कि मैं कल संध्या को किसी बहुत आवश्यक काम से फिर उनसे मिलने के लिए आऊंगा। भूलना नहीं।'

'बहुत अच्छा।' रेणुका बोली—'लेकिन आप नौकरों से भी तो कहते जाइए।'

जमींदार साहब के मुख्य नौकर से भी राखाल ने कह दिया। उन्हें अपने

घर पर लौटने में देर हो गई थी इसीलिए ताले में एक परचा लगाकर नई माँ पहले ही लौट चुकी थीं। परचे में दूसरे दिन संध्या को पाँच बजे फिर आने की सूचना दी गई थी। उसी पाँच बजे की प्रतीक्षा में दोनों मित्र बैठे थे। तारक ने चाय छानने के लिए कहा—'अभी बीस मिनट हैं, उनके आने से पहले ही मेज साफ कर देनी चाहिए।'

'क्यों?' राखाल बोला—'मनुष्य चाय भी पीते हैं क्या यह बात वे नहीं जानतीं?'

'राखाल, तर्क की आवश्यकता नहीं है! मनुष्य कितनी ही बातें करता है, लेकिन फिर भी बहुत-सी छिपाकर करता है; जानवरों को इन बातों के छिपाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और फिर सफाई तो अच्छी ही होती है, देर भी तो कुछ नहीं लगेगी?' तारक ने एश ट्रे और सिगरेट की डिब्बी उठा कर पूछा—'क्या इन्हें भी उन्हें दिखाया जा सकता है?'

'देख लेने दो मित्र! वह अपराधी को पहचानती हैं, तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिए।'

तारक व्यंग को समझ गया; लेकिन ऊपर से बोला—'यही आशा है, लेकिन फिर भी वे मुझे समझने में भूल कर सकती हैं, इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? लेकिन मैं नहीं चाहता कि वे उस व्यक्ति को गलत समझें जिसका पालन-पोषण उन्होंने अपने हाथों से किया है।' राखाल अप्रसन्न नहीं हुआ, मुस्कराता हुआ चाय छानने में लगा रहा। तारक चाय पी रहा था, जब रहा न गया तो कहने लगा—'भाई, इस प्रकार चुप रहने से काम नहीं चलेगा!'

'क्या करूँ तारक? नौ सौ निन्नानवे का धक्का उनके आने से पहिले सँभाल रहा हूँ।' हँसकर राखाल बोला। इस व्यंग ने तारक के हृदय पर ठेस की परन्तु वह मौन हो चाय पीता रहा। चाय समाप्त हो जाने के पश्चात् मेज साफ कर दी गई। इसी समय घड़ी ने ठीक पाँच बजाये और सूर्य ने भी आगे बढ़ना प्रारम्भ कर दिया लेकिन नई माँ का अब भी कहीं पर पता नहीं था। दोनों भेद जानने के लिए अधीर हो रहे थे। सारा घर मानो इस समय सूना प्रतीत हो रहा था। ऐसे समय तक तारक ने धीरे से कहा—'तुम्हारी

नई-माँ कोई साधारण स्त्री नहीं है, यह बात सत्य ही प्रतीत होती है राखाल ।'

राखाल मौन था ।

'इस प्रकार की नारी की कथा मैंने पुस्तकों में पढ़ी है । जो स्त्रियाँ देखी हैं वे साधारणतः मती सद्विचार वाली हैं लेकिन यह तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे'''अभी पूरी वात समाप्त भी न हो पाई थी कि द्वार से आवाज आई—'राजू, चली आऊँ वेटा ?'

दोनों ही अचानक खड़े हो गये । राखाल शीघ्रता से द्वार की ओर गया और प्रणाम करके बड़े आदर-भाव से नई-माँ को अन्दर ले आया । तारक ने भी राखाल की ही भाँति आदर-पूर्वक नमस्कार किया ।

जब सब यथास्थान बैठ गये तो राखाल बोला—'कल का वहाँ जाना तो व्यर्थ ही रहा माँ, क्योंकि जमींदार साहब वहाँ नहीं थे । मामा जी की तबियत अच्छी न थी और इधर आपको परेशान होकर लौट जाना पड़ा । लेकिन इसका दोषी तारक है क्योंकि इसी ने दुर्गा माता को अप्रसन्न किया था । तारक ने सम्पूर्ण घटना खोलकर नई-माँ को सुनाई ।

'ऐसी बातों पर तुम विश्वास करते हो तारक ?' नई-माँ ने हँसकर पूछा ।

'हो सकता है कि आज विश्वास न हो परन्तु यह दशा तो विश्वास करने के कारण ही हुई है ।'

'वहाँ कोई मिला नहीं ?' नई माँ ने हँसकर पूछा ।

'कोई भला क्यों न मिलता ? घर की स्वामिनी ने आश्चर्यान्वित होकर कहा—'राखाल, तुम हमें अभी भूले नहीं'—लौटते समय रेणुका ने भी ठीक उसी प्रकार के शब्द कहे, लेकिन सामने आकर नहीं, छुपकर । कल सन्ध्या को जमींदार साहब से मिलने के लिए कह आया हूँ एक आवश्यक काम के लिए और मुझे विश्वास है कि रेणुका इस समाचार को जमींदार साहब के पास अवश्य भेज देगी ।' राखाल ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।

'इसलिए तुम्हें आज फिर जाना है ।'

'कुछ समयोपरान्त जायंगे अभी आपकी प्रतीक्षा थी ।'

'सब लोग कुशल से हैं न ?'

'हां।'

नई मां मौन थी।

'भला रेणुका अब देखने में कैसी लगती है ?' कुछ ठहरकर नई मां ने पूछा। राखाल पहिले शान्त था। फिर कृत्रिम रोष के साथ बोला—'मां तुम्हारी यह बात तो बिलकुल व्यर्थ सी हो रही है। क्या आप अनुमान से नहीं बता सकतीं कि नई मां की बेटी देखने में कैसी लगती है ? उस पर पिता का प्रभाव है—यही बात है न मां।' पुत्री के विषय में बातें करते हुए मां का हृदय द्रवित हो उठा। पल भर चुप रहकर बोलीं—'राजू, तुम्हारे जाने का समय हो गया होगा ?'

'अभी कुछ देर है मां !'

कुछ प्रारम्भिक बातों के पश्चात् तारक मौन हो गया। वह नई मां और राजू की बातें सुन रहा था। जिस रेणुका का विवाह-सम्बन्ध यह लोग समाप्त करना चाहते थे; तारक उस रेणुका के विषय में अवश्य कुछ जानना चाहता था लेकिन जानने की कोई विशेष उत्कण्ठा उसमें हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता था। अभी राखाल द्वारा दिये गये उसके साधारण परिचय ने तारक को एक चकाचौंध कर देने वाले रूप प्रकाश में लाकर खड़ा कर दिया। वह उसी के विचार में निमग्न था और तब उसने कुछ विस्मित सा होकर नई मां की ओर देखा। नई मां की आयु इस समय लगभग पैंतीस-छत्तीस वर्ष के होगी। रूप का निखार पूर्ण उभार पर नहीं था। सामने के दो ऊंचे दांत स्पष्ट दिखाई देते हैं। रंग स्वर्ण और चम्पा की समता करता है। अंग-प्रत्यंगों की गठन मक्खन के पुतले से भी कोमलतम थी। आंखें बड़ी नहीं हैं, नाक तोते जैसी नहीं है परंतु इकहरे शरीर पर सौंदर्य जैसे खूब फबता है। इस नारी-शरीर का प्रत्येक अंग मर्यादा के साथ पूर्ण रूप से विकसित था। इन सबसे भी अधिक आकर्षण 'उनका' मधुर स्वर था जो अनायास ही श्रोता को वश में कर लेता था।

'तुम्हारा हृदय क्या कहता है राजू ? क्या इस विवाह को रोक सकोगे ?'

'यह बात निश्चित रूप से तो नहीं कही जा सकती मां !'

'क्या जमींदार साहब कुछ सुनेंगे भी नहीं ? विचारेंगे भी नहीं ?'

'उनके नेत्र और कान नहीं रहे माँ ?' राखाल बोला—'इस समय मामा जी की आँखें उनकी आँखें हैं और घर वाली के कान उनके कान और मेरे विचार से यह सम्बन्ध उन्हीं ने ठीक किया है ?'

'आखिर जमींदार साहब क्या करते हैं ?'

'जो कुछ सदा किया है वही, हरगोविन्द की पूजा और यह रोग तो आज कल और भी बढ़ गया है। पूजा की कोठरी में ही दिन समाप्त हो जाता है, दूकान पर जाने की तो चिन्ता ही नहीं।'

'घर और व्यापार को कौन देखता है ?'

'व्यापार मामा जी के हाथ में है; घर का प्रबन्ध उनकी माता जी यानी जमींदार साहब की सास करती हैं।'

'परंतु मुझसे क्या पूछती हो, आप तो सभी कुछ जानती हैं, आज हम वहाँ जायंगे लेकिन परिणाम तो आपको विदित ही है !' सुनकर नई माँ ने एक गहरी साँस ली और हृदय मसोसकर चुप हो गईं। अचानक द्वार के बाहर एक शब्द सुनाई दिया। किसी बच्चे से कोई पूछ रहा था कि राजू बाबू का क्या यही घर है ? फिर बच्चे ने उत्तर दिया—'यहाँ तो रखाल राज रहते हैं।'

'हाँ भाई ! मैं उन्हीं का घर पूछ रहा हूं।' इतना कहते हुए एक सज्जन ने द्वार खोला और झाँककर बोले—'क्या राजू बेटा है ? है तो ?' राखाल पर दृष्टि पड़ते ही सज्जन मुस्कराकर अन्दर आ गये। स्नेहसिक्त वाणी से बोल उठे—सोच रहा था कि तुम्हारा मकान मिलेगा या नहीं । अचानक उनकी दृष्टि आलमारी के पास मौन खड़ी महिला पर गई। कुछ चकित से होकर वे पीछे हटे और द्वार के पास आकर हठात् कह उठे—'नई बहू !' और फिर राखाल पर दृष्टि डाली।

क्षण भर के लिए एक विचित्र दृश्य नेत्रों में झूल गया। राखाल का मुख-मण्डल इस समय सफेद था। वह किंकर्तव्य-विमूढ़ पाषाणवत् खड़ा था। एक अज्ञात भय की आशंका ने उसे घेर लिया था। नवागन्तुक ने क्रम से तीनों व्यक्तियों पर दृष्टि डाली और फिर उसी शान्त स्वर से कहने लगे—'क्या कुछ षड्यन्त्र कर रहे थे ? शराबियों के अड्डे पर पुलिस का सिपाही आने से जैसी

दशा होती है उसी प्रकार घबराने की क्या बात है नई बहू ?'

'जी हाँ, मैं नई बहू ही हूँ।' कुछ सामने को आते हुए कहा।

'फिर बैठो न, अच्छी तो हो !' कहते हुए कुर्सी पर बैठ गये—'नई बहू ! तनिक हमारे राजू की ओर तो देखो, यह सोचता होगा कि मेरा तुम्हें पहिचानना ही घोर संग्राम का निमन्त्रण है। लगता होगा अब यहाँ पर कोई भी वस्तु टूट-फूट से नहीं बचेगी।' तारक, राखाल और नई माँ तीनों के मुंह पर इन शब्दों को सुनकर मुस्कान की रेखा दौड़ गई। तारक समझ गया कि यही जमींदार साहब हैं, इस समय उसका मन आनन्द और विस्मय से परिपूर्ण था। जमींदार साहब ने नई बहू से बैठने के लिए आग्रह किया। नई बहू के बैठने के पश्चात् उन्होंने कहना प्रारम्भकिया—'परसों रेणुका का विवाह है। लड़का स्वस्थ और सुन्दर है, अभी पढ़ रहा है ; परिवार भी जाना-पहिचाना है। धन, सम्पत्ति किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। कलकत्ते में उनके चार मकान हैं, पास के पास जब मन चाहे बेटी और दामाद से मिल सकते हैं। यह गोविन्द जी की ही कृपा है नई बहू, कि इतना सुन्दर वर मिल गया, अन्यथा मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ थी कि···।' कहकर उन्होंने भगवान् की स्मृति में दोनों हाथ जोड़े। पुत्री के सुख की कल्पना से जमींदार साहब का हृदय आनन्द-विभोर हो रहा था। सब शान्त बैठे हुए थे। जमींदार साहब के सुख-स्वप्न के इस माया-जाल को तोड़ने की शक्ति तीनों में से किसी में भी नहीं थी। वे फिर कहने लगे—'अपने राखाल को लेने के लिए तो हमें स्वयं ही आना होगा, केवल निमन्त्रण से काम नहीं चलेगा। राजू के अतिरिक्त हमारे यहाँ कर्ता-धर्ता का भार सम्भालना किसके बस का है। कल संध्या को लौटने पर रेणुका से पता लगा कि तुम वहाँ किसी आवश्यक काम से गये थे. सूचना पाते ही मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि तुम्हारी ही गली में आकर पुरानी भूलों को समाप्त कर दिया जाये। इसीलिए दोपहर को ही घर से निकल पड़ा और गोविन्द की कृपा से एक ही नहीं, सब काम सिद्ध हो गये। पता नहीं आज किस भाग्यशाली का मुख देखकर निकला था ?'

राखाल अधिक मौन न रह सका। निरीह व्यक्ति के समान बोल उठा—'जिस समय आपने घर छोड़ा, क्या आपको याद है कि उस समय मामा जा वहीं थे ?'

'क्यों, क्या बात है ?' जमींदार साहब ने पूछा ।

'बात केवल यही है कि वे भाग्य के बलवान हैं । घर से चलते समय यदि उनके मुख पर दृष्टि पड़ जाये तो सम्भव है कि···।'

'हाँ-हाँ, वे ही सामने आये थे ।' कहकर जमींदार साहब हँस पड़े ।

नई माँ ने चुपके से राखाल के मुंह पर दृष्टि डाली और फिर दूसरी ओर फेर ली । जमींदार साहब ने कहा—'राजू ! यह तुम्हारी बात कुछ जंची नहीं । नाते से तुम्हारी नई माँ के भी वे भाई ही होते हैं । बहिन के लिए भाई की बुराई सहन करना कठिन है । शायद मन-ही-मन तुम्हारी नई माँ अप्रसन्न हो रही हैं ।' राखाल खिलखिला कर हँस पड़ा और साथ ही जमींदार साहब भी ।

'मैंने ठीक ही तो कहा अप्रसन्न होने की बात ही है' —वह बोले ।

तारक अब एकान्त वातावरण में अपने को न सम्भाल सका और आखिर कह ही उठा—'कदाचित् घर से चलते समय आज आपने दुर्गा माता का स्मरण नहीं किया होगा ।'

जमींदार साहब इन शब्दों के रहस्य को न जान पाये, बोले—'भाई, अपने नित्य-कर्म के अनुसार मैंने तो गोविन्द का स्मरण किया था और अब भी उसी का स्मरण कर रहा हूँ ।

'इसीलिए आपको अपने कार्य में सफलता मिली । अगर दुर्गा माँ का नाम लेकर चले होते तो निश्चय ही कार्य सिद्ध होना कठिन था ।'

जमींदार साहब अब भी कुछ न समझ पाये । तब राखाल ने तारक का परिचय देते हुए पिछले दिन की समस्त घटना उनके सामने रखी । कल वे दुर्गा माँ का स्मरण करके गये थे इसलिए भेंट न हो सकी । कदाचित् इसका मूल कारण दुर्गा माँ का प्रभाव ही था । तारक के जीवन में इस नाम ने पहिले भी कभी इसी प्रकार का प्रभाव दिखाया था और इसीलिए वह इस नाम से कुछ चिढ़ने लगा था ।

पूरी कहानी सुनकर जमींदार साहब हँसे और फिर गम्भीर होकर कहने लगे—'हो सकता है बेटा ! ऐसा अवश्य हो सकता है । इसमें सन्देह नहीं । 'नाम और द्रव्य' की महिमा संसार में अनेक व्यक्ति जानते हैं । मैंने जीवन में

इसकी परीक्षा की है। 'भुनी मटर' के नाम से मुझ पर विपत्ति आ जाती है।'

राखाल उत्कण्ठित स्वर में बोला—'यह किस प्रकार बाबू जी ?'

'इसके लिए पूरी कहानी सुनानी होगी। शैशवावस्था में मेरा नाम 'बिलाई' पुकारा जाता था और भुनी मटर मुझे बहुत प्रिय थी। मुझे उसका फल मिला। मेरी रिश्ते की दीदी मुझसे कहा करती थीं—

'बेटा ! भुनी मटर यदि खाओगे।

ताला तोड़ लुगाई भागे, पता कहीं नहीं पाओगे।—अब क्या तुम नहीं देख रहे हो कि दादी का कथन कितना सत्य निकला ? बचपन की भुनी मटर ने बुढ़ापे में मेरी क्या दुर्दशा नहीं की ? क्या मेरा सर्वनाश नहीं हो गया ? धन के दोष और गुणों का यह जीता-जागता उदाहरण है। इसी प्रकार नाम का भी प्रभाव होता है।'

तारक और राखाल के मुख लज्जा से नीचे झुक गये, लेकिन नई माँ ने दबी आवाज से गम्भीर स्वर में कहा—'बच्चों के सम्मुख क्या तुम्हें इस प्रकार कहना चाहिए ?'

'क्यों, बच्चों को होशियार करना मेरा कर्त्तव्य है। कहीं ये भी भुनी मठर न खाने लगें।'

'तब फिर आप इन्हें होशियार कर दीजिये, मैं जाती···।'

'सदा हठ और क्रोध करने का ही तो बस तुम में दोष है नई बहू !—सत्य बात मुझे कभी भी नहीं कहने देना चाहती। मैं समझता था कि वास्तविक दोषी को जानकर तुम्हें प्रसन्नता होगी, लेकिन यहाँ विपरीत देख रहा हूँ। नई माँ ने दोनों हाथ जोड़ दिए और राजू से बोली—'बेटा, कल तुम जिस काम से गये थे उसे इनसे कहो।'

राखाल बगलें झाँक रहा था लेकिन नई माँ के सामने अन्त में कहना ही पड़ा—'बाबूजी रेणुका का विवाह जहां आपने ठीक किया है वहाँ नहीं होगा।' ये शब्द सुनते ही जमींदार साहब के मुख की मुस्कान एकदम विलीन हो गई और वे सावधानी से बोले—'क्यों ? क्या बात है बेटा ?'

और राखाल ने स्पष्ट रूप से कारण खोलकर समझा दिया।

'तुम्हें इसकी सूचना किसने दी ?'

'नई माँ ने।'

'और इनको किसने सूचना दी ?'

'यह आप इन्हीं से पूछ सकते हैं।' कहकर वह चुप हो गया।

'क्या यह बात सच है ? नई बहू !' वे कुछ देर मौन रहकर बोले।

'हाँ, सच है !' कहकर नई बहू ने सिर हिलाकर संकेत किया।

'परन्तु अब क्या किया जावे ? लड़की दिखाई जा चुकी। हल्दी चढ़ गई है और परसों तो विवाह है !—एक दिन में दूसरा वर कहाँ मिलेगा ?'

'यह वर आपने नहीं खोजा, जिसने खोजा है उसको दूसरा वर खोजने की आज्ञा दीजिए।' नई माँ गम्भीरतापूर्वक बोलीं।

'वह लोग सुनेंगे इसमें सन्देह है और फिर मैंने आज्ञा देना नहीं सीखा—इसी कारण सब मनमानी करते हैं। वह सब तो अपने भी नहीं हैं, पराये हैं, तुम अपनी हो, लेकिन क्या कभी मेरे किसी कहने पर ध्यान दिया ?' जमींदार साहब गम्भीरतापूर्वक कह रहे थे। गत जीवन की इस दुःखभरी कहानी में छुपी हुई शिकायत थी, जिसे इन दोनों व्यक्तियों के अलावा अनुभव करने की शक्ति और किसी में न थी ? नई माँ ने मौन होकर लज्जा से मुख नीचा कर लिया। जमींदार साहब मन-ही-मन विचारों के जाल म उलझे हुए कुछ देर चुप बैठे रहे और फिर 'असम्भव' शब्द उनके मुख से निकल पड़ा।

मृदु स्वर में राजू ने पूछा—'असम्भव क्यों ?'

'क्योंकि कुछ हो नहीं सकेगा अतः असम्भव नहीं तो और क्या है ? नई बहू नहीं जानती और जानकर करेंगी भी क्या। लेकिन तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है।' उनके शब्दों में निराशा का स्वर मिला हुआ था।

शान्त वातावरण को नई माँ ने बहुत गम्भीर वचनों से तोड़ते हुए कहा—'नई बहू नहीं जानती तो न सही, आप तो जानते हैं। रेणुका की माँ मर चुकी लेकिन पिता जीवित हैं। पिता के नये साले साहब रेणुका को पागल के हाथ में सौंपना चाहते हैं, क्या नई पत्नी और नये साले के सामने पितृत्व शिथिल हो चुका है और उसे रोका भी नहीं जा सकता ?' नई माँ के मुख पर आवेश, घृणा और उग्रता की भावनाएँ साकार हो रही थीं। जमींदार साहब को तुरन्त नई बहू के स्वाभिमान का स्मरण हो आया। यह वही नई बहू हैं, जो

मनमानी करने के लिए जीवन की समस्त सुख-सुविधाओं को ठुकरा सकती हैं। राखाल को पहिचानने में देर न लगी कि यह उसकी वही नई माँ हैं जो उसे आश्रय देकर अपनी ससुराल में लाई थीं, जहाँ अभी कुछ क्षण पहले हास्य प्रस्फुटित हो रहा था वहीं वेदना और लज्जा का साम्राज्य छा गया। राखाल खड़ा हो गया और नई माँ के मना करने पर भी यह कहता हुआ कि माँ आपने पान नहीं खाया है अभी लेकर आता हूं, तारक को साथ ले घर से बाहर चला गया।

एकान्त घर के शान्त वातावरण में दो प्राणी एक दूसरे के सम्मुख कुछ संकुचित भाव से बैठे थे। सूर्यलोक के प्रकाश को दो बादलों के समान रोकने वाले दो व्यक्तियों के चले जाने से वहाँ स्वतन्त्र प्रकाश फैला और कुहरा समाप्त हुआ। स्त्री और पुरुष के निकटतम सम्बन्ध में भी इसी प्रकार लज्जा और गाम्भीर्य का भाव पाया जा सकता है, यह आज इन दो मूर्तियों ने स्पष्ट कर दिया। जमींदार साहब समझ गये कि उनकी परिहासात्मक बातें समय के अनुकूल नहीं थीं। अपनी 'भुनी मटर' वाली बात उन दो बच्चों के सम्मुख कहने पर उन्हें मन-ही-मन पश्चाताप हुआ। अपनी रसिकता का प्रदर्शन इस मौन और लज्जा से परिप्लावित नारी के सम्मुख करना उन्हें मन ही मन खलने लगा और उन्होंने अपने मन को इसके लिए कई बार धिक्कारा।

राखाल ने पान लाने का बहाना करके यह एकान्त समय इन दो वर्षों से भटकी हुई आत्माओं को दिया था, परन्तु अभी तक दोनों मौन थे। उनके लौट आने पर समय का ठीक उपयोग नहीं हो सकेगा—शायद इसीलिए नई बहू ने कहना शुरू किया—'क्या आप मुझे क्षमा कर देंगे ?'

'तुम्हारी समझ से क्या तुम क्षमा की जा सकती हो ? बोलो नई बहू !'

'तुम कर सकते हो। शायद संसार में और कोई न कर सके।' उनके नेत्र सजल हो गये। कुछ देर मौन रहकर बोले—'यदि मेरे स्थान पर तुम होतीं तो क्या क्षमा कर देतीं ?'

'मैं होती तो अवश्य कर ही देती, क्योंकि इस धरती पर कोई ऐसी स्त्री नहीं जिसे अपने स्वामी का अपराध क्षमा न करना पड़ा हो। लेकिन यहाँ यह तुलना तुमसे नहीं की जा रही है। भाग्यवश मुझे ऐसा स्वामी मिला

जिसके विषय में न पाप की भावना की जा सकती है और न कलंक की। इस बात का उत्तर मैं तुम्हें नहीं दे सकूंगी।'

'परन्तु मेरी क्षमा का तुम क्या करोगी ?'

'जब तक यह शरीर इन प्राणों को संभाले हुए है तब तक उस क्षमा को भी सुरक्षित रखेगा। परन्तु क्या आपने मुझे भुला दिया है ?' अचानक वह कह उठीं।

'इस विषय में तुम्हारा हृदय क्या कहता है ? बोलो !' कुछ देर के लिए दोनों चुप रहे। नई बहू से उत्तर न पाकर स्वयं जमींदार साहब ही बोले—'क्षमा की याचना मत करो नई बहू ! क्योंकि क्षमा करने पर मेरे अभिमान को ठेस लगेगी। यह मैं नहीं कर पाऊंगा। हां, इतना विश्वास रखो कि मैंने तुम्हें कभी अभिशाप भी नहीं दिया और न दे ही सकूंगा। तुम विश्वास कर सकती हो ? बोलो नई बहू !'

'अवश्य करती हूं ?' नई बहू नतमस्तक हो गई।

'यदि यह बात है तो मेरा कष्ट इससे कुछ कम अवश्य होगा। उस दिन सब मुझे अन्धा मूर्ख बतला रहे थे—कहते थे दिखलाने पर भी यह देख नहीं सकता, प्रमाणों पर विश्वास नहीं करता—ऐसे व्यक्ति की इसी प्रकार दुर्दशा होनी चाहिए। लेकिन नहीं ! क्या इस दुर्दशा से अपने को अन्धा मान लेता ? क्या मैंने कोई अपराध किया ? मुझे भाई ने, बन्धु-बान्धव और सभी आत्मीय जनों ने धोखा देकर ठगा; नौकर-चाकर, दास-दासी मित्र और परिचित सभी ने हड़पना चाहा। उस सर्वनाश के समय में मैं तुम्हें ब्याह करके लाया। तुमने आते ही उस अव्यवस्था को एकदम समाप्त करके घर को फिर धन-धान्य से भर दिया, मैंने उन पर अविश्वास किया, इसलिए अन्धा कहलाया और जिन्होंने षड्यन्त्र करके बाहर के आदमियों को मिलाकर तुम्हें नीचा दिखलाया और घर से निकाल दिया वह बन गये आंखों वाले। मेरी वर्तमान दुर्गति का मूल कारण उनकी शिकायतें और बेहूदगियों को ध्यानपूर्वक न सुनना है। मेरे कष्ट-पूर्ण जीवन की यही कहानी है नई बहू।'

न जाने कब से नई बहू एकटक उनके मुख पर दृष्टि जमाये यह सब सुन रही थी कि सहसा बात रुकने पर उन्होंने अचानक मुख नीचा कर लिया।

वह चुप थीं। उन्होंने फिर कहना शुरू किया—'तुम मेरी केवल पत्नी मात्र नहीं थीं; सम्पूर्ण परिवार की पालन करने वाली गृहलक्ष्मी थीं। तुम्हारा स्थान मेरे सब मित्रों और आत्मीयों में प्रथम था—मेरे ऊपर तुम से अधिक श्रद्धा-भक्ति रखने वाला, कभी कोई उत्पन्न नहीं हुआ।' तुम मेरी मङ्गल-कामनाओं की संरक्षिका थीं। किन्तु मैं एक बात का उत्तर आज तक नहीं पा सका, नई बहू! आज भाग्यवश तुम्हारे दर्शन हो सके; तुम चाहो तो उत्तर दे सकोगी। कहो तो! आखिर तुम्हें उस दिन क्या हो गया था? इतना अपनत्व होने पर भी क्या वास्तव में तुम मुझे प्यार नहीं कर पाई थीं। तुम्हें बिना समझे-बूझे कभी कोई काम करते मैंने नहीं देखा। तुम्हारा उत्तर शायद आज भी मेरे व्यथित हृदय को कुछ शीतल कर सके। बोलो नई बहू!'

नीचा ही सिर किये हुए नई बहू ने केवल इतना ही कहा—'आज नहीं।'

'फिर कब उत्तर दोगी? यदि फिर भेंट न हुई तो क्या पत्र द्वारा भेजोगी?'

'नहीं; मुंह से भी नहीं कह सकूंगी और न पत्र द्वारा ही।' कहकर नई बहू फिर चुप हो गई।

'तब क्या यह भेद सर्वदा मेरे हृदय की जलन ही बना रहेगा?'

'जब मैं जान जाऊंगी तब तुम भी जान जाओगे।'

'लेकिन यह तो पहेली बन गई।'

'बन जाने दीजिए! आज आपने मुझे आशीर्वाद दिया इसका अर्थ है कि एक दिन मैं आपको अवश्य ही बतला सकूंगी।' इसी समय द्वार के पास से राखाल का शब्द आया—'हमें बहुत देर हो गई' और इन शब्दों के साथ ही वह अन्दर घुस आया। पान का डिब्बा नई बहू के सामने रखते हुए बोला—'बड़ी ही सावधानी से लाया हूं माँ! किसी ने छुआ नहीं है, निःसंकोच होकर खाइए।' नई बहू ने जमींदार साहब के सामने रखने का इशारा किया। राखाल ने सिर के संकेत से मना किया। वह समझ कर बोले—'मैंने तेरह वर्षों से पान खाना छोड़ दिया है।' पान योंही मेज पर रखे रहे। तारक पीछे आकर चुपचाप खड़ा हो गया। वह अपने घर को जाना चाहते हुए भी नहीं

जा पा रहा था। शायद यह बात राखाल को खटकी भी हो, परन्तु शब्दों में कोई प्रदर्शन नहीं हुआ। फिर जमींदार साहब बोले—'क्या तुमने अपनी सोने की जञ्जीर भट्टाचार्य की लड़की को शादी में देने का वचन दिया था? शादी तो हो गई और संकोचवश अभी तक उसने जिक्र भी नहीं किया था लेकिन इस बार जब दुर्गापूजा पर वह आई तो उसने उसकी माँग की—क्या वह जंजीर उसे दे दी जाय?'

'हां, यह वचन मैंने अवश्य दिया था।'

'दूसरी बात यह है कि तुम्हारा जो रुपया व्यापार में लगा था वह अब मूल और ब्याज मिलाकर पचास हजार होता है। क्या वह निकालकर तुम्हारे पास भिजवा दूं?'

'निकालिए मत, उसे और बढ़ने दीजिए।'

'गत वर्ष व्यापार में हानि रही नई बहू! इसलिए डरता हूं कि कहीं रुपया घाटे में न चला जाय।' वे बोले।

'आपका विचार तो ठीक ही है। वहां से आप रमण को अलग करके मृणाल को भेज दीजिए। रुपया नहीं डूबेगा।' कुछ विचार कर नई बहू बोली।

व्रज बाबू (जमींदार साहब) के नेत्र सफल हो रहे थे। धीरे-धीरे कहने लगे—'मैं बूढ़ा हो गया। अब गाड़ी खींचे नहीं खिंचती। कभी सोचता हूं कि सब कुछ छोड़कर भगवान् का भजन करूं।' बीच में ही नई बहू बोल पड़ी—'यह अभी नहीं होगा।' व्रज बाबू चुप थे और बहुत देर इसी प्रकार बैठे रहे। फिर अचानक कह उठे—'गांव की सम्पत्ति में से कितना भाग तुम ठीक समझती हो कि भैया के पुत्रों को दे दिया जाय?'

'सब भूमि उन्हें दे दीजिए, उनके पास और है ही क्या?'

'सब!'

'क्यों, इसमें बुरा ही क्या है?'

'यही होगा तुम भूली नहीं होगी कि भैया की बड़ी लड़की को कुछ देने का वचन एक बार दिया था। वह मर चुकी। उसकी एक लड़की है जिसकी दशा बहुत दयनीय है। उसके लिए क्या बोलती हो?'

'सोनपुर की आय एक हजार से अधिक है, उसी में से सौ रुपया महीना उसके लिए निश्चित कर दीजिए। ठीक है न ?'

'ठीक ऐसे ही होगा।'

कुछ समय ऐसे ही बीता।

'हां ! एक बात और है नई बहू, तुम्हारे आभूषण जो बक्स में बन्द पड़े हैं, बनने के पश्चात् एक दिन भी नहीं पहिने गये; क्या उन्हें तुम्हारे पास भिजवा दूं ?'

नई बहू ने चुप होकर सिर नीचा कर लिया मानो इस कथन का वह कुछ अर्थ समझ ही नहीं पाई। उनकी आँखें भर आईं और उनमें से टपटप आंसू गिरने लगे। ब्रजबाबू को अपनी भूल अनुभव हुई और वे बात बदल कर बोले—'चलो रहने दो नई बहू, तुम्हारी रेणुका उन जेवरों को पहना करेगी।' घड़ी में देखा तो सन्ध्या का समय हो गया—'अच्छा तो मैं अब चलूं।' वह कह उठे।

राखाल जानता था कि चाहे जो कुछ भी क्यों न हो बाबू जी अपनी सन्ध्या, भजन और गोविन्द पूजा का समय नहीं टाल सकते। नई बहू को इस बात का पता था कि उनके निराश्रित जीवन में यह पूजा-पाठ ही एक मात्र आश्रय रह गया था। नई बहू ने नेत्र पोंछकर कहा—'तो फिर रेणुका की शादी का प्रश्न यों ही रह गया ?'

'तुम जो नहीं चाहतीं वह नहीं होगा नई बहू।'

नई बहू को सन्तोष हुआ। 'बेटी की रक्षा हुई।'

'लेकिन शादी कहीं-न-कहीं करनी होगी। खाता-पीता और नेक लड़का होना चाहिए। बेटा राजू ! अनेक परिवारों में तुम्हारा मेल है, तुम अवश्य कोई कुलीन लड़का ढूंढ़ सकोगे !' यह सुनकर भी राखाल मौन हो बैठा रहा। नई बहू कहने लगीं—'आखिर इतनी जल्दी की क्या आवश्यकता है ?'

'लोकाचार तो निभाना ही होगा नई बहू। शीघ्र ही कहीं न कहीं शादी करनी पड़ेगी। देरी होने पर अमंगल का भय है।' उन्होंने कहा।

'यदि-योग्य वर न मिला तो ?'

'उसे खोजना होगा।'

'लेकिन न मिलने पर क्या पागल के बदले बन्दर के हाथों लड़की को सौंपा जायगा ?'

'यह तो लड़की का भाग्य है।'

'इससे तो यही अच्छा है कि हाथ-पैर बाँधकर, जैसे आप कह रहे थे, लड़की को किसी नदी में फेंक दीजिए।'

व्यर्थ के वाद-विवाद को रोकने के लिए राखाल बीच ही में बोल उठा— 'मेरे विचार से मामा जी इस विषय में अपनी बखेड़ाबाजी फैलायेंगे। आपका क्या विचार है बाबू जी ?'

'उसके स्वभाव से तो तुम परिचित ही हो राजू ! सहज में मनाना उसके लिए कठिन है।' मुख पर एक हल्की-सी हँसी लेकर ब्रजबाबू बोले। राखाल इस बात को जानता था इसलिए चुप रहा। लेकिन नई बहू कुछ क्रोधित होकर कह उठीं—'रेणुका आपकी है, जहाँ आप चाहेंगे विवाह करेंगे, इसमें हेमन्त बाबू टाँग अड़ाने वाले कौन होते हैं ? और यदि वह टाँग अड़ायेंगे तो आपको चिन्ता करने की क्या बात है ?'

ब्रजबाबू का दबी जबान से निर्बल और निरुत्साहपूर्ण उत्तर था। नई बहू भाँपकर बोलीं—'आपके कोई लड़का नहीं, सिर्फ दो लड़कियाँ हैं। कलकत्ता जैसे शहर में उनके लिए वरों की कोई कमी नहीं, यह बात दूसरी है कि कुछ दिन रुकना पड़ जाय। हल्दी चढ़ गई, दिखावा हो चुका, केवल इन्हीं कारणों वश पागल और नालायक लड़कों के हाथों में लड़कियों को नहीं दिया जा सकता ! हेमन्त बाबू को कोई अधिकार नहीं कि वह इसमें रुकावट दें ?'

उदासीन से मलिन और शिथिल से स्वर से पति ने 'हाँ' भर कर कहा।

अब राखाल ने बात स्पष्ट की—'माँ ? जो बातें आपने कहीं वे न्याय की कसौटी पर ठीक उतरती हैं लेकिन आप मामा जी के स्वभाव से अनभिज्ञ हैं। कलकत्ता भर खोजने पर उन्हें रेणुका के लिए पगला दामाद मिल गया है—इनके कहने से मामा जी सम्बंध समाप्त करने वाले नहीं हैं।

'फिर क्या करेंगे ? जरा मैं भी तो सुनूं।' बीच ही में आवेग के साथ नई माँ ने कहा।

राखाल चुप हो रहा।

'लजा क्यों रहे हो राजू ! मैं आज्ञा देता हूं, बता डालो !' ब्रजबाबू कह उठे।

राखाल ने कहना प्रारंभ किया—'वह विचित्र आदमी है, मां। मौका पड़ने पर मार-पीट भी कर सकता है।'

नई बहू का मुंह तमतमा उठा। बोलीं—'किसको ? क्या बाबू जी को ?'

'जी हां, बाबू जी को भी वह एक बार धक्का देकर गिरा चुके हैं। लग-भग पन्द्रह-सोलह दिन तक बाबू जी पलङ्ग पर पड़े रहे।' नई मां के नेत्र ज्वाला के समान लपटें निकाल रहे थे। वह बड़े वेग से कहने लगीं—'और इतना करने के पश्चात् भी वह कृतघ्न उसी घर में खाता-पीता और रहता है।'

'केवल अपने आप ही नहीं, अपनी मां को बाबू जी की सास को भी लेते आये हैं। उनके और कुटुम्बी सब मर चुके हैं नहीं तो शायद वह भी आकर इसी घर में जम गये होते। अब उन्हें इस घर से हटाना कठिन है मां ! उनकी जड़ें गहरी जम चुकी हैं। मुझे अपना आश्रय का हाथ देकर आप उस घर में लाई थीं और अपना समझ कर पाला था लेकिन उनकी कुटिल दृष्टि का आघात मैं सहन न कर सका, भागना ही पड़ा आखिर ! रेणुका के विवाह के विषय में बाबू जी क्या कुछ कर सकेंगे यह इस समय जान लेना असम्भव नहीं तो कठिन समस्या अवश्य है।'

नई बहू आश्चर्य और क्रोध से लाल पड़ गईं। उनकी आंखों से ज्वाला की चिनगारी निकल रही थी। राखाल ने फिर बाबू जी की ओर इशारा करके कहा—'आजकल मामा जी घर के स्वामी हैं और उनकी माता स्वामिनी। उनकी क्रोधाग्नि में अकेले बाबू जी को डालते मेरा हृदय कांप रहा है और इधर पागल वर से रेणुआ की रक्षा का प्रश्न है। पति और पुत्री दोनों ही आपत्ति के गहरे समुद्र में गोते लगा रहे हैं मां ! कहीं पर किनारा नहीं दिख-लाई देता। इस विपत्ति को देखकर मन चाहता है कि सिर को जोर से पृथ्वी पर पटक दूं।'

नई मां निरुत्तर होकर सामने पड़ी मेज पर सिर रखकर चुप हो गईं।

वातावरण शान्त था और न जाने कितनी देर तक रहता कि द्वार पर आवाज हुई और एक बारगी नौकर ने आकर बहू की तरफ मुख करके कहा—

'माँ !' वह घबराया हुआ था।

नई माँ ने सचेत होकर कहा—'तू है !'

'मैं ड्राइवर को सङ्ग लेकर आया हूँ, शीघ्रता कीजिए ! बाबू जी बहुत अप्रसन्न हो रहे हैं।' बात साधारण थी लेकिन इतने अशिष्ट ढङ्ग से कही गई थी कि ब्रज बाबू ने लजाकर मुंह एक ओर फेर लिया।

'माँ, शीघ्रता कीजिए, अन्यथा अनर्थ हो जायगा।' देर करना नौकर को सहन नहीं हो रहा था। उसका उतावलापन व्यर्थ की शंकाओं को भी जन्म दे रहा था। इस बात को भला वह बेचारा क्या जाने ? 'जल्दी चलने के लिए मैं गाड़ी लाया हूँ।' उसने फिर कहा।

'क्यों, क्या बात है ?'

नौकर को उत्तर देने में सङ्कोच हुआ क्योंकि स्पष्ट बात बतलाने के लिए उसे मना कर दिया गया था। वह असमञ्जस में बगलें झांक रहा था।

'बाबू ने मुझे किसलिए बुलाया है ?' माँ ने पूछा।

'मार्ग में सब कुछ बतला दूंगा माँ ! आप जल्दी कीजिए।'

नई बहू ने अधिक विवाद करना पसन्द नहीं किया और बोलीं—'लीजिए अब मुझे चलना ही होगा। मैं जा रही हूँ।'

'जा रही हो ?' धीमे से निराशा के स्वर में वह बोले।

'हाँ ! आपने मुझे बुलवाया नहीं था इसलिए रोकने का अधिकार भी आपको नहीं है। मुझे जाना ही होगा। एक बार विचार कर कहिए नई बहू को जिसे न कभी कुछ आपने बतलाया ही है और न जिसको कभी कुछ कहा ही है क्या उसके अन्तर को पहचाना जा सकता है ? बोलिए बड़े बाबू !'

जमींदार साहब शान्त मुद्रा में केवल नई बहू के शब्दों को सुन एकटक होकर उनका मुख देखने लगे। नई बहू फिर कहने लगीं—'मेरी क्षमा की भिक्षा आपने अस्वीकार कर दी। क्षमा लेकर मैं क्या करती, यह मैं जानती हूँ लेकिन आपका इस प्रकार उपेक्षा करना कहाँ तक ठीक था ! मैंने जीवन भर आपसे किसी बात की याचना नहीं की; मैंने उसमें लज्जा का अनुभव किया और साथ ही अभिमान का भी और कोई चाहे मुझसे कुछ भी कहे, लेकिन आपके लिए इस तरह कहना ठीक नहीं।' बड़े बाबू के हृदय में उथल-

पुथल मच गई थी। एक पुरानी घटना की स्मृति उनके नेत्रों में चित्रित हो उठी—रेणुका के जन्म के बाद नई बहू अस्वस्थ थीं और किसी बहुत ही आवश्यक काम से उन्हें ढाका जाना था—'मुझे सोता हुआ छोड़कर चले मत जाइएगा'—यह शब्द उसी मधुर कण्ठ के थे जिनका उल्लंघन नहीं हो सका, हो नहीं सकता था—बड़ी भारी हानि होने पर भी वहाँ नहीं गये और मित्रों में 'स्त्री-दास' की उपाधि ग्रहण की। लेकिन आज…।'

इन सभी बातों को समझने में नौकर असमर्थ था अतः नई बहू को देर करते देख घबराहट में कह उठा—'आपका एक किरायेदार अफीम खाकर मर रहा है, माँ! इसीलिए दौड़कर बुलाने आया हूँ।'

'अफीम कौन खा गया रे?' नई माँ ने घबराकर पूछा।

'नीचे वाले बाबू की स्त्री।'

'और नीचे वाले बाबू हैं कहाँ?'

'वे तो सात-आठ दिन से गुम हैं। सुना है कि उनकी नौकरी छूट गई थी, इसीलिए घर छोड़कर कहीं भाग गये।'

'और तुम्हारे बाबू क्या कर रहे हैं? क्या उसे अस्पताल भिजवा दिया?'

'अभी कहाँ माँ! वह तो पुलिस के भय से दुकान पर चले गये। आपके किरायेदार हैं, आपको ही उसका कुछ प्रबन्ध करना होगा। बहू के बचने की आशा नहीं दिखाई पड़ती।'

'माँ, मैं आपके साथ चलूं! आवश्यकता पड़ सकती है।' राखाल ने खड़े होकर कहा।

'हाँ! चलो बेटा!'

नई माँ ने जाते समय पति के चरण छुए और चरण-धूलि मस्तक पर लगाई। सब घर से बाहर आ गये और राखाल ने ताला लगा दिया।

४

नई माँ ने बुलाया नहीं, राखाल स्वयं ही सहायता के लिए जा रहा है। इन दिनों रमणी बाबू भली-भाँति राखाल को जानते-पहचानते थे। तेरह वर्ष

बीत गये हैं और दोनों ही ओर बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है; लेकिन राखाल को न पहचानने का भी कोई कारण नहीं है; कम-से-कम यही संभावना अधिक है।

गाड़ी के भीतर बैठकर राखाल सोचने लगा—शायद वह दुकान न गये हों, शायद जाकर लौट आये हों, शायद घर न रहने के अपराध में मेरे सामने ही वह नई मा का अपमान कर बैठें—तब मेरे लिए लज्जा और दुःख के लिए स्थान न रहेगा। इसी प्रकार की अनेक चिन्ताओं से वह नई मां के पास बैठकर भी अस्थिर हो उठा। वह स्पष्ट देखने लगा कि उसके इस अचिन्तित आविर्भाव से रमणी बाबू के मन में सन्देह उत्पन्न होगा, और ब्याह के विषय को यदि नई मां ने गुप्त रखने का ही विचार कर रखा हो तो वह निःसन्देह ही व्यर्थ हो जायगा। कारण, सत्य और मिथ्या अभियोग को दूर करने के लिए उन पर अन्त में सच बात प्रकट करनी ही होगी।

वह गँवार नौकर ड्राइवर के पास बैठा था। मालिक के भय से उसकी घबराई हुई रुखाई और उत्तर में नई मां की वेदना से भरी लज्जित भाव की बातें राखाल को याद आ गईं। उसी की पुनरावृत्ति स्वयं मालिक के मुख से अब क्या आकार धारण करेगी—यह सोचकर वह व्याकुल हो उठा—उसके लिए बैठा रहना असंभव हो गया। उसने कहा—नई मां, गाड़ी रोकने के लिए कहिए, मैं उतर जाऊं।

नई मां ने विस्मित होकर कहा—क्यों भैया, कहीं क्या कोई बहुत आवश्यक कार्य है?

राखाल ने कहा—नहीं, काम तो कुछ वैसा नहीं है—लेकिन मैं कहता हूं, आज रहने दिया जाय।

नई मां ने कहा—लेकिन लड़की को यदि बचाया जा सकता है तो उसके लिए आज ही कुछ करना आवश्यक है और दिन कुछ नहीं।

ना कहना कठिन था। राखाल ने संकोच और कुंठा से विपन्न होकर अन्त को धीरे से कहा—मां, मैं सोचता हूं, रमणी बाबू कहीं कुछ विपरीत ध्यान न करें।

सुनकर नई मां हँस दीं। बोलीं—ओह, यह बात है! परंतु क्या यह

सोचकर कि कोई आदमी कुछ सोचेगा, लड़की को मरने दिया जाय भैया ! बड़े होकर तुमको शायद यही बुद्धि मिली है ? इसके सिवा, सुन तो चुके हो कि वह घर में नहीं हैं--पुलिस के हंगामे से घबराकर भाग गये हैं। शायद दो-तीन दिन इधर मुंह ही न करेंगे।

राखाल आश्वस्त नहीं हुआ। ठीक विश्वास भी नहीं कर सका; प्रतिवाद भी नहीं किया। इसी बीच में गाड़ी दरवाजे पर आ पहुँची। उसने देखा, उसका अनुमान ही सत्य है। एक प्रौढ़ अवस्था के भद्र पुरुष ऊपर के बरामदे में खम्भे की आड़ में खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे—वह शीघ्रता से नीचे उतर आये। राखाल ने मन में सोचा, अब खैर नहीं।

उनके चेहरे पर, आँखों में, कण्ठ-स्वर में घबराहट प्रकट हो रही थी। उन्होंने कहा—आ गईं ? सुना तो, जीवन की घरवाली ने कैसा अनर्थ...

बात पूरी नहीं हुई, एकाएक राखाल पर दृष्टि पड़ते ही रुक गये।

नई-माँ ने कहा—राजू को नहीं पहचान पाये ?

वह क्षणभर ध्यान से देखकर उठे—ओः राजू। हमारे राखाल। क्यों पहचान न पाऊँगा ? निश्चय ही पहचान लिया।

राखाल ने पहले ही के समान झुक कर प्रणाम किया। रमणी बाबू ने राखाल का हाथ पकड़ लिया। बोले—इतने दिन हो गये, एक बार सूरत भी नहीं दिखाई ? तुम भी खूब हो। लेकिन देखो, इस औरत ने कैसा अनर्थ कर डाला ! अब पुलीस घर भर के लोगों को परेशान कर डालेगी। फिर दुश्चिन्ता से एक लम्बी सांस छोड़कर बोले--बारबार तुम से कहा नई-बहू कि जिस तिसको किराए पर न रखो। लोग कहते हैं—'मरकही गऊ से सूनी गोशाला भली।' लो, अब संभालो। एक बात भी अगर कभी मेरी सुनी हो !

राखाल ने कहा—अस्पताल भेजने की व्यवस्था आपने क्यों नहीं की ?

"अस्पताल ? खूब ! तब क्या इसे छुड़ाया जा सकेगा ? अरे भाई, हों आत्महत्या है !'

राखाल ने कहा—लेकिन उसे बचाने का प्रयत्न तो करना चाहिए। नहीं तो आत्महत्या हत्या का रूप धारण कर लेगी !

रमणी बाबू ने घबराकर कहा—यह तो मैं जानता हूँ। किन्तु एकाएक

घबराकर कुछ कर डालना तो ठीक न होगा। सलाह-परामर्श करने की तो आवश्यकता है, पुलीस का मामला है कि नहीं!

नई-माँ ने कहा—तो फिर चलो, किसी अच्छे अटर्नी के आफिस में चलकर पहले सलाह ले ली जाय।

रमणी बाबू जल उठे। बोले—हंसी करने ही से तो काम नहीं होता नई-बहू। मेरी बात सुनतीं तो आज यह विपत्ति न आती।

ये सब उलहने अर्थ-हीन उच्छ्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं—यह नये आदमी राखाल को भी समझ में आ गया। नई-माँ ने उत्तर नहीं दिया, हँसकर केवल राखाल से कहा—चलो तो भैया, देखें चलकर, क्या किया जा सकता है। फिर रमणी बाबू को लक्ष्य कर के कहा—तुम ऊपर जाकर बैठो मंझले बाबू। लड़के को लेकर जो कुछ कर सकती हूं जाकर करूं। केवल यही करो कि घबराकर लोगों को परेशान न करो।

नीचे के खंड में तीन-चार परिवार किराए पर रहते हैं। प्रत्येक के पास दो कोठरी हैं। बरामदे में एक भाग तख्तों से घेर कर रसोईघर की एक लाइन बनाई गई है। उसमें ये लोग रसोई बनाते हैं और भोजन करते हैं। पानी के नल और पाखाने पर सब का समान अधिकार है। सभी किराएदार दफ्तरों के क्लर्क हैं। किराया काफी कम होने के कारण, महीने के अन्त में मकान बदल डालने की रीति इस घर में नहीं है। सभी प्रायः स्थायी रूप से रह रहे हैं। केवल जीवन चक्रवर्ती नया किराएदार था। इस घर में उसे रहते शायद दो साल से अधिक नहीं हुए। उसी की घरवाली ने अफीम खाकर यह झंझट खड़ा कर दिया है। इस बहू के अपने कोई लड़का बाला नहीं था, इसलिए सभी किराए-दारों के बाल-बच्चों का भार उसके ही ऊपर था। उन्हें नहलाना-धुलाना, सुलाना, उनके फटे कुर्ते-कपड़े आदि सीना—यह सब वही करती थी। गृहिणियों का हाथ खाली न होने पर जीवन की घरवाली की ही पुकार पड़ती थी। कारण, यह कामकाजी आदमी थी। फिर उसे काम ही कौन था। इतनी थोड़ी आयु में सुस्ती या आलस्य जरा भी नहीं। इस बहू के सम्बन्ध में सब किराए-दारों का यही सर्वसम्मत अभिमत था। वह चाहे जो हो, शान्त और निःशब्द प्रकृति के कारण सभी उससे प्रेम करते थे, स्नेह करते थे। लेकिन पांच-छः

महीने से उसका पति बेकार था और वह भी उसका ग्राज पाँच-सात दिन से पता नहीं है, यह खबर ग्राज ही उन लोगों ने सुन पाई, जब ग्राज वह बेचारी मरने को है। किन्तु, तो भी, किसी को यह विश्वास नहीं हो रहा था कि जीवन की बहू ग्रफीम खा सकती है। जैसे सब लोग यह स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे।

राखाल को लेकर नई माँ जब उसकी कोठरी में पहुँची, उस समय वहाँ कोई भी न था। जान पड़ता है पुलीस के हंगमे के भय से सभी जरा ग्राड़ में छिपे हुए थे। कोठरी गरीबी की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी। दीवाल के पास दो छोटी-छोटी पानी के बर्तन रखने की चौकियाँ थीं। एक के ऊपर दो पीतल-काँसे के बर्तन रखे थे ग्रौर दूसरी पर एक टीन का ट्रंक। सस्ते मूल्य के एक तख्त के ऊपर पुराने-फटे-मैले बिछौने के ऊपर वह लेटी थी। उस समय तक होश में थी। एक मर्द को देखकर उसने शिथिल हाथ से ग्राँचल जरा सिर पर ग्रागे खींचने की चेष्टा की। नई माँ ने बिछौने पर एक किनारे बैठकर ग्रार्द्र कण्ठ से कहा—यह काम क्यों किया बेटी—मुझसे सब बात क्यों नहीं कही ?

फिर हाथ से उसके ग्राँसू पोंछकर बोलीं—सच सच बताग्रो तो बेटी, कितनी ग्रफीम तुमने खाई ? ग्रौर कब खाई ?

इस समय साहस पाकर ग्रास-पास की कई ग्रौरतें कोठरी के भीतर ग्रा गईं। पास की कोठरी की एक ग्रधेड़ स्त्री ने कहा—पैसा तो ग्रधिक पास था नहीं ; जान पड़ता है, यही साधारण जरा-सी खाई है ग्रौर जान पड़ता है, तीसरे पहर के समय खाई है। मुझे जब मालूम हुग्रा, उस समय भी यह बात कर रही थी।

राखाल ने उसकी नाड़ी देखी, हाथ से पलकें उठाकर परीक्षा की। फिर कहा—जान पड़ता है, भय की बात नहीं है नई माँ। मैं एक गाड़ी ले ग्राता हूँ—ग्रस्पताल ले जाऊंगा।

उसने सिर हिलाकर ग्रापत्ति जनाई।

राखाल ने कहा—इस प्रकार मरने से लाभ क्या है, बताइए तो ? ग्रौर यह क्या कभी सुना नहीं कि ग्रात्महत्या के समान कोई पाप नहीं है ? जो स्त्री कह रही थी कि घर में डाक्टर को बुलाकर चिकित्सा की चेष्टा करना

उचित है, उसके उत्तर में राखाल ने नई मां को दिखाकर कहा—यह जब आ गई हैं तब रुपयों के लिए कोई चिन्ता नहीं है—एक के स्थान पर दस डाक्टर लाकर उपस्थित कर सकता हूं। लेकिन उससे सुविधा नहीं होगी नई मां। अस्पताल में ले जाकर यदि इनके प्राण बचाये जा सके तो पुलिस के हाथ से इनके शरीर को भी बचाया जा सकेगा, यह भरोसा मैं आप लोगों को दे सकता हूं।

नई मां ने प्रसन्न होकर कहा—यही करो भैया। गाड़ी मेरी खड़ी ही है, तुम ले जाओ।

उनके आदेश से एक दासी साथ जाकर उस स्त्री को अस्पताल पहुंचा देने के लिए राजी हुई। नई मां ने खर्च-वर्च के लिए राखाल के हाथ में कुछ रुपये थमा दिये।

संध्याकाल बीत गया है, निकटवर्ती रात्रि के प्रथम अन्धकार में राखाल ने अर्ध-चेतन उस अपरिचित नारी को अपने जोर से गाड़ी में डालकर अस्पताल के लिए यात्रा की। मार्ग में, गैस के उज्ज्वल प्रकाश में उस मरण-पथ की यात्री नारी का चेहरा बीच-बीच दिखाई पड़ जाने से राखाल को जान पड़ने लगा जैसे ठीक ऐसा उसने कभी नहीं देखा। उसने अपने जीवन में बहुत औरतों को देखा है। अनेक प्रकार की छोटी-बड़ी-जवान-अधेड़। तरह-तरह के चेहरे, तरह-तरह का डील-डौल। इकहरे, दोहरे, तेहरे, चौहरे बदन की—तीली-सी दुबली-पतली, मोटी-ताजी, हृष्ट-पुष्ट—लम्बी, ठिगनी—काली, गोरी पीले-फीके रंग की—बड़े-बड़े बालों वाली और झड़ते हुए छोटे-छोटे बालों वाली—पास-फेल—गोल और लम्बे चेहरे की—इस प्रकार की कितनी ही। आत्मीयता और परिचय की घनिष्ठता से उसकी जानकारी काफी से भी अधिक है। इस अवस्था में ही इन सबके बारे में देखने की उसकी साध मिट गई है। ठीक वितृष्णा नहीं, एक दबी हुई अवहेलना कहीं पर उसके मन के एक कोने में अत्यन्त गुप्त रूप से जमा हो रही थी। कल नई मां को देखकर उसमें पहला धक्का लगा था। तेरह साल पहले की बात को प्रायः वह भूला ही हुआ था ; किन्तु वही नई मां जवानी के दूसरे छोर पर पैर रखकर कल जब उसके घर के भीतर दिखाई दीं, तब कृतज्ञ चित्त से अपना संशोधन

करके यही बात उसने मन-ही-मन कही थी—नारी के सच्चे रूप का दर्शन कितनी बड़ी दुर्लभ वस्तु है, इस बात को जगत् के अधिकांश लोग जानते ही नहीं। आज गाड़ी के भीतर प्रकाश और अन्धकार की सन्धि में बार-बार इस मृत्योन्मुख स्त्री को देखकर उसी बात को उसने एक बार मन-ही-मन स्मरण किया। उसकी अवस्था उन्नीस-बीस वर्ष की ही होगी। साज-सिंगार और आडम्बर से शून्य दरिद्र भद्र घर की औरत है। अनशन और आधे पेट भोजन से उसके पीले पड़े हुए मुख पर मृत्यु की छाया पड़ी है; किन्तु राखाल की मुग्ध दृष्टि में जान पड़ा कि मृत्यु ने जैसे इस नारी को रूप के उस पार पहुँचा दिया है। किन्तु यह देह की अक्षुण्ण सुषमा से है या भीतर की नीरव महिमा से, राखाल भली भाँति समझ न सका। अस्पताल में अपनी शक्ति से भी अधिक उसके लिए करने का संकल्प किया; किन्तु इस दुःख चेष्टा की विफलता की चिन्ता से करुणा के मारे उसकी आँखों में आँसू भर आये। एकाएक साथ की उस स्त्री के कंधे के ऊपर से रोगिणी का सिर लुढ़कते देखकर राखाल ने हड़बड़ाकर उसे सँभालने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि वह वैसे ही चटपट सँभल गया।

इस अपरिचिता की तुलना में कितने ही बड़े घरों की औरतों का उस समय उसे ध्यान आने लगा। वहाँ रूप की लोलुपता से कैसी उग्र अनावृत क्षुधा रहती है! रूप की दीनता को ढकने के कितने विचित्र आयोजन किये जाते हैं! कितने महँगे प्रसाधन होते हैं! उनमें कितना अपव्यय होता है! उसने बराबर अपनी आँखों से उन नारियों को परस्पर ईर्षा से कातर होकर पीठ-पीछे बुराई करते देखा है—उनकी जलन का अनुभव किया है।

और उसी समाज में एक यह नारी है जिसके शरीर पर न कोई आभूषण है और न सजाव-सिंगार! यह कुण्ठित श्री, यह अदृष्टपूर्व माधुर्य, इसे भी क्या अपमान के कारण वे उपहास से कलुषित करेंगी?

वह सोचने लगा। क्या जाने, कन्या के ब्याह की चिन्ता से व्याकुल किस ग़रीब भिखारी माता-पिता की यह बेटी है; किस अभागे कायर के हाथ में उन्होंने इसे सौंपा था। क्या जाने, कितने अनाहारों के बाद इस निर्वाक् कन्या ने आज धैर्य खो दिया, तो भी जिस संसार ने उसे कुछ नहीं दिया, उसे भिक्षा-

पात्र हाथ में लेकर अपना दुःख जनाना नहीं चाहा। जितने दिन हो सका, मुंह में ताला लगाकर उसकी सेवा करती रही। शायद वह शक्ति समाप्त हो गई—इसलिए क्या आज इस धिक्कार से, वेदना से, अभिमान से अपने उसी विधाता के आगे नालिश करने चली है, जिसने अपने रूप का बर्तन खाली करके, सारा रूप देकर इसे इस दुनिया में भेजा !

कल्पना का जाल टूट गया। राखाल ने चौंक कर देखा, गाड़ी अस्पताल के आंगन में आ पहुंची है। वह स्ट्रेचर के लिए दौड़ा, मगर उस नारी ने मना कर दिया। बची हुई सारी शक्ति को प्राणपण से सजग करके उसने क्षीण स्वर से कहा—मुझे उठाकर मत ले चलो, मैं आप ही जा सकूंगी। इतना कह वह साथ की औरत के कंधे का सहारा लेकर लड़खड़ाती किसी प्रकार आगे बढ़ी।

अस्पताल में उस नारी की जान कैसे बची, नियम का झगड़ा किस तरह मिटा, राखाल ने क्या किया क्या दिया लिया, किससे क्या कहा, इन सब बातों को विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। चार-पांच दिन के बाद राखाल ने कहा—भाग्य में जो दुःख-कष्ट लिखा था, वह भोग लिया। अब घर चलिए।

वह नारी शान्त काली आंखें फैला कर चुपचाप राखाल का मुंह ताकती रही, कुछ बोली नहीं।

राखाल ने कहा—यहां के शिक्षित, सुसभ्य सम्प्रदाय के कायदे-कानून से आपका नाम मिसेज चकरबुर्टी (चक्रवर्ती) हो गया; किन्तु मैं तो आपका यह अपमान कर न सकूंगा। साथ ही मुश्किल यह है कि कुछ-न-कुछ कहकर पुकारना भी तो चाहिए ?

सुनकर उसने एकदम सहज गले से कहा—क्यों, मेरा नाम तो शारदा है। लेकिन मैं कितनी छोटी हूं, 'आप' कहने से मुझे बड़ी लज्जा लगती है।

राखाल ने हँसकर कहा—लज्जा की तो बात ही है। मैं अवस्था में कितना बड़ा हूं ! अच्छा तो चलने का प्रस्ताव मुझे इस प्रकार करना होगा—शारदा, अब तुम घर चलो।

शारदा ने पूछा—मैं आपको क्या कह कर बुलाऊंगी ? नाम तो लिया नहीं जा सकता।

राखाल ने कहा—नाम न लिया जा सकने पर भी इसका एक उपाय है। मेरा नाम है राखाल—राखालराज। इसीसे बचपन में नई-माँ मुझे राजू कह कर पुकारती थीं। इसके साथ 'बाबू' और जोड़ देने से तो अनायास पुकारा जा सकता है।

शारदा ने सिर हिलाकर कहा—वह तो एक ही बात हुई। और गुरुजन जो कहकर पुकारते हैं वही तो नाम होता है। हमारे देश में ब्राह्मण को देवता कहते हैं। मैं भी आपको देवता कहकर पुकारूँगी।

'अरे! कहती क्या हो? लेकिन ब्राह्मणत्व तो मुझ में कानी-कौड़ी भर भी नहीं है शारदा!'

'सो भले ही न हो, लेकिन देवत्व तो सोलह आने है। फिर ब्राह्मण के भले-बुरेपन का हम लोग विचार नहीं करते। करना भी न चाहिए।'

उत्तर सुनकर, खासकर कहने के ढंग या भाव को देखकर राखाल मन-ही-मन कुछ विस्मित हुआ। शारदा गंवई गांव के गरीब ब्राह्मण की लड़की है, इसलिए पहले राखाल ने उसे जितना अशिक्षित और गंवार ठहरा रखा था इस समय ठीक वैसी ही नहीं समझ सका। एक और बात उसके कानों में खटकी। देहात में शूद्र ही साधारणतः ब्राह्मण को देवता कहकर सम्बोधन करते हैं—उसके अपने गांव में भी यह चलन है। किन्तु ब्राह्मण की कन्या के मुख से इस सम्बोधन की बात उसे न जाने कैसी लगी। हां, इस स्थान पर यदि कोई विशेष अर्थ इस लड़की के मन में हो तो वह दूसरी बात है।

राखाल ने कहा—अच्छी बात है, यही कहकर पुकारो। लेकिन अब घर चलो। ये तो अब तुमको यहां रखेंगे नहीं।

शारदा सिर झुकाये चुप रही।

राखाल ने क्षण भर उत्तर की राह देखकर फिर कहा—क्या कहती हो शारदा? घर चलो।

अब की शारदा ने सिर उठाकर देखा। धीरे से बोली—मैं घर का किराया कहां से दूंगी? तीन-चार महीने का पिछला किराया शेष है—हम वह भी तो नहीं दे सकते।

राखाल ने हँसकर कहा—इसके लिए कोई चिन्ता नहीं है।

शारदा ने विस्मय के साथ कहा—चिन्ता क्यों नहीं है ?

'तुम्हारे लिए चिन्ता का कारण इसलिए नहीं है कि घर का किराया तुम्हारे पति देंगे। लज्जा के कारण से और पास पैसा न होने से कहीं छिपे हुए होंगे, जल्दी ही लौट आवेंगे—शायद लौट भी आये हों, हम जाते ही उन्हें देख पावेंगे।

'नहीं, वह नहीं आये।'

'न भी आये हों तो अब निश्चय ही आवेंगे।'

शारदा ने कहा—ना, वह न आवेंगे।

'नहीं आवेंगे ?' तुमको अकेली छोड़कर हमेशा के लिए भाग जायँगे ? ऐसा भी कहीं हो सकता है ? निश्चय ही आवेंगे।'

'ना।'

'ना ? यह तुमने कैसे जाना ?'

'मैं जानती हूँ।'

उसके कंठस्वर के भारीपन से आगे कुछ कहने-सुनने या तर्क करने को नहीं रह गया। राखाल स्तब्ध भाव से कुछ देर बैठा रहा, फिर बोला—तो फिर चाहे अपने ससुर के घर और नहीं तो बाप के ही घर चलो। मैं वहाँ भेजने की व्यवस्था कर दूंगा।

शारदा चुपचाप सिर झुकाये बैठी रही, उत्तर नहीं दिया।

राखाल ने घड़ी भर अपेक्षा करके कहा—कहाँ जाओगी, ससुराल ?

शारदा ने गर्दन हिलाकर जताया—नहीं।

'तो फिर क्या बाप के घर जाना चाहती हो ?'

उसने फिर वैसे ही गर्दन हिला दी।

राखाल अधीर हो उठा। बोला—यह तो बड़ी कठिनाई है। यहाँ के डेरे पर भी न जाओगी, ससुराल भी न जाओगी और बाप के घर भी नहीं जाना चाहती हो। हमेशा अस्पताल में तो रहने का नियम नहीं है शारदा, कहीं तो जाना ही होगा ?

प्रश्न समाप्त करते ही उसने देख पाया कि उस लड़की के घुटनों के पास की बहुत-सी धोती आँसुओं से भीग गई है और इसी कारण वह मुंह से कुछ न

कहकर अब तक गर्दन हिलाकर ही प्रश्नों का उत्तर दे रही थी।

'यह क्या शारदा, रोती क्यों हो ? मैंने कटु तो कुछ कहा नहीं !'

सुनते ही उसने चटपट आँसू पोंछ डाले, लेकिन तुरंत ही कुछ बोल न सकी, रुंधे हुए गले को साफ करने में कुछ देर लगी। फिर कहा—मुझसे अब कुछ सोचा नहीं जाता—मुझे मरने भी किसी ने नहीं दिया।

राखाल मन-ही-मन असहिष्णु हो उठा था। लेकिन इस अन्तिम बात को सुनकर खीझ उठा। यह अभियोग जैसे उसी के ऊपर था। तथापि स्वर को पहले ही की तरह संयत रखकर उसने कहा—मनुष्य एक ही बार बाधा दे सकता है शारदा, बार-बार नहीं दे सकता। जो मरना ही चाहता है उसे किसी प्रकार बचाकर रखा नहीं जा सकता और यदि सोचना ही चाहती हो तो उसके लिए भी बहुत समय पाओगी। अब घर चलो, गाड़ी बुला लाकर तुमको पहुँचा आऊँ। मुझे और भी बहुत काम हैं।

राखाल के व्यंग का उसने अनुभव किया या नहीं, कुछ समझ न पड़ा। उसने राखाल के मुंह की ओर देखकर कहा—मैं किराया जो न दे सकूंगी देवता !

'न दे सको, न देना।'

'आप क्या माँ से कह देंगे ?'

राखाल ने कहा—नहीं। बचपन में, माँ-बाप के मरने पर, तुम्हारे समान असहाय होकर मैं भी एक दिन उनके पास भीख माँगने गया। जानती हो, क्या भिक्षा दी ? जितने का प्रयोजन था और जो मैंने माँगा, सब। उसके बाद हाथ पकड़कर अपनी ससुराल ले आई—अन्न देकर, वस्त्र देकर, विद्या-दान करके मुझे इतना बड़ा किया। आज दूसरे की ओर से दया की प्रार्थना करने उनके पास जाऊँगा ? ना, यह नहीं करूंगा। जो करना उचित है, सो वह आप ही करेंगी—किसी को तुम्हारी सिफारिश नहीं करनी होगी।

दम-भर चुप रहकर शारदा ने पूछा—आपको तो कभी मैंने इस घर में नहीं देखा ?

राखाल ने पूछा—तुम कितने दिन से इस घर में हो ?

'लगभग दो साल से।'

राखाल ने कहा—इस बीच मुझे आने का सुयोग नहीं मिला।

शारदा फिर कुछ देर स्थिर होकर बैठी रही। फिर बोली—कलकत्ते में इतने आदमी नौकरी करते हैं ; मुझे क्या कहीं दासी का काम नहीं मिल सकता ?

राखाल ने कहा—मिल सकता है। लेकिन तुम्हारी अवस्था अभी कम है—तुम्हारे ऊपर उपद्रव हो सकता है। अच्छा, तुम्हारे घर का किराया कितना है ?

शारदा ने कहा—पहले छः रुपये थे ; लेकिन अब सिर्फ तीन रुपये देने पड़ते हैं।

राखाल ने पूछा—सहसा कम क्यों हो गया ? मकान वालों का तो यह स्वभाव नहीं है ?

शारदा ने कहा—मुझे नहीं मालूम। जान पड़ता है, उन्होंने कभी माँ से अपने दुःख-कष्ट की बात कही होगी।

राखाल जैसे उछल पड़ा। बोला—तब देखो। मैं कहता हूँ, तुम्हारे लिए कुछ चिन्ता की बात नहीं है, तुम चलो।—अच्छा, तुम्हारे खाने-पहनने में महीने में क्या व्यय होता है ?

शारदा ने बिना सोचे ही कह दिया—शायद और भी तीन-चार रुपये लगेंगे।

राखाल हँसा। बोला—जान पड़ता है, तुमने एक ही समय खाने की बात सोच रखी है ; लेकिन एक समय भी इतने में पूरा नहीं पड़ेगा।—अच्छा, तुम क्या लिखना-पढ़ना नहीं जानतीं ?

शारदा ने कहा—जानती हूँ। मेरे हाथ की लिखावट भी खूब साफ और स्पष्ट है।

राखाल प्रसन्न हो उठा। बोला—तब तो कोई चिंता नहीं है। तुमको मैं लिखा हुआ ला दूँगा। तुम यदि उसकी नकल कर दोगी तो मैं तुमको पन्द्रह-बीस रुपये आराम से दिला सकूँगा। लेकिन खूब यत्न करके अच्छा लिखना होगा—खूब स्पष्ट, गलती न हो। क्यों कर सकोगी ?

शारदा ने इसके उत्तर में सिर हिलाया, किन्तु आनन्द से उसका सारा चेहरा चमक उठा। देखकर एक बार राखाल चौंक उठा। अँधेरे कमरे के भीतर

अचानक बिजली की रोशनी में जैसे उसने इस लड़की के अद्भुत रूप की एक अत्यन्त अद्भुत झाँकी देखी।

राखाल ने कहा—जाऊँ अब गाड़ी बुला लाऊँ न ?

शारदा ने कहा—हाँ, जाइए। अब मुझे कोई चिंता नहीं है। जान पड़ता है, इसीलिए मैं इस संसार से नहीं जा सकी, भगवान ने मुझे लौटा दिया।

राखाल गाड़ी बुलाने गया। मार्ग में सोचता हुआ गया—शारदा ने मुझ पर विश्वास किया है। एक ओर इतने रुपये हैं और दूसरी ओर ऐसा कुछ भी उसे न स्मरण हुआ जिसे वह तुलना में रखता।

डेरे पर पहुँचकर राखाल ने नई माँ की खोज में ऊपर जाकर सुना कि वह घर में नहीं हैं। कब और कहाँ गई हैं, यह दासी नहीं बता सकी। केवल इतना ही कह सकी कि घर की मोटर गैरेज में ही खड़ी है। अतएव उन्होंने मार्ग में कोई टैक्सी या किराए की गाड़ी ले ली है या पैदल ही गई हैं।

राखाल ने उद्विग्न होकर पूछा—साथ कौन गया है ?

दासी ने कहा—कोई नहीं। दरवान जी को मैंने बाहर बैठे देखा है।

'और रमणी बाबू ?'

दासी ने कहा—हमारे बाबू ? वह तो रोज नहीं आते। आते भी हैं तो नौ-दस बजे।

राखाल ने पूछा—रोज नहीं आते, इसके माने ? नहीं आते तो रहते कहाँ हैं ?

दासी जरा होंठ-से-होंठ दबाकर हँसी। बोली—क्यों, उनके क्या घर-बार नहीं है ?

राखाल ने फिर दूसरा प्रश्न नहीं किया। मन-ही-मन समझ लिया कि वास्तविक मामला इन लोगों से छिपा नहीं है। नीचे आकर देखा, आस-पास की औरतें शारदा के चारों ओर भीड़ लगाये हुए हैं और बच्चों के झुण्ड, जो तब तक सोये नहीं थे, उनके आनन्द-कोलाहल से वहाँ एक बाजार सा लगा हुआ है। राखाल को देखकर सभी औरतें खिसक गईं। जिस अधेड़ औरत के जिम्मे शारदा के घर की चाबी थी वह आकर ताला खोल गई। राखाल ने पूछा—तुम्हारे स्वामी की कोई सूचना नहीं मिली क्या ?

शारदा ने कहा—नहीं।

"आश्चर्य की बात है !"

"नहीं। आश्चर्य इसमें ऐसा क्या है ?"

"कहती क्या हो शारदा ? इससे बढ़कर भी क्या कोई आश्चर्य हो सकता है ?"

शारदा ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बोली—मैं लालटेन जलाऊं, आप मेरी कोठरी में आकर बैठिए। तबतक मैं मां को प्रणाम कर आऊं जाकर।

राखाल ने कहा—मां घर में नहीं हैं।

शारदा ने कहा—नहीं हैं ? शायद कहीं गई हैं। काली घाट गई होंगी, या दक्षिणेश्वर। ऐसे ही अक्सर जाया करती हैं। लेकिन अभी लौटेंगी। मैं लालटेन जला दूं—हाथ-मुंह धोने को पानी ला दूं। जरा बैठिए, मेरे घर में आपके चरणों की धूल पड़े।

राखाल ने हंसकर कहा—चरणों की धूल पड़ने को शेष नहीं है शारदा तो पहले ही पड़ गई है।

शारदा ने कहा—यह जानती हूं। लेकिन वह तब पड़ी थी जब मैं अचेत थी। आज मेरी चेतना में पड़े, मैं आंख से देखूं।

राखाल को कुछ कहने के लिए न सूझा। बात कुछ ऐसी नहीं कि जो अचिन्तनीय हो। अचंभे से अवाक् होने की भी बात नहीं। यह गांव की लड़की चाहे जितनी अल्पशिक्षित क्यों न हो, जिसने उसे मौत के मुंह से बचाया है और जीने का मार्ग दिखा दिया है उसके प्रति उसके कृतज्ञ मन के भीतर ऐसी एक करुण प्रार्थना का उठना अत्यन्त स्वाभाविक है किन्तु इस बात के लिए तो नहीं, कहने की सुन्दर विशेषता या ढंग से राखाल को अत्यन्त विस्मय हुआ। साथ ही, पल-भर में, बहुत-सी परिचित रमणियों के चेहरे और बहुत से परिचित कण्ठ स्वर उसे स्मरण हो आये। जरा देर बाद उसने कहा—अच्छा, लालटेन जलाओ। किन्तु आज मुझे काम है—कल या परसों मैं फिर आऊंगा।

लालटेन जलाई जा चुकने पर क्षण-भर के लिए वह भीतर आकर तख्त के ऊपर बैठा, पाकेट से कुछ रुपए निकालकर वहां रख दिये। फिर कहा—यह तुम्हारे पारिश्रमिक का कुछ पेशगी है शारदा।

शारदा ने कहा—किन्तु मुझसे जब आपका काम चल जाय तभी तो। पहले शायद काम कुछ खराब होगा ; लेकिन मैं निश्चय ही सीख लूंगी।

देखिएगा मेरे हाथ का लिखा ? ले आऊँ कलम-दावात ? यह कहकरही वह उठने लगी, किन्तु राखाल ने व्यस्त होकर रोक दिया। बोला—ना ना, अभी रहने दो। मैं जानता हूँ, तुम्हारे हाथ की लिखावट अच्छी है, मेरा काम भली प्रकार चल जायगा।

शारदा केवल तनिक-सा मुस्करा दी। पूछा—आपके घर में कौन-कौन हैं देवता ?

राखाल ने उत्तर दिया—मेरा घर यहाँ नहीं है। यहाँ तो मेरा डेरा है और अकेला रहता हूँ।

'उन लोगों को यहाँ क्यों नहीं लाते ?'

राखाल कठिनाई में पड़ गया। उससे यह प्रश्न बहुतों ने किया है, उत्तर देने में हमेशा उसे संकोच और लज्जा हुई है। शारदा से भी उसने कह दिया—शहर में लाकर रखना क्या सहज है ?

सहज नहीं है, यह बात शारदा स्वयं ही जानती है। शायद उसे भी कोई देहात की बात याद आ गई। जरा चुप रहकर उसने पूछा—तो फिर यहाँ कौन आपका काम-काज कर देता है।

राखाल ने कहा—नौकरानी है।

'भोजन कौन बनाता है ? महाराज ?'

राखाल ने हँसकर कहा—तब तो हो चुका। एक साधारण आदमी का खाना बनाने के लिए एक समूचा महाराज ? मैं आप ही बना लेता हूँ। कुकर का नाम कभी तुमने सुना है ? उसमें आप ही पक जाता है, केवल रसोई का सामान संजोकर रख देने की आवश्यकता होती है।

शारदा ने कहा—मैं जानती हूँ। खाना तैयार होने पर खा-पी चुकने के पश्चात् वह बर्तन आदि माँज-धोकर रख जाती है।

'हाँ, ठीक यही बात है।'

'और क्या-क्या काम वह करती है ?'

राखाल ने कहा—जो आवश्यकता होती है, सब कर देती है। मैं उसको नानी कहता हूँ। मुझे किसी काम के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती। अच्छा, बताओ, आज तुम्हारे खाने-पीने का क्या होगा ? घर में सामान तो कुछ है नहीं, दुकान से लाकर दे जाऊँ ?

शारदा ने कहा—ना। आज मेरा सब पड़ोसियों के यहां न्योता है। लेकिन आपको तो जाकर रसोई बनवाना होगा ?

राखाल ने कहा—ना। मुझे कुछ न करना होगा। जो कुछ करना है, सब उसने कर रखा होगा।

'अच्छा मान लो, वह बीमार पड़ गई हो तो ?'

राखाल ने कहा—नहीं, बीमार नहीं पड़ सकती। उसके बूढ़े हाड़ खूब स्वस्थ हैं। तुम लोगों के समान खटिया नहीं पकड़ लेती।

शारदा ने कहा—लेकिन दैवसंयोग की बात तो कोई कह नहीं सकता—बीमार पड़ भी सकती है—तब ?

राखाल ने हंसकर कहा—तो भी चिन्ता नहीं है। मेरे डेरे के पास ही हलवाई की दुकान है। वह मुझे प्यार करता है, कष्ट नहीं होने देता।

शारदा ने कहा—आपको सभी प्यार करते हैं। फिर पूछा—

'आपको चाय का बहुत चाव है—'

राखाल—यह तुमसे किसने कहा ?

शारदा ने कहा—आप स्वयं ही उस दिन अस्पताल में कह रहे थे, आपको स्मरण नहीं है। बहुत देर से आपने कुछ खाया-पिया नहीं। चाय बना लाऊं ? जरा देर बैठिएगा ?

राखाल ने कहा—किन्तु चाय की व्यवस्था तो तुम्हारे घर में नहीं है। कहां पाओगी ?

शारदा—वह मैं खूब कर लूंगी। कहकर तेजी के साथ उठने लगी। राखाल ने उसे रोककर कहा—यह समय मेरे चाय पीने का नहीं है शारदा, मुझे कुसमय सहन नहीं होती।

शारदा ने कहा—तो कुछ खाने को ला दूं—लाऊं ? बहुत देर से कुछ खाया नहीं, निश्चय ही आपको भूख लगी है।

राखाल ने कहा—लेकिन ला कौन देगा ? तुम्हारे तो कोई आदमी नहीं है।

'है क्यों नहीं ? हारू मेरी बात खूब सुनता है। उससे कहते ही वह दौड़ा जायगा।' यह कहकर वह फिर व्यस्त होकर उठ रही थी, किन्तु अब की भी

राखाल ने मना कर दिया। शारदा ने हठ अवश्य नहीं की, लेकिन उदास हो गई। उसके विषाद-मलिन मुख को देखकर राखाल को फिर उन्हीं सब बहु-परिचित स्त्रियों के चेहरे स्मरण हो आये। इन औरतों के बीच उसका बहुत आना-जाना था, उसका बहुत जाना-सुना था, बहुत सभ्यता और भद्रता का देना-पावना था; किन्तु इस चीज को वह जैसे बहुत दिन हुए भूल गया है। उसे अपनी माता की स्मृति बहुत धुंधली है। वह जब बहुत ही छोटा था, तभी उसकी माता का स्वर्गवास हो गया था। एक खँडहर जैसे टूटे-फूटे घर के बरामदे में बेड़े से घिरा हुआ छोटा-सा रसोईघर है; उसमें चौड़ी लाल किनारी की धोती पहने कोई जैसे रसोई बना रही हैं—शायद उनकी सब कुछ राखाल की कल्पना ही है—किन्तु वह उसकी माँ हैं—उन्हीं माँ के बहुत ही अस्पष्ट मुख का चित्र आज एकाएक जैसे उसे आँखों के आगे दिखाई पड़ने लगा। मन के भीतर न जाने कैसा होने लगा। वह चटपट उठ खड़ा हुआ। बोला—कुछ सोच न करना शारदा, आज मैं जाता हूँ। फिर जिस दिन समय मिलेगा, मैं आप माँगकर तुम्हारी चाय पियूँगा, तुम्हारा दिया जलपान करूँगा।

शारदा ने गले में दुपट्टा डालकर प्रणाम किया, फिर कहा—मुझे लिखने का काम कब ला दीजिएगा?

'इसी बीच एक दिन दे जाऊँगा।'

'अच्छा।'

तो भी वह कुछ और कहने के लिए इधर-उधर कर रहा है, ऐसा अनुमान करके राखाल ने पूछा—तुम और कुछ कहना चाहती हो?

शारदा ने क्षणभर मौन रहकर धीरे से कहा—पहले पहल शायद मुझसे लिखने में बहुत-सी गलतियाँ होंगी; लेकिन आप अप्रसन्न न हों। अप्रसन्न होकर मुझे छोड़ दीजिएगा तो मेरे खड़े होने के लिए और कोई स्थान नहीं है।

उसके भयभीत स्वर की इस करुण प्रार्थना से विलचित होकर राखाल ने कहा—मैं अप्रसन्न न होऊँगा किन्तु तुम सीख लेने की चेष्टा करो।

इसके उत्तर में शारदा ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की। इसके पश्चात चुपचाप खड़ी रही।

लौटते समय राखाल पैदल ही चला। ट्रामगाड़ी में बहुत लोगों के बीच

बैठने को आज उसका जी किसी प्रकार न हुआ।

वह गरीब आदमी है, उल्लेख करने योग्य विद्या की पूंजी भी नहीं है, नाम लेने योग्य आत्मीय-स्वजन भी कोई नहीं है, तो भी वह जो इस शहर में बहुत घरों में, बहुत-से प्रतिष्ठित परिवारों में एक 'अपना आदमी' हो गया था, सो केवल अपने गुणों से। उनमें स्नेह का, सहृदयता का अभाव न था, अनुकम्पा भी बहुत थी, किन्तु भीतर छिपी हुई एक अनिर्दिष्ट उपेक्षा की ऐसी बाधा थी, जिसके कारण इस शारदा की अपेक्षा कोई किसी दिन उसे अपने पास नहीं खींच सका। कारण, वह था केवल राखाल—इससे अधिक नहीं। वह लड़कों बच्चों को पढ़ाता है, मैस में रहता है। इस बात को चाहे कहीं कोई न भी जानता हो, किन्तु उसके डेरे के पते पर बारात में शामिल होने के निमंत्रण-पत्र डाक से अनेक आते हैं। प्रीतिभोज के निमंत्रण में भी उसका नाम छूटने नहीं पाता और न जाने पर उस दिन न हो, दो दिन बाद भी यह बात उन लोगों को स्मरण में आती है। काम-काज के घर में उसकी अनुपस्थिति वास्तव में बहुत खलती है। जीवन में उसने अनेक ब्याहों में बिचवानी का काम किया है, अनेक लड़के और लड़कियां ढूंढ़ दी हैं, छांट दी हैं। इसमें उसने जो परिश्रम किया उसकी हद नहीं। हर्ष से भरे हुए माता-पिताओं ने साधुवाद से—उसके कान भरकर उससे कहा है कि राखाल बड़ा अच्छा आदमी है, राखाल बड़ा परोपकारी है। कृतज्ञता का पारितोषिक इसी प्रकार हमेशा यहीं पर समाप्त हो गया है। इसके लिए उसका कोई विशेष अभियोग हो, यह बात भी न थी। केवल, कभी, शायद नौकरी की निष्फल उम्मेदवारी के दिन बीच-बीच में याद आ जाते थे, लेकिन वह ऐसा था ही क्या!

भीड़ के बीच चलते-चलते आज फिर बार-बार वही सब बहुपरिचित स्त्रियां याद आने लगीं। उनका पहनावा-पोशाक, हाव-भाव, आलाप-आलोचना, पढ़ना-लिखना हँसना-रोना—इसी प्रकार न जाने क्या-क्या। प्रकट-अप्रकट कितनी ही चंचल प्रणय की कहानियां, मिलन-विछोह के कितने ही आंसुओं से भीगे विवरण।

किन्तु राखाल? बेचारा बड़ा भला आदमी है, बड़ा परोपकारी है। लड़के-बड़के पढ़ाता है—मैस में रहता है।

और आज शारदा ने क्या कहा? कहा—देवता, मुझसे बहुत भूलें होंगी,

लेकिन तुम त्याग दोगे तो फिर मेरे लिए कहीं खड़े होने को स्थान नहीं है।

शायद सचमुच नहीं है। अथवा—? एकाएक उसे बड़ी हँसी आई। अपने मन में खिल-खिलाकर हँस पड़ा—राखाल बड़ा अच्छा आदमी है—राखाल बड़ा परोपकारी है।

पास से जाने वाले एक मनुष्य ने अवाक् होकर उसके मुंह की ओर ताका और फिर वह भी हँस पड़ा। राखाल लज्जित होकर और एक गली में घुसकर तेजी के साथ आगे बढ़ गया।

५

घर पहुँचकर राखाल को दो पत्र मिले। एक पत्र ब्रजविहारी बाबू का था जिसमें उन्होंने लिखा था कि रेणुका का विवाह स्थगित कर दिया गया यह सूचना नई बहू के पास भेज दी जाय। शनिवार के दिन वह स्वयं राखाल के घर आकर सब विवरण विस्तार से बतायेंगे। इस समय कार्याधिक्य के कारण नहीं आ सकते।

दूसरा पत्र उसके स्वामी का था। स्वामी—अर्थात् जिसके बच्चों को वह पढ़ाया करता था। उनके भतीजे का विवाह है। विवाह दिल्ली में अचानक ही निश्चय हो गया है। कार्य में व्यस्तता के कारण इतनी दूर इस समय वह जा नहीं सकते। राखाल के सिवाय और कोई विश्वस्त तथा योग्य मनुष्य भी उनके पास नहीं है। अतः राखाल को ही समधी बनकर दिल्ली विवाह में जाना होगा। इसी रविवार को यात्रा का शुभ दिन है अतः तुरन्त ही आकर राखाल को मिलना चाहिए। राखाल को यह सन्तोष हुआ कि इन दिनों में बच्चों की पढ़ाई में होने वाली हानि की कोई बात उन्होंने नहीं लिखी।

चाहे जो हो पत्र दोनों ही अच्छे हैं। विवाह स्थगित का अर्थ ठीक न समझकर भी वह इसी से प्रसन्न हो गया कि चलो पागल के साथ तो विवाह रुक गया दूसरी बात है दिल्ली जाने की। सो यह बहुत अच्छी है। दिल्ली के प्राचीन युग की बहुत सी वस्तुएँ देखने के योग्य हैं। लोगों के मुंह से सुना हुआ तथा पुस्तकों में पढ़ा विवरण उसे आकर्षित करता था। अब वह स्वयं ही जाकर

आंखों से इन सब वस्तुओं को देख लेगा।

दूसरे दिन सवेरे ही वह पत्र लेकर राखाल नई मां से मिलने गया। उन्होंने हंसते हुए चेहरे से बताया कि यह सूचना वह पहले ही सुन चुकी हैं; किन्तु विस्तृत विवरण का अपेक्षा में वह तभी से अधीर हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस ब्याह को रोकने में एक प्रबल बाधा थी, तथापि शान्त, दुर्बल प्रकृति के आदमी (ब्रज बाबू) अकेले किस प्रकार इतनी बड़ी बाधा को हटाकर कृत-कार्य हो सके, यह सचमुच एक विस्मय की बात है।

राखाल ने कहा—रेणु ने निश्चय ही अपने बाप का साथ दिया होगा नई मां, नहीं तो यह ब्याह किसी प्रकार रुक नहीं सकता था।

नई-मां ने धीरे से कहा—उसे तो मैं जानती नहीं भैया कि उसका कैसा स्वभाव है। तुम कहते हो, वह हो भी सकता है।

राखाल ने जोर देकर कहा—लेकिन मैं तो जानता हूं। तुम देख लेना मां, मेरा अनुमान ही ठीक है। स्वयं उसके सिवा हेमन्त बाबू को कोई नहीं रोक सकता था।

नई मां से विदा होकर राखाल नीचे एक बार शारदा के घर की ओर घूम गया। देखा, इसी बीच में वह लड़कों से कागज-कलम मांगकर एकाग्र मन से लिखने में हाथ पक्का करने बैठ गई है। राखाल को देखते ही व्यस्त होकर लिखने का सब सामान छिपाने की चेष्टा उसने नहीं की। बल्कि यथोचित मर्यादा के साथ उसे तख्त के ऊपर बिठाकर उसने कहा—देखो तो देवता, इससे क्या आपका काम चल जायगा।

राखाल ने नहीं सोचा था कि शारदा के अक्षर इतने अच्छे और स्पष्ट हो सकते हैं। प्रसन्न होकर बारम्बार प्रशंसा करके उसने कहा—यह तो मेरे अपने लेख से भी अच्छा है शारदा। हम लोगों का खूब काम चल जायगा। तुम यत्न करके लिखना-पढ़ना सीखो शारदा, तुम्हारे खाने-पहनने की चिन्ता नहीं रहेगी। शायद तुम स्वयं ही कितने लोगों को खिलाने-पहनने का भार ले सकोगी।

सुनकर अकृत्रिम आनन्द से शारदा का चेहरा चमक उठा। राखाल दो-एक मिनट चुपचाप उसकी ओर देखता रहा, फिर पाकेट से एक दस रुपए का नोट निकाल कर बोला—यह रुपया तुम अपने पास रखो शारदा, यह तुम्हारा

ही है। मैं एक मित्र के ब्याह में दिल्ली जा रहा हूँ, लौटने में शायद दस-बारह दिन का विलम्ब होगा। आकर तुम्हें लिखने को ला दूंगा—है न ठीक ? कुछ चिन्ता न करना—क्यों ?

शारदा ने कहा—इस समय मुझे रुपयों की कोई आवश्यकता नहीं है देवता। जो आप दे गये थे, वही अब तक व्यय नहीं हुए।

राखाल ने कहा—कोई हानि नहीं—ये रुपये भी आप ही वसूल हो जायेंगे। यदि एकाएक कोई आवश्यकता पड़ गई तो किससे माँगोगी बताओ ? किन्तु मेरे लिए कुछ चिन्ता न करना। जितना जल्दी हो सकेगा, मैं चला आऊँगा। आते ही तुम्हें लिखने को दे जाऊँगा।

शारदा से बिदा होकर राखाल अपने मालिक के घर पहुँचा। वहाँ घर के मालिक और मालिकिन में बहुत वादानुवाद के पश्चात् यह तय हुआ कि पूरे दल-बल के साथ बारात को लेकर उसे रविवार को रात की गाड़ी से ही यात्रा करनी होगी। मालिकिन ने कह दिया—राखाल, तुम्हारा कोई बन्धु-बान्धव या इष्ट मित्र यदि जाना चाहे तो प्रसन्नता से ले जाना, सब व्यय उनका (कन्या पक्ष का) है। याद रखना, इस ओर के तुम्हीं कर्ता-धर्ता हो—रुपया-पैसा, गहना-गांठा, चीज-वस्तु, सबका उत्तरदायित्व तुम्हारा ही है।

राखाल को सबके पहले तारक याद आया। वह होशियार आदमी है। उसे साथ लेना होगा, बिना खर्चे के, यह सुयोग नष्ट न किया जायगा। केवल एक ही आशंका थी, इस आदमी को किसी एक तरफ झुक पड़ने वाली नैतिक बुद्धि की। वहाँ किसी मामले में उचित-अनुचित प्रश्न उठ पड़ने पर उसको प्रसन्न करना कठिन होगा। किन्तु इस बात का ध्यान ही न आया कि तारक इसी बीच में मास्टर होकर बर्दवान चला जा सकता है। कारण, उसने सोचा कि तारक उसके लौट आने की अपेक्षा भले ही न कर सके, एक चिट्ठी भी उसके नाम लिखकर न रख जायगा, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। रविवार के अभी तीन दिन शेष हैं, इस बीच तारक आकर भेंट करेगा ही। न हो, कल एक बार समय निकालकर वह स्वयं ही तारक के मैस में जाकर यह सूचना दे आयेगा। डेरे में आकर राखाल काम में लग गया। वह शौकीन आदमी है। इन कई दिनों की अवहेलना से—ध्यान न देने से—घर में बहुत-सी विश्रृंख-

लता आ गई है। जाने के पहले यह सब ठीक कर डालना चाहिए। अँगरेजी दुकान से एक अच्छा-सा विलायती ट्रंक खरीदना है, जिससे विदेश में ताला खोलकर कोई कुछ चुरा न सके। समधी की मर्यादा के अनुसार उसके पहनने योग्य कुर्ता-धोती आदि क्या-क्या आलमारी में है, यह भी देखने की आवश्यकता है। यदि कोई कपड़ा न हो तो वह भी बनवा लेने की अत्यन्त आवश्यकता है। फिर केवल तारक ही तो नहीं है, योगेश बाबू से भी एक बार कहना होगा। उन्हें पछाँह जाने की इच्छा बहुत दिनों से है; केवल पास पैसा न होने से ही वह उसे पूरा नहीं कर सके। आफिस के बड़े बाबू से खुशामद-दरामद करके यदि दस-बारह दिन की छुट्टी मंजूर करा दी जाय तो योगेश बाबू जन्म भर कृतज्ञ रहेंगे। मालिक के घर में भी कम-से-कम एक बार तो जाना चाहिए, नहीं तो छोटी-मोटी भूल-चूक कैसे मालूम होगी? एक बार सब बातों की आलोचना होनी चाहिए; क्योंकि विदेश का सारा उत्तरदायित्व अकेले उसी पर है। इस संक्षिप्त समय में इतना सब काम वह कैसे पूरा कर सकेगा, यह सोचकर भी ठीक न कर सका। शनिवार को तीसरे पहर का समय तो केवल नई-माँ और ब्रजबाबू के लिए ही रखना होगा—उस दिन तो शायद कुछ भी न होगा। इसी बीच में याद करके पोस्ट-आफिस के सेविंग बैंक से कुछ रुपए भी निकालने होंगे; क्योंकि अपनी पूंजी न लेकर विदेश जाना ठीक नहीं, संकट में पड़ा जा सकता है। काम की भीड़ और तगादे से राखाल को जैसे आँखों के आगे अन्धकार दिखाई देने लगा। किन्तु उसका एक कान हर घड़ी दरवाजे की ओर ही लगा रहता है तारक के दरवाजे की जंजीर खटखटाने और पुकारने की प्रतीक्षा में। मगर उसकी सूरत नहीं दिखाई देती। इधर बृहस्पतिवार बीत गया, शुक्रवार आ गया। दोपहर को वह पोस्ट-आफिस में रुपए निकालने गया। कुछ अधिक रुपए निकालने होंगे। मन में था, कि यदि तारक कह बैठे कि उसके पास बाहर जाने योग्य कपड़े नहीं हैं तो किसी प्रकार यह अतिरिक्त रुपया उसके हाथ में थमा दिया जायगा। इसमें मुश्किल है। तारक न उधार लेता है, न दान लेना चाहता है, न उपहार। एक आशा है, राखाल के जोर-जबर्दस्ती करने पर वह हार मान लेता है। समय नष्ट नहीं किया जा सकता। पोस्ट आफिस से एक टैक्सी लेनी होगी। तारक जरा अप्रसन्न होगा अवश्य।

लेकिन रुपए निकालने में बहुत देर लगी। खीझ से मुंह बनाये राखाल बाहर निकलकर किराये की गाड़ी तय कर रहा था, इसी बीच मुहल्ले के डाकिए ने उसके हाथ में एक चिट्ठी दी—तारक ने लिखी थी। खोलकर देखा, तारक ने बर्दवान जिले के एक गांव से वहीं हेडमास्टर की जगह पाने की सूचना दी है और आने के पहले जो भेंट करके नहीं आ सका, इसके लिए दुःख प्रकट किया है। नई-मां और ब्रज बाबू को प्रणाम लिखा है। अन्त में यह भी आशा की है कि बिना कहे चले आने के अपराध के लिए क्षमा की भिक्षा मांगने वह जल्दी ही कई दिन का अवकाश लेकर स्वयं उपस्थित होगा। चिट्ठी जेब में रखकर राखाल ने एक सांस छोड़ते हुए कहा—अच्छा हुआ, टैक्सी का किराया बच गया।

दूसरे दिन तीसरे पहर राखाल नये खरीदे हुए ट्रंक में कपड़े आदि संभाल कर रख रहा था; क्योंकि दस-बारह दिन लगेंगे। इतने में नई-मां आकर उपस्थित हुईं। राखाल ने प्रणाम करके बैठने के लिए कुर्सी बढ़ा दी। उन्होंने बैठकर पूछा—शायद कल रात को ही तुम लोगों को जाना होगा भैया ?

राखाल ने कहा—हां मां, कल ही सब को लेकर रवाना होना होगा।

'लौटने में शायद आठ-दस दिन लग जायंगे ?'

'हां मां, आठ-दस दिन लगेंगे।'

नई-मां ने क्षण भर मौन रहकर पूछा—कै बजे हैं राजू ?

राखाल ने दीवाल की घड़ी की ओर देखकर कहा—पांच बज गये। मैं डर रहा था कि शायद आज आपको ही आने में देर होगी; किन्तु आज काका बाबू ने ही देर कर दी।

नई-मां ने कहा—देर हो तो कोई हानि नहीं, वह आवें तो सही—तभी मैं निश्चिन्त हो सकूंगी।

राखाल ने हंसकर कहा—जब उस पागल के साथ ब्याह बन्द हो गया है, तब चिन्ता की तो अब कोई बात नहीं है मां। काका बाबू यदि न आ सके तो भी कोई हानि नहीं है।

नई-मां ने सिर हिलाकर कहा—नहीं भैया, केवल रेणु के ब्याह की ही बात नहीं है; तुम्हारे काका बाबू के लिए भी तो चिन्ता है। मैं यही सोचती रहती

कि इस अकेले निरीह, शान्त मनुष्य ने इसके लिए न जाने कितनी लांछना और कितना उत्पीड़न सहन किया होगा!—कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू भर आये।

राखाल मन-ही-मन मामा बाबू हेमन्तकुमार के चक्की के पाट जैसे भारी चेहरे को स्मरण करके चुप हो रहा। यह ब्याह रोकने का काम सहज में सम्पन्न नहीं हुआ, यह निश्चय है।

नई-मां कहने लगीं—उन्होंने केवल इतना ही पत्र में लिखा है कि ब्याह बन्द हो गया। किन्तु यह तो अब भी नहीं मालूम हुआ कि कुछ दिनों के लिए टल गया है या हमेशा के लिए।

राखाल कह उठा—हमेशा के लिए मां, हमेशा के लिए। इन पागलों के पल्ले आपकी रेणु कभी नहीं पड़ेगी; आप निश्चिन्त होइए।

नई-मां ने कहा—भगवान् करें ऐसा ही हो। किन्तु उन दुर्बल मनुष्य की बात सोचकर मेरे मन को किसी प्रकार चैन नहीं पड़ रहा है राजू। दिन-रात कितनी चिन्ता, कितने प्रकार का भय होता है, यह मैं किससे कहूं?

राखाल ने कहा—किन्तु वह क्या आपको बहुत ही दुर्बल प्रकृति के आदमी जान पड़ते हैं मां!

नई-मां ने जरा मलिन हंसी हंसकर कहा—दुर्बल प्रकृति के तो वह हमेशा से हैं राजू! इसमें क्या कुछ सन्देह है?

राखाल ने कहा—दुर्बल मनुष्य क्या इतना आघात चुपचाप सह सकता है मां? काका बाबू ने इधर जीवन में कितनी व्यथाएं सही हैं, इसे आप नहीं जानतीं, किन्तु मैं जानता हूं। यह लीजिए, वह आ रहे हैं।

खुली खिड़की के भीतर से उसने ब्रजबाबू को आते देख लिया था। उसने चटपट उठकर दरवाजा खोल दिया। वह जब भीतर बढ़े तब वह एक ओर हटकर खड़ा हो गया। नई-मां ने पास आकर, गले में आंचल डालकर प्रणाम करके पैरों की धूल माथे से लगाई और फिर उठकर खड़ी हो गईं।

ब्रजबाबू कुर्सी खींचकर बैठने के बाद बोले—रेणुका का ब्याह मैंने उस घर में नहीं किया, सुना है तुमने नई-बहू?

'हां, सुना है। जान पड़ता है, बहुत झगड़ा हुआ?'

'सो तो होगा ही नई-बहू ।'

'तुम शान्त मनुष्य हो, किसी से विरोध नहीं रखते । मुझे बड़ी चिन्ता थी कि यह ब्याह कैसे बन्द करोगे ।'

व्रजबाबू ने कहा—यह सच है कि मैं शान्ति को ही पसंद करता हूँ, विरोध करने को किसी प्रकार जी नहीं चाहता । तुम्हारी लड़की है, बाधा देना तुम्हारे हाथ में नहीं है—तुम्हीं उसमें बोल नहीं सकतीं इसलिए सारा भार मेरे ऊपर आ पड़ा और मुझे अकेले ही वह भार उठाना पड़ा । जानती हो नई-बहू, उस दिन क्या विचार बार-बार मेरे मन में आया ? मेरे मन में आया कि आज यदि तुम घर में रहतीं तो सारा बोझ तुम्हारे ऊपर डालकर मैं किले के मैदान की किसी बेंच पर सोकर रात बिता देता और उन लोगों से मन-ही-मन कहा—आज वह यदि यहाँ होती तो तुम लोग समझते कि जुल्म करने की भी एक हद है—सभी के ऊपर सब कुछ नहीं चलाया जा सकता ।

सविता चुपचाप बैठी रही । उस दिन का विवरण पूछकर जानने का साहस उसे नहीं हुआ । राखाल भी वैसे ही निर्वाक्, निस्तब्ध बैठा रहा । व्रज बाबू ने स्वयं अपनी ओर से इससे अधिक खोलकर नहीं कहा ।

दो-तीन मिनट सभी के चुप रहने के बाद राखाल ने कहा—काका बाबू, आज आप बहुत ही थके हुए से दिखाई देते हैं ।

व्रजबाबू ने कहा—इसका कारण भी यथेष्ट है राजू ! इधर छः-सात दिन व्यवसाय के कागज-पत्र देखने और जांचने में बहुत परिश्रम करना पड़ा है ।

राखाल ने डरकर पूछा—सब कुशल तो है काका बाबू ?

व्रज बाबू ने कहा—कुशल बिलकुल ही नहीं है ।

फिर सविता को लक्ष्य करके बोले—तुम्हारे वे रुपए मैंने कोई एक साल पहले व्यवसाय से निकालकर बैंक में जमा कर दिये थे । सोचा था, मेरे अपने व्यापार में लगे रहने की अपेक्षा बैंक में रहने से भय की सम्भावना कम है । अब देखता हूँ, मैंने ठीक ही सोचा था । अब उन्हीं रुपयों का भरोसा है नई-बहू—अब उन्हें लिये बिना काम नहीं चलेगा ।

सविता ने अब की सिर उठाकर उनकी ओर देखा, बोलीं, न लेने से क्या उनके नष्ट होने की संभावना है ?

व्रजबाबू ने कहा—है क्यों नहीं नई-बहू—कुछ कहा तो नहीं जा सकता।

सविता चुप हो रही।

व्रजबाबू ने कहा—क्या कहती हो नई-बहू, तुम तो चुप हो गईं ?

सविता दो-तीन मिनट चुप रहकर बोली—मैं और क्या कहूँ मंझले बाबू। रुपए तुमने ही दिये थे, तुम्हारे काम में यदि जायें तो अच्छा है। लेकिन मेरा तो और कुछ नहीं है।

सुनकर व्रज बाबू जैसे चौंक उठे। जरा देर बाद धीरे से बोले—ठीक कहती हो नई-बहू, यह दुःसाहस मुझसे नहीं हो सकता। तुम्हारे रुपए मैं तुमको लौटा दूंगा—कल एक बार आओगी ?

'अगर आने को कहो तो आऊँगी।'

'और तुम्हारे गहने ?'

'तुम क्या अप्रसन्न होकर कह रहे हो मंझले बाबू ?'

व्रज बाबू एकाएक उत्तर नहीं दे सके। उनकी आँखों की दृष्टि वेदना से मलिन हो उठी। इसके बाद बोले—नई बहू, जिसकी वस्तु है उसे लौटा देना चाहता हूँ अप्रसन्न होकर—ऐसी बात आज तुम भी सोच सकीं ?

सविता सिर झुकाये चुप रही। व्रज बाबू ने कहा—मैं जरा भी अप्रसन्न नहीं हूँ नई-बहू, सरल मन से ही लौटा देना चाहता हूँ। तुम्हारी चीज तुम्हारे ही पास रहे—यह बोझ लादे फिरने की शक्ति अब मुझमें नहीं है।

अब भी सविता वैसे ही चुप रही, कुछ उत्तर न दे सकी।

शाम हो रही थी। व्रज बाबू उठ खड़े हुए। बोले—अच्छा तो आज चलता हूँ। कल इसी समय आना। मेरे इस अनुरोध की उपेक्षा न करना नई-बहू।

राखाल ने उन्हें प्रणाम करके कहा—मैं एक मित्र का ब्याह कराने कल रात की गाड़ी से दिल्ली जा रहा हूँ काका बाबू! लौटने में शायद आठ-दस दिन की देर होगी।

व्रज बाबू ने कहा—लौटने में देर होने दो, लेकिन मैं पूछता हूँ कि क्या तुम दूसरों के ही ब्याह कराते फिरोगे ; आप नहीं करोगे ?

राखाल ने हँसकर कहा—मुझे अपनी लड़की दें, ऐसे अभागे इस संसार

मैं कौन हूँ काका बाबू ?

सुनकर ब्रज बाबू भी हँसे। बोले—हूँ राजू ! जिन्होंने मुझे अपनी बेटी दी थी, वे आज भी संसार से लुप्त नहीं हुए। तुमको बेटी देने का दुर्भाग्य उनके दुर्भाग्य की अपेक्षा अधिक नहीं है। तुम्हें विश्वास न हो तो अपनी नई माँ को आड़ में ले जाकर पूछ लो, वह मेरे कथन का समर्थन करेगी।—अच्छा चलता हूँ नई-बहू, कल फिर भेंट होगी।

सविता ने पास आकर पैरों की रज माथे से लगाकर प्रणाम किया। ब्रज बाबू अस्पष्ट स्वर में शायद आशीर्वाद देते-देते ही घर के बाहर हो गये।

दूसरे दिन ठीक उसी समय ब्रज बाबू आकर उपस्थित हुए। उनके हाथ में सील-मोहर किया हुआ एक टीन का छोटा बक्स था। सविता पहले ही आ गई थी। ब्रज बाबू ने वह बक्स उसके सामने टेबिल पर रख दिया और कहा—यह इतने दिन से बैंक में ही रक्खा था। इसके भीतर तुम्हारे सभी गहने मौजूद हैं और यह लो अपने बावन हजार रुपयों का चैक। आज मैंने छुट्टी पाई नई बहू, यह बोझा लादे फिरने की मेरी बारी समाप्त हुई।

सविता ने कहा—लेकिन तुमने जो कहा था कि ये सब गहने तुम्हारी रेणु पहनेगी ?

ब्रज बाबू ने कहा—गहने तो मेरे नहीं हैं नई बहू, गहने तुम्हारे हैं। यदि वह दिन कभी आवे तो तुम्हीं उसे पहना देना।

राखाल बार-बार घड़ी की ओर ताक रहा था। ब्रज बाबू ने इसे लक्ष्य करके कहा—जान पड़ता है तुम्हारे जाने का समय हो गया राजू ?

राखाल ने शीश झुका, स्वीकार करके कहा—उस घर से सब लोगों को लेकर स्टेशन जाना होगा न !

ब्रज बाबू ने कहा—तो मैं अब उठूं। लेकिन लौटकर जब आना तब एक बार मुझसे मिलना राजू।

यह कहकर वह उठ खड़े हुए। एकाएक जैसे उन्हें स्मरण हो आया। उन्होंने कहा—लेकिन आज तो तुम्हारी नई-माँ को अकेले न जाना चाहिए। कोई पहुँचा न आवेगा तो—

राखाल ने कहा—अकेली नहीं हैं काका बाबू ! नई-माँ का दरबान उनको

मोटर लिये मोड़ पर खड़ा है।

ब्रज बाबू ने कहा—ओः—है ? अच्छा, अच्छा।—अच्छा तो जाता हूँ नई-बहू ?

सविता ने पास आकर कल की तरह प्रणाम किया, पैरों की धूल माथे से लगाई, फिर धीरे से कहा—अब फिर कब दर्शन मिलेंगे मंझले बाबू ?

ब्रज बाबू ने कहा—जिस दिन कहला भेजोगी। कोई काम है नई बहू ?

'ना, काम तो कुछ नहीं है।'

ब्रज बाबू ने हंसकर कहा—केवल यों ही देखना चाहती हो ?

इस प्रश्न का उत्तर क्या दे ! सविता गर्दन झुकाये बैठी रही।

ब्रजबाबू ने कहा—मैं कहता हूं, इन सब बातों की आवश्यकता नहीं है नई-बहू। मेरे लिए अब तुम अपने मन में कोई सोच न रखो। जो भाग्य में लिखा था, हुआ—गोविन्द जी ने उसका एक प्रकार से विचार भी कर दिया है—आशीर्वाद करता हूं, तुम लोग सुखी होओ। मुझ पर अविश्वास न करो नई-बहू, मैं यह सत्य ही कह रहा हूं।

सविता वैसे ही सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही।

राखाल को ध्यान आया कि अब और विलम्ब करना ठीक नहीं। बिना विलम्ब के गाड़ी बुलाकर उस पर ट्रंक आदि लादना होगा और यही कहते-कहते वह व्यस्त भाव से बाहर निकल गया।

सविता ने सिर उठाकर देखा, उनकी दोनों आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। ब्रजबाबू उसकी ओर जरा खिसककर खड़े हुए। बोले, अपनी रेणु को क्या एक बार देखना चाहती हो नई-बहू ?

'नहीं मंझले-बाबू, यह प्रार्थना मैं नहीं करती।'

'तो रोती क्यों हो ?'

'जो मांगूंगी वह दोगे ? बोलो।'

ब्रजबाबू इसका उत्तर नहीं दे सके, केवल सविता के मुंह की ओर ताकते खड़े रहे।

सविता ने कहा—अभी न जाने कितने दिन जियूंगी मंझले-बाबू, मैं क्या लेकर रहूंगी ?

ब्रजबाबू इस जिज्ञासा का भी उत्तर नहीं दे सके, सोचने लगे। इसी समय बाहर राखाल की आवाज सुनाई पड़ी। सविता ने चटपट आँचल से आँखें पोंछ डालीं और दूसरे ही क्षण दरवाजा ठेलकर राखाल ने भीतर प्रवेश किया। उसने कहा—नई-माँ आपका ड्राइवर पूछ रहा है कि अब चलने में कितनी देर है ? चलिए, यह भारी बक्स आपकी गाड़ी में रख आऊं।

नई-माँ ने कहा—राजू मुझे किसी-न-किसी प्रकार जल्दी से बिदा कर देना चाहता है. तभी जैसे इसे चैन पड़ेगी। मानो इसके लिए एक बला हूँ।

राखाल ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—माँ के मुख से यह शिकायत चल नहीं सकती नई-माँ। लीजिए आपके राजू का दिल्ली जाना अब न होगा। बचपन की तरह फिर एक बार मैंने माँ की गोद में आश्रय लिया। यहाँ से अब जाने न दूँगा माँ, लड़के के घर में आपको चाहे कितना ही दुःख क्यों न हो।

सविता लज्जा से मानों मर गई। राखाल ने भी जबान से यह बात निकलने के साथ ही अपनी भूल समझ ली थी। लेकिन भले मानुस ब्रजबाबू ने उधर लक्ष्य भी नहीं किया। बल्कि बोले—देर हो गई है नई-बहू ! तुम्हारा गहनों का बक्स राजू गाड़ी तक पहुँचा आवे। मैं तब तक उसका घर देखता रहूँगा।

इतना कहकर उन्होंने आप ही वह बक्स उठाकर राजू के हाथ में दे दिया। सविता के प्रश्न का उत्तर दब गया। राखाल के पीछे-पीछे नई-माँ चुपचाप चल पड़ी।

६

राखाल विवाह समाप्त कराके दस दिन बाद दिल्ली से सकुशल लौट आया। गृहस्वामी और गृहिणी दोनों ही राखाल की कार्य-कुशलता से प्रसन्न हुए। दिल्ली में राखाल की योग्यता का प्रभाव चारों ओर फैल गया था। कन्या-पक्ष के जितने भी सम्बन्धी वहाँ थे, सब उसकी योग्यता और सज्जनता से प्रभावित हुए। कुछ तो इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी कन्याओं की शादी के प्रस्ताव भी राखाल के सम्मुख रख दिये और उसे कई लड़कियाँ भी दिखलाईं। मध्य श्रेणी के साधारण घरानों की न जाने किन-किन असुवि-

धाओं के कारण अभी तक इनकी शादी नहीं हो पाई थी। राखाल ने यही उत्तर दिया था कि वह कलकत्ते जाकर अपने बाबूजी और नई-माँ से राय लेकर उन लोगों को पत्र लिखेगा। रमेश राखाल के काम को चाँद लगाने वाले थे। बिना पैसा व्यय किये जब उन्होंने दिल्ली, हस्तिनापुर, कुतुब मीनार, लाल किला इत्यादि की सैर कर ली—तब कुछ तो प्रतिदान देना ही चाहिए था। अपनी वाक्पटुता से उसने राखाल के महान् व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव दिल्ली निवासियों के हृदयों पर अंकित कर दिया। यदि कोई प्रश्न करता—'राखाल बाबू ने अभी तक शादी क्यों नहीं की ?'

'उनकी इच्छा। हम जैसे साधारण व्यक्तियों से उनकी क्या तुलना ?' वह गम्भीरता से उत्तर देते। तब कन्याओं के पिता संकोच से पूछते—'राखाल बाबू क्या करते है ?' वह तुरन्त मुस्कराकर उत्तर देता—'काम करने की उन्हें कोई खास आवश्यकता ही नहीं है' और वे सब इस वाक्य का अर्थ अपने-अपने दृष्टिकोण से लगाते थे।

राखाल कलकत्ते के बड़े-बड़े आदमियों की बातें बड़ी निर्भीकता से करता था। अनेक घर की लड़कियों के नाम उसे याद थे। नवीन बैरिस्टर और आई० सी० एसों० को वह आधे नाम से सम्बोधित करता था। उन नामों को सुनकर साधारण नौकरी-पेशे वाले बंगाली आश्चर्यचकित रह जाते थे।

राखाल शादी का विरोध ऊपर से न करके हृदय से करता है। उसे शादी से भय लगता है। वह अपनी आर्थिक अवस्था को जानता है। साथ ही वह जानता है कि उस जैसे व्यक्ति के लिए जिसके कलकत्ते में अनेकों परिचित मित्र और बन्धु हों, गृहस्थी चलाना साधारण काम नहीं। जिस वातावरण में आज वह स्वच्छन्दतापूर्वक ससम्मान रहता है वहीं पर उसे दूसरों की दृष्टि में हीन होकर जीवन व्यतीत करना होगा। फिर भी कभी-कभी उसे एकाकीपन खटकने लगता है। बसन्त के सुहाने समय में जब वह बाँसुरी की मनोहर तान किसी शादी के अवसर पर सुनता था तो उसका हृदय व्याकुल हो उठता था। विवाहों के निमन्त्रण उसके हृदय में गुदगुदी पैदा कर देते थे। समाचार-पत्र जब वह किसी स्त्री की आत्म-हत्या का समाचार पढ़ता था तो उस स्त्री का मुर्झाया हुआ मुख उसके नेत्रों में साकार हो जाता था। उसका मन कहने

लगता —संसार में कन्याओं की कितनी अधिकता और वरों का कितना अभाव है ? इन साधारण व्यक्तियों के मध्य केवल वही एक ऐसा व्यक्ति है जिस पर संसार की दृष्टि नहीं जाती। शायद उसे वरमाला पहिनाने वाली नारी ने संसार में जन्म ही नहीं लिया।लेकिन यह सब क्षणिक होता है। मोह-जाल टूटते ही वह अपनी वास्तविक स्थिति को समझ लेता है, हँसता है और आनन्द का अनुभव करता है। बच्चों को शिक्षा देता और साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेता है। निमन्त्रण मिलने पर विवाहोत्सवों को अपनी उपस्थिति से सुशोभित करने में भी नहीं चूकता। कितने ही नव-दम्पतियों के हाथों में फूलों के गुच्छे देकर उसने अपनी शुभ कामनाएँ प्रदान की हैं। समय व्यतीत होता जा रहा है। दिल्ली-यात्रा ने आज प्रथम बार राखाल के मन में एक परिवर्तन कर दिया। इस यात्रा से उसे ज्ञात हुआ कि दुनिया केवल कलकत्ता में ही समाप्त नहीं है, बाहर भी है और वहाँ भी सभ्य बंगाली परिवार रहते हैं। और ऐसे माता-पिताओं की भी कमी नहीं है जो सहर्ष उसे अपनी कन्या दे सकते हैं। कलकत्ते की सम्पर्क में आने वाली लड़कियों की अपेक्षा दिल्ली की भी लड़की को पत्नी बनाने में उसे लज्जा आ सकती, लेकिन यात्रा के इस नवीन ज्ञान से उसने अपने अन्तर में पर्याप्त बल और भरोसे का अनुभव किया है।

उसके इस विचार ने कि वह कभी संसार की कोई जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ले सकेगा, राखाल को दुर्बल बना दिया। आत्म-विश्वास को खोकर वह निर्बलता अनुभव करने लगा था। वह सोचता था कि स्त्री, बच्चे—इन सबसे कितनी आफतें हैं ? मकान, भोजन, कपड़े, पढ़ाई-लिखाई, बीमारी और न जाने क्या-क्या झञ्झटें गृहस्थी की हैं ! वह कैसे इन सब आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा ? शारदा ने सर्वप्रथम इस भावना को ठेस पहुँचाई। जिस दिन असीम समुद्र के बीच आश्चर्य-हीन शारदा ने उसका सहारा लिया उस दिन उसने अपना हाथ बढ़ाकर उसका समस्त भार अपने ऊपर ले लिया था। उसकी बात पर उसने विश्वास किया, घर लौट आई और मरना नहीं चाहा। इस यात्रा ने उस विचार को पूर्णतः समाप्त-सा ही कर दिया। उसने मन में निश्चय कर लिया है कि न वह किसी प्रकार असमर्थ ही है और न दुर्बल ही। संसार के सब व्यक्तियों की भाँति वह भी अपने में सब कुछ करने की सामर्थ्य रखता है। इस नवीन विचारधारा से प्रफुल्लित होकर वह शारदा से मिलने

गया। वहां ताला लगा हुआ था, सामने एक बच्चा खेल रहा था। उससे पता चला कि शारदा ऊपर गई है, रात को वहां दावत है। ऊपर पहुंच कर राखाल ने देखा कि एक उत्सव हो रहा था। बड़े ठाट-बाट से भोजन का प्रबन्ध हो रहा था। रमण बाबू अकारण ही कुछ परेशान से लगते थे और सविता देवी धोती लपेटे अपने कमरे में दावत की सामग्रियों की व्यवस्था कर रही थीं।

राखाल को देखते ही रमण बाबू कह उठे—'लो! राजू आ गया, नई बहू!' सविता वहां आ गई। रमण बाबू आनन्द की सांस लेकर बोले—'लो भाई संभालो राजू, मेरी तो जान बची।'

'ठीक ही हुआ।' सविता बोली—'आप कमरे में जाकर सो जाइए हम सब कर लेंगे।'

शारदा मुंह छिपाकर मुस्कराई और राखाल से पूछा—'कब आये?'

'कल।' राखाल ने उत्तर दिया।

'तब आपने कल ही दर्शन क्यों नहीं दिये?'

'इतना समय नहीं मिला—लौटने पर भी न जाने कितना काम इकट्ठा हो जाता है!'

सविता मुस्करा कर बोली—'शारदा को राजू ने बचाया है, इसीलिए राजू पर उसका इतना अधिकार है।' शारदा ने हंसकर मिठाई की डलिया उठाई और चल दी। राखाल ने रमण बाबू को नमस्कार किया तथा सविता के पैर छुए और पूछा—'मां! क्या मैं भी इस समारोह का कारण जान सकता हूं?'

'यों ही है बेटा!' सविता ने मुस्कराते हुए कहा।

'यों ही! भला कौन विश्वास कर सकता है इस बात पर?' कहकर रमण बाबू राखाल की ओर मुख करके बोले—'आपने आधे मूल्य पर एक बड़ी सम्पत्ति मोल ली है। यह उसी की दावत हो रही है। हमारे सिंगापुर वाले भागीदार यहां आये हैं—मि० शैलेन्द्र; क्या कभी सुना है नाम? आज सन्ध्या को उनसे आपका यहीं पर परिचय होगा। करोड़पति हैं। और भी कई व्यक्तियों से परिचय होगा। गाने-बजाने की महफिल होगी, हमारे सभी मित्र आयेंगे। मालती का मुग्ध करने वाला संगीत होगा, वह कलकत्ते की सबसे

अच्छी गाने वाली है। उसका संगीत तुम्हें मन्त्र-मुग्ध बना देगा।'

सविता ने रमण बाबू को चुप करने का प्रयत्न किया लेकिन वे बोले—'कहने क्यों नहीं देती ? इससे छिपाने की क्या बात है ?' फिर राखाल की ओर मुख करके बोले—'भाई राजू ! तुम्हारी नई माँ भाग्य की बलवान हैं। जब गाँव में रहती थीं तो न जाने किस अनाड़ी को बहुत-सा रुपया उधार दे आई थीं। उसके चुकता होने की कोई भी आशा नहीं थी कि अचानक सब वसूल हो गया। भय के कारण वह स्वयं यहाँ आकर गिन गया। रुपया पूरा होने में दस हजार की कमी हुई तो मेरी खुशामद की गई—'बाबू जी इतनी कृपा आप करिए।' मैंने कहा—'सरकार के लिए मैं क्या नहीं कर सकता—तन, मन, धन सब कुछ सरकार का ही तो है।' इतना कहकर वह व्यंग से इस बुरी प्रकार हँसे कि राखाल ने लज्जा से मुंह दूसरी तरफ कर लिया।

रमण बाबू हँसते हुए एक तरफ चले गये। सविता तभी राखाल से बोली—'विलम्ब हो गया ! नहा कर थोड़ा-सा नाश्ता करलो राजू ! सन्ध्या को तुम्हें बहुत दौड़-धूप करनी है। कितने काम करने को फैले पड़े हैं !'

'मैं काम से डरना नहीं जानता माँ ! लेकिन मैं एक बार घर जरूर जाऊँगा।'

'कल सुबह चले जाना।'

'नहीं माँ।' नम्रता से राखाल बोला।

'तब फिर किस समय तक लौट आओगे ?'

'आऊँगा तो अवश्य ही, लेकिन किस समय यह नहीं बता सकता।'

'क्या तारक आजकल बाहर गया हुआ है ?'

'हैड मास्टरी करने के लिए वह बर्दवान चला गया है, लेकिन यदि वह यहाँ होता तब भी शायद न आता।'

सविता राखाल की भाव-भंगियों को पहिचान रही थी। उसे प्रसन्न करने के लिए बोलीं—'उस पर क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है राजू ! यह उसका स्वभाव है।' माँ की टीका से राखाल प्रसन्न होने की अपेक्षा चिढ़ कर बोला—'मैं क्रोध नहीं कर रहा हूँ माँ ! मूर्ख पर क्रोध ही क्या किया जाय ?' इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह चल दिया। सीढ़ी से उतरते

हुए मन में विचारा—यह रुपया अदा कर जाने वाला व्यक्ति कौन था ? शायद रमण बाबू यह नहीं जानते लेकिन फिर भी राखाल उस उदार और धर्मात्मा व्यक्ति के प्रति इस प्रकार के व्यंगात्मक और अपशब्द कहने वाले व्यक्ति को मन से क्षमा नहीं कर सकता था। विचित्र बात तो यह थी कि सविता ने यह सब सुनकर एक शब्द भी मुख से नहीं कहा—यानी उनके लिए कोई विशेष बात ही नहीं थी। यह भी सच था कि यह व्यंग सविता को ही सम्बोधित करके किया गया था। इसी सत्य ने उसके मन की वेदना को बहुत कुछ हल्का कर दिया और वह क्रोधित नहीं हुआ। अन्त में बोला—'ठीक ही तो है। वह इसी योग्य हैं। मेरा इस प्रकार जलना और क्रोध करना व्यर्थ ही है।'

बड़े बाजार में वह ट्राम से उतरा और सामने वाली गली से मुड़ कर ब्रज बाबू के मकान के सामने जा पहुँचा। द्वार पर ताला बन्द था और लिखा था—मकान किराये के लिए खाली है—राखाल की आँखों नीचे अंधेरा छा गया, उसे लगा मानों वह भूल से किसी और मकान के सामने चला आया है। कुछ देर पागल की भाँति इधर-उधर देखा और फिर आगे बढ़कर नुक्कड़ वाले दुकानदार के पास पहुँचा। पुराना दुकानदार था। गली के सभी घरों में उसके यहाँ से सौदा जाता था। पूछा—'क्यों ! ब्रजबाबू के मकान पर यह कैसा नोटिस लगा हुआ है ?'

'आप क्या इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते राजू बाबू ?' दुकानदार ने पूछा।

'नहीं लाला जी, मुझे तो कुछ भी पता नहीं, बाहर गया हुआ था, आज ही वापस आया हूं।'

'उन्होंने अपना अधिकार समाप्त करने के लिए यह मकान बेच डाला !'

'मकान बेच दिया ! फिर वह लोग रहते कहाँ हैं ?'

'बहू रानी तो बिटिया को लेकर अपने भाई के घर चली गई और ब्रज बाबू रेणुका के साथ किराये के मकान में रहने लगे।'

'क्या तुम वह किराये वाला मकान जानते हो लाला जी ?'

'अरे ! जानता क्यों नहीं ?' कहकर उसने हाथ के इशारे से बतलाया—

'उधर जाकर उस गली से मुड़ जाना, पन्द्रह नम्बर है मकान का।'

घर खोजकर राखाल ने द्वार खटखटाया। दासी ने आकर द्वार खोले, राखाल को देखा तो नेत्रों में आँसू भर गये। राखाल ने पूछा—क्यों ब्रजबाबू कहाँ हैं?'

'ऊपर खाना बना रहे हैं।' दासी ने उत्तर दिया।

'क्यों, क्या महाराज नहीं है?'

'जी नहीं।'

'कोई नौकर भी नहीं रहा?'

'केवल एक माधव है, सो वह भी दवा लेने गया है।'

'दवा किसके लिए?'

'रेणुका को चार दिन से ज्वर आ गया है।'

आँगन में काफी सील थी। घर का सामान बेतरतीब बिखरा पड़ा था। सीढ़ी बिल्कुल ही टूटी हालत में थी। बरामदे के एक कोने में लोहे की अँगीठी के पास ब्रजबाबू बैठे पसीने में नहा रहे थे। खाना बन चुका था। आग पर साबूदाना रखा था। ब्रजबाबू के हाथ कई स्थान से जल गये थे। भात के जलने की गन्ध घर भर में फैली हुई थी। तरकारी भी कुछ कम पकी रह गई थी। राखाल को देखते ही झिझक दूर करने के लिए ब्रजबाबू उठ खड़े हुए। दासी की ओर संकेत करके बोले—'देख रहे हो राखाल इसकी करतूत! अँगीठी में इतने कोयले भर दिये हैं कि आग बाहर निकल पड़ रही है। मैं क्या अनुमान कर सकता हूँ इसका? भात जाने कैसा हो गया—शायद जल गया।'

'जल जाने दीजिए! बारह बज रहे हैं। मैं दूसरे चावल चढ़ाये देता हूँ। आप पूजा-पाठ कीजिए और रेणुका कहाँ है?' कहता हुआ वह पास के कमरे में चला गया। वहाँ रेणुका ज्वर में अचेत पड़ी थी। राजू को देखकर उसके नेत्रों से पानी बह चला। राखाल ने किसी प्रकार अपने को सँभालते हुए कहा—'रोने की क्या बात है पगली! बुखार तो सबको आ जाता है। दो दिन में उतर जायगा। फिर मैं तो अभी जीवित हूँ। क्यों चिन्ता करती हो?

उठो, मुंह-हाथ धोकर कपड़े बदल डालो।'

रेणुका ने सिर उठाया। राखाल ने दासी को पुकार कर साबूदाना लाने के लिए कहा। दासी वहाँ आ गई तो राखाल ने कहा—'भात जल गया है, उससे काम नहीं चलेगा। तुम, अपने लिए, मेरे लिए, माधव और बाबू जी—चार आदमियों के लिए चावल साफ करके धो लो। मैं नहा कर आता हूं। कुछ शाक-भाजी है?'

'हां।' दासी ने कहा।

तब उसे भी जल्दी से कतर कर तैयार कर दो। वह भी बन जायगी। राखाल ने तार पर पड़ी हुई गीली धोती उतारी और नल की ओर यह कहता हुआ जल्दी से लपका—'बाबू जी पूजा के लिए जल्दी कीजिए—और रेणुका, जब तक नहाकर आऊं तुम साबूदाना खा लेना। माधव अगर आ जाय तो···।'

इस निराशा से भरे सन्नाटे वाले घर में एकदम प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण छा गया, चहल-पहल दिखलाई देने लगी। राखाल ने गुसलखाने में जाकर एकदम द्वार बन्द कर लिये और अधगीले फर्श पर बैठ गया। उसका सिर उसके हाथों में था और आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। आज वह उसी प्रकार रो रहा था जिस प्रकार बचपन में हैजे से अपने पिता की मौत के बाद रोया था। हृदय के उमड़ते भार को हल्का करने के लिए वह खूब जी भर कर रोया और कुछ देर तक रोता ही रहा। फिर कुछ विचार कर एकदम शान्त हो गया और नहाने के बाद धोती बदलकर बाहर चला आया। जब वह बाहर आया तो तबियत बिल्कुल साफ थी, हृदय हल्का और मुख पर स्वाभाविक मुस्कराहट थी।

राखाल खाना अच्छा बना लेता था। अपने लिए उसे प्रतिदिन बनाना पड़ता था। देखते-ही-देखते खाना बनकर तैयार हो गया। साथ ही भगवान् की पूजा, भोग और आरती ने भी अधिक समय नहीं लिया। सबको खाना खिलाने और खाने में तीन बज चुके थे।

उसी बीच रेणुका भी उठकर बैठ गई थी। जब कहे बिना नहीं रहा गया तो बोली—'राजू दादा! तुमने तो हमको भी हरा दिया। स्त्रियाँ भी इतनी

जल्दी भोजन नहीं बना सकतीं। किसी बड़ी भाग्यवाली का विवाह होगा तुमसे। लेकिन दादा ! क्या तुम सचमुच विवाह करोगे ही नहीं ?'

'विवाह कैसे हो सकता है रेणुका ? इतनी बड़ी सौभाग्यवाली मिले तभी तो !' राखाल हँसकर बोला।

'नहीं, यह नहीं होगा दादा ! मैं पिता जी से कह कर तुम्हारा विवाह अवश्य कराऊंगी।'

'अच्छा, करा देना; लेकिन पहले इस खटिया से तो सम्बन्ध छोड़ दो। डाक्टर साहब ने क्या कहा ? ज्वर न उतरने का क्या कारण बताया है ?'

दासी बीच ही में बोल उठी—'आज डाक्टर साहब नहीं आये। पहले ही दिन आये थे। वही दवा दी जा रही है।'

राखाल सुनकर चुप हो गया। राखाल को शंकाकुल देखकर रेणुका ने कहा—'प्रतिदिन दवा का बदलना भी तो ठीक नहीं है दादा ? डाक्टर को रोज बुलाकर फीस देने से क्या बीमारी चली जायगी ? आप लोग देखिएगा मैं इसी दवा से स्वस्थ हो जाऊंगी।'

राखाल ने मुंह से कुछ नहीं कहा लेकिन समझने में देर न लगी कि स्वाभिमानिनी पुत्री ऐसी कठिन परिस्थिति में भी अपने पिता के दस-पांच रुपये अपने लिए व्यर्थ व्यय करना नहीं चाहती। फिर राखाल जाने के लिए खड़ा हो गया।

'तुम जा रहे हो, राजू दादा ?' रेणुका ने प्रश्न किया।

'हां रेणुका, अब मुझे जाना है। कल सुबह फिर आऊंगा।'

'भूलोगे तो नहीं ?'

'बिल्कुल नहीं; और हां, जब तक मैं न आऊं, बाबू जी को रसोई में मत जाने देना।'

रेणुका कुछ मुंह-सा बनाकर बोली—'दादा ! कल यदि मुझे ज्वर नहीं आया तो मैं खाना बनाऊंगी।'

'बिल्कुल नहीं।' दासी की ओर मुंह करते हुए राखाल बोला—'तुम ध्यान रखना कि मेरे आने तक कोई रसोईघर में न घुस सके।' इतना कहकर राखाल घर से बाहर हो गया।

डाक्टर साहब का घर उसी गली में था। ऊपर घर था और नीचे दुकान। मार्ग में राखाल ने उनसे मिलकर पूछा—'क्यों डाक्टर साहब, रेणुका को कैसा ज्वर है कि उतरता ही नहीं ?'

'ज्वर साधारण है लेकिन आज तक नहीं उतरा इसलिए दो-तीन दिन बाद ही निश्चय होगा कि किस प्रकार का ज्वर है।' ये इस घर के पुराने डाक्टर हैं। तत्पश्चात् और बातें छिड़ीं। अचानक ब्रज बाबू पर पड़ने वाली विपत्ति पर डाक्टर ने दुःख प्रकट किया। उन्हें आश्चर्य हुआ। फिर बोले—'अब तुम आ ही गये हो राखाल, अतः कोई चिन्ता की बात नहीं। मैं कल रेणुका को देखने जाऊँगा।'

'अवश्य ही जाइएगा डाक्टर साहब, हमारे पास आपको बुला ले जाने वाला कोई आदमी नहीं है।'

'बुलाने की आवश्यकता नहीं है राखाल, मैं स्वयं ही जाऊँगा।'

वहाँ से लौटकर राखाल अपने घर पर जाकर सो रहा। मन टूट गया है। ब्रज बाबू की दुर्दशा कितनी बड़ी है और सर्वनाश का परिणाम कैसा गम्भीर है, तरह-तरह के कामों में रहने से इस बात पर अब तक कभी सोच-विचार करने का अवकाश उसे नहीं मिला है। निर्जन कमरे में इस बार उसकी दोनों आँखों से हु-हु करके अश्रुधारा बहने लगी। इसका अन्त कहाँ है और दुःख के दिन में वह क्या कर सकता है इसका बहुत सोचने पर निश्चय न कर सका। किस तरह इतनी जल्दी ऐसी घटना हो गई यह कल्पनातीत था। उस पर रेणुका बीमार पड़ी है। मुहल्ले में टाइफायड ज्वर फैल रहा है यह समाचार वह जानता था, डाक्टर के कथन से भी ऐसे ही एक सन्देह का इंगित उसने लक्ष्य किया है। उपदेश देने वाला कोई आदमी नहीं, शुश्रूषा करने वाला कोई नहीं है, चिकित्सा करने के लिए रुपया-पैसा भी शायद पास नहीं है। इस निरीह निर्विरोधी मनुष्य के विषय में शुरू से अन्त तक सोचकर उसके मन में संसार में धर्म-विषयक बुद्धि, भग वत् भक्ति, साधुता सभी पर मानो घृणा उत्पन्न हो गई। वह सोच रहा था दिल्ली से लौटने पर तरह-तरह के अपव्यय से मेरा अपना हाथ भी खाली है, डाकखाने में जो कुछ मामूली बचा है उस

पर तो एक दिन भी निर्भर नहीं रहा जा सकता। फिर भी, यह रेणुका मेरे ही साथ रहकर तो सयानी हुई थी। किन्तु वह बात छोड़ो। उसी की चिकित्सा के लिए उसी के पास जाकर मैं किस प्रकार हाथ फैलाऊंगा! यदि उसके पास भी रुपए न रहे? वह जानता है जिसके यहाँ हूँ वे लोग अत्यन्त कृपण हैं, इष्ठमित्र अनेक हैं सच है, लेकिन उनके पास आवेदन करना निष्फल है।

एकाएक याद पड़ गई नई-माँ (सविता) को। लेकिन दीपशिखा जलते ही बुझने लगी—वहाँ दो घड़ी खड़े होने की कल्पना ने भी उसे कुण्ठित कर दिया। कारण पूछने पर यह कहेगा ही क्या और कैसे? यह मार्ग नहीं है, कोई दूसरा मार्ग भी उसकी दृष्टि में नहीं पड़ा। केवल कह देने से तो काम चलेगा नहीं, रास्ता तो उसे मिलना चाहिए। दासी ने आकर खाने के लिए कहा तो उसने मना करके कहा—'दूसरे स्थान से निमन्त्रण आया है। अक्सर ऐसा ही रहता है।'

दासी के चले जाने पर उसने भी द्वार पर ताला बन्द कर दिया। राखाल शौकीन आदमी है; वेश-भूषा की साधारण गन्दगी भी उससे सही नहीं जाती, लेकिन आज वह बात उसे याद ही नहीं पड़ी, जिस हालत में था उसी हालत में बाहर चला गया।

जिस समय वह नई-माँ के घर पहुँचा उस समय सन्ध्या हो चुकी थी। सामने कुछ मोटरें खड़ी थीं, वृहत् अट्टालिका बहुसंख्यक विद्युत दीपकों के प्रकाश से समुज्ज्वल हो रही थी, दुमंजले के कमरे से वाद्ययन्त्र के थपथपाये जाने का स्वर उठ रहा था, गृह-स्वामिनी बहुत व्यस्त थीं—कहीं भाग्यवान् आमन्त्रित व्यक्तियों के आदर-सत्कार में कोई त्रुटि न हो, राखाल को देखकर क्षण-भर ठिठक कर खड़ी हो जाने के बाद उन्होंने पूछा—'इतनी देर के बाद शायद हम लोगों की याद आई बेटा!'

इधर कई दिनों में उससे नई-माँ को जिस दशा में देखा था वे मानो वह नहीं हैं। अभिनव और बहुमूल्य वेशभूषा की सजावट ने उनकी दशा को मानो दस साल पीछे ठेल दिया है। राखाल हतबुद्धि-सा खड़ा रह गया, एकाएक कोई उत्तर न दे सका। उन्होंने उसी समय फिर कहा—'आज थोड़ा सा काम कर देनेके लिए कहा था इसलिए शायद बिल्कुल ही रात्रि कर के आये राजू?'

राखाल ने नम्रता के साथ कहा—'काम पूरा करने में देर हो गई माँ। इसके अलावा मेरे न आ सकने से कुछ हानि तो नहीं हुई ?'

'नहीं हानि तो नहीं हुई यह सच है, लेकिन उस समय कह कर जाने से ही ठीक होता।' उसके कण्ठ-स्वर से इस बार कुछ विरक्ति की आवाज मिली हुई थी।

राखाल बोला—'उस समय मैं स्वयं भी नहीं जानता था नई-माँ। उसके पश्चात् फिर समय नहीं मिला।'

किसी के पुकारने पर सविता चली गई। पाँच मिनट के बाद वापस आने पर उन्होंने देखा कि राखाल पहले के समान खड़ा हुआ है। उन्होंने कहा—'खड़े क्यों हो राजू, कमरे में चलकर बैठो।'

राखाल किसी दशा में भी संकोच मिटा नहीं सकता, लेकिन नहीं कहने के बिना काम चलने वाला हो नहीं था। अन्त में धीरे-धीरे बोला—'एक आवश्यक काम से आया हूँ नई-माँ, मुझे आज कुछ रुपये देने होंगे।'

सविता अचरज में पड़कर देखने लगी, कहने में शायद उनको भी हिचक सी मालूम हुई। लेकिन उन्होंने कहा—'रुपया ? रुपया तो नहीं है राजू, जो कुछ था वह सब बाजार में व्यय हो गया। उसी समय तो तुम सुन गये थे।'

'कुछ भी नहीं है माँ ?'

'नहीं, कुछ भी नहीं है। गृहस्थी के व्यय से यदि मामूली कुछ बचा भी रहे तो उसे ढूंढ़ कर देखना पड़ेगा। इसके लिए समय तो नहीं है।'

शारदा तरह-तरह के कामों में लगी थी। बात सुनकर उसने निकट आकर कहा—'मेरे पास दस रुपये हैं, ला दूं ?'

राखाल ने उसके मुख की तरफ कुछ देर ताक कर कहा—'तुम दोगी ? अच्छा, लाओ।'

शारदा ने कहा—'मिनू की नानी के पास रुपया है, कोई चीज गिरवी रखने से उधार दे देती है।'

'उनके पास मुझे तुम ले जा सकती हो शारदा ?'

'ले क्यों न जा सकूंगी—वे तो बूढ़ी हैं। लेकिन मेरे पास तो कोई गहना नहीं है।'

'तो भी जाकर देखूँ ?'

'चलिए।'

उन दोनों के जाते समय सविता ने कहा—'इसी कारण बिना खाये नीचे से ही चले मत जाना राजू।'

राखाल लौटकर बोला, 'आज बहुत ही असमय में खाना हुआ है नई-माँ ! भूख जरा भी नहीं है। आज मुझे क्षमा देनी होगी।' यह कहकर वह शारदा के पीछे-पीछे नीचे उतर आया। सविता ने फिर उससे अनुरोध नहीं किया।

राखाल चला गया है, शारदा अपने घर में दो एक शेष काम पूरा करके फिर ऊपर जाने की तैयारी कर रही है, सविता ने आकर प्रवेश किया। उसके बिछौने पर बैठकर बोली—'एक पान तो दे बिटिया।'

यह सौभाग्य कभी शारदा को नहीं प्राप्त हुआ था, वह उपकृत हो गई। तुरन्त हाथ धोकर वह पान लगाने लगी कि उसी समय उन्होंने कहा—'राजू बिना खाये अप्रसन्न होकर चला गया ?'

शारदा ने मुँह ऊपर उठाकर कहा—'नहीं माँ, अप्रसन्न होकर तो नहीं गया।'

'अप्रसन्न होकर तो गया ही है। वह सवेरे से ही कुछ अप्रसन्न था, उस पर उसे रुपया न दे सकी—शायद तुमने दस रुपये उसको दिये हैं ?'

'नहीं माँ, मुझसे उन्होंने नहीं लिये, मिनू की नानी से एक सौ रुपये लाकर दिये है।'

'ऐसे ही ? खाली हाथ क्या उसने दे दिया ?'

शारदा ने कहा—'नहीं, ऐसा ही तो नहीं। उन्होंने अपने हाथ की सोने की घड़ी खोलकर मुझे देकर कहा—इसका मूल्य है तीन सौ रुपया, वे जो दें ले आओ। उनके पास चाय के बगीचे के कुछ कागज हैं उन्हें ही बेचकर इसी महीने में वापस कर देने को कहा है।'

सविता ने पूछा—'एकाएक उसको रुपये की आवश्यकता क्यों पड़ गई ?'

शारदा ने कहा—'कोई एक लड़की बहुत बीमार है, उसी की दवाई के लिए।'

'कौन लड़की है कि उसके लिए रातोंरात घड़ी गिरवी रखने की आवश्यकता पड़ गई ?'

'इसकी जानकारी तो मुझे नहीं है मां, लेकिन जान पड़ता है कि वह बहुत सख्त बीमार है। रुपये के अभाव में पीछे कहीं वह मर न जाय यही उनको भय है। सुनती हूं कि लड़की के बाप ने ही बचपन में उनका लालन-पालन करके बड़ा किया है।'

सविता ने अचरज में पड़कर कहा—'बचपन में लालन-पालन किया था बताया है ? वह उसकी मनगढ़न्त कथा है। राजू को किसने पाला-पोसा है यह मैं जानती हूं। उनकी लड़की की चिकित्सा में किसी दूसरे को घड़ी रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।'

शारदा ने उनके मुंह की ओर देखकर कहा—'मनगढ़न्त कहानी तो नहीं मालूम होती मां।' यह कहते समय उसके नेत्रों में आंसू भर आया। उसने फिर कहा—'उनके पास भी धन बहुत था लेकिन एकाएक व्यवसाय नष्ट हो जाने पर कर्ज के कारण घर द्वार तक बेच देने पड़े, फिर भी दिल्ली जाते समय भी ऐसी हालत देखकर नहीं गये थे। आज जाकर उन्होंने देखा कि बीमार पड़ी हुई लड़की की देखभाल करने वाला कोई नहीं है। बूढ़ा बाप आप ही खाना पकाने बैठा है—'लेकिन जानता कुछ भी नहीं है—हाथ जल गया है—भात जल गया है, तरकारी जल जाने से महक निकल रही है—राखाल बाबू को दुबारा फिर पकाना पड़ा तभी सबका खाना हुआ। इसलिए यहां आने में उनको देर लगी। मुझसे कहा था कि इस संकट में उन लोगों की मदद करो। लड़की की मां तो है नहीं—उसकी तनिक देखभाल करो। मैंने सहमत होकर कहा है कि आप जो आज्ञा देंगे वही मैं करूंगी।'

शारदा ने पान दिया। वह उनके हाथ में ही पड़ा रह गया। उन्होंने पूछा—क्या राजू ने कहा है कि एकाएक व्यापार नष्ट हो जाने से कर्ज के कारण उनका घर तक बिक गया है ? दिल्ली जाने के पहले ऐसी दशा देखकर नहीं गया था ?'

'हां ऐसा ही तो उन्होंने कहा है।'

'असम्भव है।'

शारदा चुप रही—सविता ने फिर पूछा—'राजू ने कहा है कि लड़की की माँ नहीं है, शायद मर गई है ?'

शारदा ने कहा—'माँ जब नहीं है तब तो वह अवश्य ही मर गई है। दूसरी बात क्या हो सकती है माँ ?'

सविता उठ गई। पाँच छः मिनट के बाद शारदा दीपक बुझाकर कमरा बन्द कर रही थी, तभी वे लौट आईं। बदन पर पहले वाला कपड़ा नहीं था, शरीर में वे सब जेवर नहीं थे, मुंह घबड़ाहट से म्लान था—उन्होंने कहा—'मेरे साथ तुमको एक बार चलना होगा।'

'कहाँ माँ ?'

'राजू के घर पर।'

'इतनी रात को ? मैं निश्चित रूप से कह रही हूँ माँ, उन्होंने थोड़ा सा दुःख अनुभव तो किया है लेकिन अप्रसन्न होकर नहीं गये हैं, इसके अलावा यहाँ घर पर भी तो काम है, कितने लोग आये हैं, सभी मुझे ढूंढ़ने लगेंगे माँ ?'

'कोई जान न पावेगा शारदा, हम लोग जायेंगी और लौट आवेंगी।'

शारदा ने सन्दिग्ध स्वर में कहा—'यह तो अच्छा नहीं होगा माँ, हो सकता है कोई गड़बड़ी होने लगे। बल्कि कल दोपहर का खाना-पीना हो चुकने पर कोई जान भी न पावेगा।'

कुछ देर सविता उसके मुंह की ओर देखकर बोलीं—'आज रात बीतेगी, कल प्रातःकाल का समय बीत जायगा, उसके बाद दोपहर को खाना-पीना हो चुकने पर हम लोग जायेंगी ? तब तक तो मैं पागल हो जाऊँगी !'

शारदा इस उत्कण्ठा का कारण समझ नहीं सकी लेकिन उसने फिर कोई आपत्ति भी नहीं की—मौन हो रही।

जिस द्वार से किरायेदार का आना-जाना होता रहता है दोनों वहाँ जा पहुँची और दो मिनट के बाद राह में चलने वाली एक खाली टैक्सी करके उस पर सवार हो गईं। दृष्टि जा पहुँची ठीक ऊपर ही—प्रकाश से जगमगाता हुआ कमरा उस समय संगीत, हास्य और आनन्द कलरव से मुखरित हो उठा था। एक रूमाल में बंधा हुआ बण्डल शारदा के हाथ में देकर सविता ने

कहा—'आँचल में बाँध लो बेटी, शायद राजू मेरे हाथ से नहीं लेगा, उसको तुम दे देना।'

दस मिनट पश्चात् वे दोनों पैदल चलकर राखाल के घर के सामने पहुँच गईं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि बाहर से द्वार बन्द है, भीतर कोई नहीं है। दोनों ही चुपचाप आकर गाड़ी पर बैठ गईं और लगभग पाँच-छः मिनट और बीतने पर वह बाजार के एक बहुत बड़े मकान के सामने उनकी गाड़ी खड़ी हो गई। उतरना नहीं पड़ा, दिखाई पड़ा कि उस मकान के भी दरवाजे पर ताला लटका है। रास्ते का प्रकाश ऊपर ही बन्द खिड़की पर जा पड़ा है। वहाँ बड़े-बड़े लाल अक्षरों में नोटिस लगा हुआ है—मकान किराये के लिए खाली है।

महान् विपत्ति में अपने आपको पल भर में सम्भाल लेने की शक्ति सविता में साधारण है। उनके मुंह से एक लम्बी साँस तक भी नहीं निकली। घर लौट चलने की आज्ञा देकर गाड़ी के कोने में माथा रखकर वे पाषाण-मूर्ति की तरह मौन हो बैठी रहीं।

वास्तविक बात क्या हुई है इसका अनुमान करना शारदा के लिए कठिन था लेकिन वह इतना तो समझ ही गई थी कि राखाल असत्य कहकर नहीं आया है और सचमुच ही कोई भयंकर घटना हो गई है।

लौटते वक्त रास्ते में उसने सविता के शिथिल हाथ को अपने हाथ में खींचकर पूछा—'यह किसका घर है, माँ! यही घर बेच दिया है!'

'हाँ!'

'इनकी लड़की की बीमारी की बात उन्होंने कही थी।'

उत्तर न पाकर शारदा ने फिर धीरे-धीरे कहा—'वे लोग कहाँ हैं, इसका पता लगाना तो आवश्यक है!'

'कहाँ, किसके यहाँ पता लगाऊँ, शारदा?'

'राखाल बाबू मुझे कल ले जाने के लिए अवश्य ही आवेंगे।'

'यदि वह न आवें? मेरे घर पर यदि वह फिर पैर न रखना चाहें?'

शारदा मौन होकर सोचने लगी—राखाल ने रुपया माँगा, वे दे न सकीं, सिर्फ इतनी ही बात को लेकर नई-माँ की इतनी अधिक उत्कण्ठा है। आत्म-

ग्लानि से उसके मन में अत्यन्त घबराहट-सी होने लगी। उसको सन्देह हुआ वास्तव में यह बात इतनी ही नहीं है। भीतर कोई गूढ़ रहस्य है। सविता रमण बाबू की स्त्री नहीं है इस बात की जानकारी न रहने का ऊपरी दिखावा रखने पर भी घर के सभी लोग मन-ही-मन जानते थे। वे लोग ऐसा बाहरी दिखावा रखते थे, भय से नहीं श्रद्धा से। सभी जानते थे कि वह किसी बड़े घर की बहू-बेटी है, आचरण में बड़ी हैं, दया, दान और सौजन्य में बड़ी हैं, इसीलिए उनका यह दुर्भाग्य किसी के लिए आनन्द की वस्तु नहीं रहा। परिताप और गम्भीर लज्जा की बात थी। बहुत दिनों से एक ही संग रहते-रहते सभी उनको इतना अधिक प्यार करते थे।

जब गली के नुक्कड़ से गाड़ी घूम रही थी कि उसी समय दुकान के तेज प्रकाश की रेखा क्षण-भर के लिए सविता के चेहरे पर आ पड़ी। शारदा ने देखा मानो उसमें प्राण ही नहीं है। हाथ का तला अत्यन्त शीतल मालूम हुआ। उसने भयभीत होकर एक बार झकझोर कर पुकारा—'माँ!'

'क्यों बेटी?'

काफी देर तक फिर कोई बात मुंह से नहीं निकली—अन्धेरे में ही शारदा को अनुभव हुआ कि उसकी आंखों से आंसू बह रहे हैं। उसने साहस करके हाथ बढ़ाकर देखा, ठीक ऐसी ही बात है यत्नपूर्वक आंचल से आंसू पोंछकर उसने कहा—'माँ, मैं आपकी बेटी हूँ। मेरा अपना कहलाने योग्य इस दुनिया में कोई नहीं है। मुझे आप जो आदेश देंगी मैं वही करूंगी।'

वे बातें मामूली थीं। सविता ने उत्तर में कुछ भी नहीं कहा—केवल हाथ बढ़ाकर उन्होंने उसे अपनी गोद में खींच लिया। आंसू की भाप के रुंधे हुए आवेग से उनका समस्त शरीर कई बार कांप उठा। उसके बाद बड़ी-बड़ी आंसू की बूंदें शारदा के माथे पर एक-एक करके झरने लगीं।

जिस समय दोनों घर वापस पहुँची उस समय भी मालतीमाला का गाना हो रहा था—उन लोगों की अल्प समय की अनुपस्थिति का किसी ने विचार नहीं किया। सविता नीचे स्नान करके ऊपर जा रही थी कि दासी ने अचरज के साथ पूछा—'माँ, अभी नहाकर आ रही हो! शायद सिर में चक्कर आ रहा था।'

'हाँ!'

'इस समय धोती बदलकर लेट रहो माँ, सारा दिन परिश्रम करना पड़ता है।'

शारदा ने कहा—'इस ओर मैं हूं माँ, कोई चिन्ता मत करना। आवश्यकता पड़ने पर आपको बुला लूंगी।'

उस रात्रि को किसी प्रकार खाना-पीना समाप्त हुआ। एक-एक करके सब लोगों ने विदाई ले ली। खाट के सिरहाने बैठकर शारदा धीरे-धीरे सविता के सिर पर और माथे पर हाथ सहला रही थी। क्रोध से कदम बढ़ाते हुए रमण बाबू ने प्रवेश करके कठोर स्वर में कहा—'अच्छा खिलवाड़ तुमने कर दिया। घर में कोई काम होने लगता है तो तुमको भी कोई बहाना करने की सूझ जाती है। यह तुम्हारी आदत है। सब चले गये, अब नहा लो। छल-कपट छोड़कर अब जरा उठ बैठो, एक अच्छी साड़ी कम-से-कम पहन लो, विमल बाबू भेंट करने के लिए आ रहे हैं।'

ऐसी उक्ति कोई अकल्पित नहीं थी, नई भी नहीं थी। वस्तुतः सविता ऐसी किसी बात की आशंका कर रही थी। थके कण्ठ से उन्होंने कहा—'किस मतलब से भेंट करेंगे ?'

'मतलब क्या ? क्यों, क्या वे भिखारी हैं कि खाना नहीं मिलता ? घर पर निमन्त्रण है, तिस पर घर की स्वामिनी का ही पता नहीं ! ठीक बात तो है।'

सविता ने कहा—'निमन्त्रण होते ही क्या घर की स्वामिनी से मिलाप करने की रीति है ?'

रमण बाबू ने व्यंग्य करके कहा—'रीति है क्या ? रीति नहीं है यह मैं जानता हूँ—स्त्री रहने से कोई वार्तालाप या जान-पहचान करना नहीं चाहता—लेकिन वे सब जानते हैं।'

शारदा के सामने सविता शर्म के मारे सहम गई। शारदा ने स्वयं भी वहाँ से भाग जाने की चेष्टा की, लेकिन उठ नहीं सकी। यह उत्तेजना बढ़कर पीछे आकाश तक न पहुँच जाय, यह भय सविता को सबसे अधिक था। इसीलिए उन्होंने नम्रभाव से ही कहा—'उनसे कह दो कि आज मिलन नहीं हो सकता।'

लेकिन भला ? हुआ उल्टा। इस कोमल कण्ठ की अस्वीकृति से रमण बाबू पागल से हो गये, चिल्ला उठे—भेंट अवश्य होगी। वह करोड़पति आदमी हैं यह क्या तुम नहीं जानती हो ? साल में मेरे कितने रुपये का माल लेता है इसकी सूचना रखती हो ? मैं कहता हूँ···।'

इतने में दरवाजे के बाहर जूते की आवाज सुनाई पड़ी और नौकर ने सामने आकर हाथ से संकेत कर दिया।

सविता माथे के कपड़े को ललाट तक खींचकर उठ बैठी। विमल ने कमरे में प्रवेश करके नमस्कार करके स्वयं ही एक कुर्सी खींचकर कहा—'सुनने में आया है कि आप अचानक बहुत बीमार पड़ गई हैं, लेकिन कल ही शायद मुझे कानपुर जाना पड़ेगा, शायद फिर लौट न सकूंगा, उधर से ही बम्बई होते हुए सीधे अपने कार्यस्थल के लिए रवाना हो जाना पड़ेगा। सोचा कि थोड़ी देर के लिए एक बार भेंट कर लूं। आपके आतिथ्य से आज मुझे बड़ा आनन्द मिला है।'

सविता ने धीरे-धीरे कहा—'यह तो मेरा सौभाग्य है।'

उस व्यक्ति की आयु चालीस वर्ष की रही होगी। बालों का पकना शुरू हो गया है, यत्नपूर्वक सावधान रहने के कारण शरीर स्वस्थ और सौंदर्य से परिपूर्ण है। उन्होंने कहा—'मुझे खबर मिली कि रमण बाबू आजकल प्रायः बीमार हो जाया करते हैं और आपकी भी तबियत ठीक नहीं रहती यह तो मैं अपनी आंखों से ही देख रहा हूं। आपका जो पुराना फोटो है उसके साथ मेल ढूंढ़ना कठिन हो रहा है—ऐसा कुछ दिखाई देता है।'

सविता सुनकर मन-ही-मन लज्जित हो गई, बोली—मेरा फोटो आपने देखा है ?'

'अवश्य देखा है ! आप लोगों का एक साथ लिया फोटो रमण बाबू ने मेरे पास भेजा था। उसी समय सोच रखा था कि फोटो जिनका है उनको एक बार आंखों से देखूंगा। वह साध आज मिट गई।' चलिए न एक बार हम लोगों के यहाँ सिंगापुर। कुछ दिनों की समुद्रयात्रा भी हो जायेगी। क्रूस स्ट्रीट में मेरा एक छोटा-सा घर है। उसकी ऊपरी मंजिल पर दिन-रात समुद्र की हवा बहती रहती है, सुबह और शाम सूर्योदय और सूर्यास्त दिखाई पड़ते

हैं। रमण बाबू जाने को राजी हो गये हैं, केवल आपकी स्वीकृति पाकर यदि आपको ले जा सकूं तो समझूंगा कि इस बार मेरा देश आना सफल हुआ।'

रमण बाबू खुशी के साथ बोल उठे—'आपको तो मैं वचन दे चुका हूं विमल बाबू, अगले हफ्ते में ही मैं रवाना हो सकूंगा, समुद्र की जलवायु की मुझे खास आवश्यकता है। शरीर का स्वास्थ्य—आप कहते क्या हैं! सबसे पहले वही आवश्यक है।

विमल बाबू ने कहा—'ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो जाने से तो हम लोग एक ही जहाज में यात्रा कर सकेंगे।' सविता को लक्ष्य करके मुस्कराते हुए बोले—'अनुमति मिल जाय तो मैं प्रबन्ध करने लगूं और अपने कार्यालय में भी एक तार भेज दूं। घर पर कहीं भी किसी प्रकार की कोई त्रुटि न रहे? बोलिए न?'

सविता ने सिर हिलाकर मृदु कण्ठ से कहा—'नहीं, इस समय कहीं जाने की सुविधा न होगी।'

यह सुनकर रमण बाबू फिर एक बार गरम हो उठे—'क्यों सुविधा न होगी, सुनूं तो? लिखना-पढ़ना कल परसों तक पूरा हो जायेगा। दरबान, नौकर घर में रह जायेंगे, किरायेदार रहेंगे ही फिर जाने में अड़चन क्या है? नहीं, यह नहीं होगा विमल बाबू, मैं साथ लेकर ही जाऊंगा। नहीं कर देने से ही क्या हो जायगा? मेरी तबियत ठीक नहीं है—मेरी देखभाल कौन करेगा? आप प्रसन्नता से तार भेज दीजिएगा।'

विमल बाबू ने फिर सविता को ही लक्ष्य करके पूछा—'बोलिए न, क्या एक तार भेज दूं?'

जब वह उत्तर देने लगीं तो दोनों की आंखें लड़ गईं। सविता ने लज्जा में पड़कर उसी क्षण अपनी दृष्टि नीचे करके कहा—'नहीं। मेरा जाना न हो सकेगा।'

रमण बाबू बहुत बिगड़कर बोले—'नहीं क्यों? मैं कहता हूं कि तुमको चलना ही पड़ेगा। मैं साथ लेकर ही जाऊंगा।'

विमल बाबू का चेहरा तमतमा उठा, बोले—'किस प्रकार ले जाइएगा रमण बाबू, बांधकर?'

'हाँ, आवश्यकता पड़ी तो वही करना होगा।'

'तो उस दशा में और किसी स्थान पर ले जाइए, मैं इस अन्याय का बोझ न ले सकूंगा।' उन्होंने कहा—'अच्छा तो अब मैं उठता हूँ, आप आराम कीजिए। अस्वस्थ शरीर पर शायद मैंने अत्याचार किया—तो भी, जाने के पहले मेरा अनुरोध ही रहा—मैं हर महीने आपके पास जवाबी तार भेजूंगा—इसी प्रार्थना को बताकर—देखूंगा कितनी बार नहीं कहकर उसका उत्तर दे सकेगी।'

इतना कहकर तनिक हँसकर बोले—'नमस्कार रमण बाबू, अब मैं जा रहा हूँ।'

वे बाहर चले गये। उनके पीछे-ही-पीछे रमण बाबू भी नीचे उतर आये। रमण बाबू का मित्र और अशिक्षित व्यवसायी समझकर इस मनुष्य के विषय में जैसी धारणा सविता के मन में हुई थी, चले जाने पर उसे ध्यान आया कि शायद यह धारणा सत्य नहीं है।

७

सरला ने कहा—'माँ, कुछ खाइएगा नहीं!'

'नहीं।'

'एक गिलास पानी और एक बीड़ा पान लाने को कह दूँ?'

'नहीं, आवश्यकता नहीं है।'

'बत्ती बुझाकर द्वार बन्द कर आऊँ?'

'शारदा, ऐसा ही करो। रात बहुत होती जा रही है।'

फिर भी, उठने को तैयार होकर भी उसे देर होती जा रही थी। रमण बाबू वापस आकर खड़े हो गये। लम्बी साँस लेकर बोले—'जाने दो जान बच गई। आज के लिए किसी प्रकार मान रक्षा हुई। भले आदमी अच्छे स्वभाव के हैं, इतनी बड़ी श्रेणी के आदमी होने पर भी अभिमान बिल्कुल नहीं है। तुम्हारे लिए तो बहुत चिन्ता है। एक सौ बार अनुरोध कर गया है, कल सवेरे ही समाचार भेज देना। कौन जाने हो सकता है कि स्वयं ही एक बड़े

डाक्टर को लेकर सवेरे हाजिर हो जायें तो कुछ भी कहा नहीं जा सकता—उनको तो हम लोगों के समान रुपये का मोह नहीं है—दस-बीस हजार रहें तो क्या और चले जायें तो क्या ? रथमर कम्पनी के डाइरेक्टर ही कहो या शेयर होल्डर ही कहो जो कुछ करता है वही मिस्टर घोषाल। मैंने तो तुमको बताया कि यह आदमी करोड़ रुपये का मालिक है। करोड़ रुपया ! जर्मनी और हॉलैण्ड के साथ बहुत बड़ा व्यवसाय है—साथ में दो-चार बार योंही यूरोप घूम आते हैं। जनरल मैनेजर शाप साहब हैं, उनको ही प्रायः तीन हजार मासिक मिलता है। बड़े आदमी हैं। जावा की चीनी के चालान में ही पिछले साल···।'

लाभ का रोमाञ्चकारी आँकड़ा फिर बताया न जा सका—रुकावट पड़ गई। सविता ने पूछा—'तुम फिर लौट आये—मकान नहीं गये ?'

किस प्रसंग में कौन बात आ गई ! प्रश्न से उसके आनन्द में वृद्धि नहीं हुई और वे यह समझ गये कि बहुत बड़े आदमी का विवरण सुनने में सविता ने बिन्दुमात्र भी मनोयोग नहीं दिया। तनिक ठिठक कर बोले—'मकान ? नहीं, आज नहीं जाऊँगा।'

'क्यों ?'

'नहीं···आज···।'

सविता ने कुछ देर उनकी ओर देखकर कहा—'शराब की गन्ध निकल रही है—तुम शराब पी कर आये हो ?'

'शराब ? मैं ? (संकेत से) केवल एक बूंद—समझती हो न···।'

'कहाँ पी ? इस घर में ?'

'बात सुनो। घर में नहीं तो क्या मदिरा की दूकान पर खड़े होकर ही पी आया हूँ ?'

'शराब लाने को किसने कहा ?'

'किसने कहा ? ऐसी बात भी मैंने कभी नहीं सुनी। पर दस-पाँच भले आदमियों को बुलाना पड़ता है तो थोड़ा सा लाकर रखे बिना क्या काम चलता है ? इसीलिए···।'

'सभी आदमियों ने पी है ?'

'अच्छी चीज पेश करने से कौन साला नहीं पियेगा सुनूं तो, तुमने तो अवाक् कर दिया ?'

'विमल बाबू ने पी है ?'

रमण बाबू ने फिर जरा इधर-उधर करके कहा—'नहीं, आज वह एक चाल खेल गया। नहीं तो उसकी कीर्ति कथा सुनना मेरे लिए शेष नहीं है सब मालूम है ?'

सविता ने कुछ देर चुप रहकर कहा—'जानोगे तो अवश्य ही। अच्छा, अब तुम जाओ। रात हो गई। उस कमरे में जाकर पड़ रहो।'

कहने का ढंग केवल कर्कश ही नहीं, रूढ़ भी था। वह शारदा के कानों को भी अपमानकर मालूम पड़ा। आज सन्ध्या के बाद से ही सविता के नीरस कण्ठ-स्वर का छिपा हुआ रूखापन रमण बाबू को खटक रहा था। इस समय इस बात से—वे एकाएक बारूद के गोले के समान फट पड़े। बोले—आज तुम्हें हुआ क्या है, बताओ तो ? दिमाग बहुत गरम देख रहा हूँ। इतना बढ़ना अच्छा नहीं है नई-बहू !

शारदा डरी कि शायद अब लज्जाजनक झगड़ा शुरू हो जायगा। लेकिन सविता चुपचाप आँखें मूंदे वैसे ही लेटी रही, एक शब्द भी उत्तर में नहीं कहा।

रमण बाबू कहते गये—वह जो मैंने कहा कि तुम मेरी स्त्री नहीं हो—इसी से तुम्हारे बदन में आग लग गई है। लेकिन यह कौन नहीं जानता ? शारदा नहीं जानती या इस बाड़ी के और सब लोग नहीं जानते ? एक झूठी बात कितने दिन दबी रहेगी ? इससे मैंने तुम्हारा क्या अपमान किया, सुनूं ?

सविता उठकर बैठ गई। उसकी आँखों की दृष्टि बर्छे की नोक के समान तीक्ष्ण और कठिन हो गई। बोली—इस बात को तुम्हें छोड़कर कोई भी मर्द, केवल मर्द होने के कारण ही जबान पर लाने में लज्जित होता; किन्तु तुमसे कहना वृथा है। तुम्हारी बात से मेरा अपमान हुआ है, यह मैंने एक बार भी नहीं कहा।

शारदा भय से घबरा उठी। बोली—क्या कर रही हो माँ, ठहरो।

रमण बाबू ने कहा—यह सच है कि मुंह से कुछ नहीं कहा; किन्तु मनमें तो यही सोचती हो ?

सविता ने उत्तर दिया—ना। मुंह से भी नहीं कहा और मनमें भी नहीं सोचा। तुम्हारी स्त्री हूं, इस परिचय से मेरी मर्यादा नहीं बढ़ती बाबू। उससे केवल चक्षुलज्जा बचती है, नहीं तो सचमुच की लज्जा से मेरा हृदय जलकर स्याह हो उठता है।

'क्यों? किसलिए—सुनूं?'

'सुनने से क्या लाभ होगा? तुम क्या समझोगे कि मैं जिनकी स्त्री हूं, उनके पैरों की धूल के समान भी तुम नहीं हो।'

शारदा फिर भय से व्याकुल हो उठी। 'इतनी रात को आप लोग यह क्या करते हैं? दोहाई है मां, चुप करिए।'

किन्तु किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। रमण बाबू ने चिल्लाकर कहा—सच? सच कहती हो?

सविता ने कहा—सच है कि नहीं, यह तुम स्वयं नहीं जानते? सब भूल गये? उस दिन उनके सिवा संसार में कोई था जो हम लोगों की रक्षा कर सकता? केवल हमारे हाड़-मांस को ही नहीं बचाया—मान इज्जत की भी रक्षा की। मनुष्य स्वयं कितना बड़ा होने पर इतनी बड़ी भिक्षा दे सकता है तुम सोच सकते हो? मैं उनकी स्त्री हूं। यह क्षति मैंने सह ली, इतनी-सी क्षति न सह सकूंगी?

रमण बाबू को इसका कोई उत्तर न सूझा। उनके मुंह में जो आया वही कह बैठे।—तो फिर तुम बुरा क्यों मानती हो?

सविता ने कहा—तुमने यह केवल आज ही नहीं कहा, अक्सर कहा करते हो। बात कड़वी है, इसी से सुनने पर एकाएक कानों को खटकती है, किन्तु हृदय उसी दम स्वस्तिकी सांस लकर कह उठता है कि मेरे लिए यही अच्छा है कि यह आदमी मेरा कोई नहीं है, इसके साथ मेरा कोई सच-मुच का सम्बन्ध नहीं है।

शारदा अवाक् होकर सविता के मुंह की ओर ताकती रही। किन्तु अशि-क्षित रमण बाबू के लिए सविता के इस कथन का गंभीर अर्थ समझना कठिन था। उन्होंने केवल इतना ही समझा कि यह कथन अत्यन्त रूढ़ और अपमान-कर है। इसी से दंभ के साथ प्रश्न किया—तो फिर उनके पास लौट न जाकर

मेरे ही पास किसलिए पड़ी रहती हो ?

सविता इसका कुछ उत्तर देने जा रही थी, किन्तु शारदा ने उसके मुंह पर हाथ रखकर कहा—गुस्से में आप भूल रही हैं कि किसके साथ झगड़ा कर रही हैं ?

सविता ने उसका हाथ हटा कर कहा—नहीं शारदा, अब मैं झगड़ा नहीं करूंगी। उनके मुंह में जो आये वह कहें, मैं चुप रहूंगी।

रमण बाबू ने कहा—अच्छा, कल मैं इसकी समुचित व्यवस्था करूंगा। इतना कहकर रमण बाबू कमरे से निकल आये और इसके दो-तीन मिनट बाद ही सदर रास्ते में उनकी मोटर के शब्द से मालूम पड़ा कि वह यह घर छोड़कर चले गये।

शारदा ने डरकर पूछा—समुचित व्यवस्था क्या करेंगे मां ?

'मैं नहीं जानती शारदा। यह बात मैं अनेक बार सुन चुकी हूं, लेकिन इसका अर्थ आज भी समझ नहीं पाई।'

'लेकिन बेकार यह कैसा अनर्थ छिड़ गया, बताइए तो ?'

सविता चुप रही। शारदा स्वयं भी क्षण भर चुप रहने के पश्चात् बोली—रात हुई, अब जाती हूं मां।

'जाओ बेटी।'

× × × ×

सवेरा हुआ ही था कि शारदा का दरवाजा किसी ने खटखटाया। उसने उठकर दरवाजा खोला। सविता ने प्रवेश करके कहा—राजू के आते ही मुझे सूचना देना, भूलना नहीं शारदा।

उसके मुंह की ओर देखकर शारदा शंकित हो उठी। बोली—नहीं मां, भूलूंगी क्यों, आते ही सूचित करूंगी।

सविता ने कहा—दरबान ने सूचना दी है कि रात को राजू डेरे पर नहीं लौटा। किन्तु वह चाहे जहां हो, आज तुमको ले जाने के लिए अवश्य ही आवेगा।

'यही तो कहा था।'

'आज ही तो आने को कहा था न ?'

'नहीं, यह तो नहीं कहा, केवल उस लड़की की बीमारी में सहायता करने को कहा था।'

'तुमने स्वीकार तो किया था ?'

'किया क्यों नहीं था ?'

'कोई आपत्ति तो नहीं की थी बेटी ?'

'नहीं माँ, कोई आपत्ति नहीं की।'

सविता ने कहा—तो अब मैं जाऊँ, तुम घर का काम-काज कर डालो। उसके आते ही मुझे मालूम हो जाना चाहिए शारदा। यह कहकर वह चली गई।

शारदा के घर का काम-काज साधारण-सा था। चटपट करके वह तैयार हो गई, जिसमें राखाल बुलाने आवे तो देर न हो। पिटारा खोलकर जो दो-एक कपड़े-धोती आदि अच्छे थे, उन्हें बाँध रखा—साथ ले जाना होगा। अविनाशबाबू की स्त्री से उसका अधिक मेल-जोल और मित्रता थी। उसको जता रखा था कि घर की चाबी वह उसके पास रख जायगी—जिससे संध्या समय वह दीपक जला दे। दूर की नाते की एक बहिन बहुत बीमार है, उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए वह जा रही है।

लगभग दस बजे के समय सविता ने फिर घर के भीतर आकर पूछा—राजू नहीं आया शारदा ?

'नहीं माँ।'

'तुम शायद नहीं जा सकोगी, ऐसा सन्देह तो उसे नहीं हुआ ?'

'होना तो नहीं चाहिए माँ। मैंने तो तनिक भी अनिच्छा नहीं दिखाई—तुरन्त राजी हो गई थी।'

'तो फिर क्यों नहीं आ रहा है ? सवेरे ही तो आने की बात थी।' थोड़ा सोचकर कहा—दरबान को भेज दूँ, फिर एक बार देख आवे कि वह डेरे पर लौटा है कि नहीं। इतना कहकर ही वह चली गई।

कल से शारदा बराबर सोच रही है कि यह बीमार लड़की कौन है। उसके कुतूहल की सीमा नहीं, तो भी इस अत्यन्त चिन्ता-ग्रस्त चित्त स्त्री से प्रश्न करके वह निःसंशय नहीं हो सकी। कल राखाल से पूछती तो शायद उत्तर मिल

जाता। किन्तु उस समय उसे इससे कुछ सरोकार न था, उसे इसका ध्यान भी नहीं आया।

इसी प्रकार सवेरा बीता, दोपहर बीती, तीसरा पहर बीतकर रात लौट आई; किन्तु राखाल नहीं आया और भी कुछ देर बाद उसके आने की आशा जब नहीं रही, तब सविता आकर शारदा के बिस्तर पर पड़ रही, एक शब्द भी मुंह से नहीं कहा। केवल आंखों से अविरल जल बहने लगा। शारदा ने उसे पोंछ देना चाहा, तो उसने उसका हाथ हटा दिया।

दासी ने आकर सूचना दी कि विमल बाबू देखने आये हैं।

सविता ने कहा—उनसे जाकर कह दे, बाबू घर में नहीं हैं।

दासी ने कहा—यह उन्हें मालूम है। कहा है कि वह आपसे मिलने आये हैं, बाबू से नहीं।

सविता की आंखों में खीज और क्रोध प्रकट हुआ किन्तु कुछ सोचकर, क्षण भर इधर-उधर करके वह उठ गई। रास्ते में दासी ने कहा—भीतर जाकर धोती बदल डालिए, यह कुछ मैली देख पड़ती है।

आज इस ओर सविता की दृष्टि नहीं थी, दासी के कहने से उसे होश आया, धोती सचमुच ही किसी से मिलने योग्य नहीं है।

दस-पन्द्रह मिनट के बाद जब बैठक में जाकर पहुंची तब कोई त्रुटि नहीं रह गई। हरे रंग की धीमी रोशनी में मुंह की शुष्कता भी ढंक गई।

विमल बाबू ने खड़े होकर नमस्कार किया। बोले—शायद आपको कष्ट दिया; लेकिन कल आपको बहुत अस्वस्थ देख गया था, इससे आज आये बिना नहीं रह सका।

सविता ने कहा—मैं अच्छी हूं। आपका कानपुर जाना नहीं हुआ?

'नहीं। यहां से जाकर सुना, मेरे बड़े चाचा बहुत बीमार हैं, इसीसे—'

'आपके सगे चाचा?'

'नहीं, ठीक सगे तो नहीं—पिताजी के चचेरे भाई, लेकिन—'

'एक ही घर में आपका सम्मिलित परिवार है?'

'ना, सो नहीं। पहले सब एकत्र थे—किन्तु—'

'यहां से जाते ही एकाएक बीमार होने की सूचना मिली?'

'ना, एकाएक तो नहीं। बीमार तो बहुत दिनों से हैं, मगर—'

'तो शायद कल भी न जा सकेंगे—तब तो बहुत हानि होगी ?'

विमल बाबू ने कहा—'हानि थोड़ी-बहुत हो सकती है, लेकिन मनुष्य क्या केवल रोजगार-धंधे के नफे-नुकसान का हिसाब लगाने में ही जीवन बिता देगा ? रमण बाबू स्वयं भी तो एक व्यवसायी आदमी हैं; किन्तु वह क्या व्यापार के अलावा कुछ नहीं करते ?'

सविता ने कहा—करते क्यों नहीं; लेकिन न करते, तो अच्छा था।

विमल बाबू ने हँसकर कहा—कल का क्रोध आज भी शान्त नहीं हुआ आपका। रमण बाबू आवेंगे कब ?

सविता ने कहा—मुझे मालूम नहीं। न आना ही सम्भव है।

'न आना ही सम्भव है ? कब गये, आज ?'

'आज नहीं, कल रात को आप लोगों के जाने के बाद ही चले गये थे।'

विमल बाबू ने कुछ देर चुप रहकर कहा—आशा है, अधिक अप्रसन्न होकर नहीं गये। कल वह कुछ उदास से थे। जान पड़ता है, इसीसे उस तरह अकारण जोर जबर्दस्ती की थी। आज निश्चय ही उन्हें अपनी गलती अनुभव हुई है। सविता से कोई उत्तर न पाकर वह कहने लगे—कल मुझसे भी कुछ कम अपराध नहीं हुआ। सिंगापुर जाना अस्वीकार करने के बाद भी उसके लिए मेरा बार-बार अनुरोध करना अनुचित हुआ। नहीं तो यह सब कुछ न होता। उसी के लिए क्षमा माँगने आज आया हूँ। कल तो आप बहुत अस्वस्थ थीं; आज सचमुच अच्छी हैं या एक जने पर अप्रसन्न होकर और एक को दण्ड दे रही हैं—सच-सच बताइए तो ?

उत्तर देते समय दोनों की आँखें चार हो गईं। सविता ने आँखें नीची करके कहा—मैं अच्छी ही हूँ। लेकिन न होऊँ तो आप उसका क्या उपाय करेंगे विमल बाबू ?

विमल बाबू ने कहा—उपाय करना तो कठिन नहीं है, कठिन है अनुमति पाना। वही पाना चाहता हूँ।

'ना, वह आप नहीं पावेंगे।'

'न-सही। कम-से-कम रमण बाबू को फोन करके जताने की आज्ञा दीजिए।

आप स्वयं तो जतावेंगी नहीं।'

'ना; जताऊँगी नहीं। लेकिन आप ही क्यों जताने के लिए इतने उत्सुक हैं—बताइए?'

विमल बाबू कई सेकिंड तक स्तब्ध होकर बैठे रहे। इसके बाद धीरे-धीरे बोले—आज आप कल की अपेक्षा कहीं ज्यादा अस्वस्थ हैं, यह मैंने घर के भीतर पैर रखते ही आँखों से देख लिया था। चेष्टा करके भी आप छिपा नहीं पाईं। इससे व्याकुल हूँ।

उत्तर देने में सविता को क्षण-भर की देरी हुई। उसके बाद उसने कहा—अपनी आँखों के ऊपर इतना भरोसा न करना चाहिए विमल बाबू, इससे भारी धोखा होता है।

विमल बाबू ने कहा—धोखा नहीं होता, यह मैं नहीं कहता; लेकिन क्या दूसरे की आँखों से भूल नहीं होती? संसार में जब धोखा खाना या ठगा जाना ही है, तब अपनी आँखों के कारण ही ठगाया जाना अच्छा है। इससे फिर भी एक सान्त्वना मिलती है।

सविता के मन की दशा—हँसने जैसी नहीं थी, हँसी की बात भी न थी, अनिश्चित अज्ञात भय से जी ठिकाने नहीं था, तो भी बहुत बड़ा आश्चर्य यह कि उसके मुंह में हँसी दिखाई दी। यह हँसी मनुष्य की आँखों को साधारणतः नहीं दीखती—जब देख पड़ती है तब खून में एक नशा पैदा हो जाता है। विमल बाबू बात को भूलकर एकटक ताकने लगे—इस हँसी की भाषा ही अलग है—भरे हुए मदिरा के प्याले ने शराब की प्यास से पीड़ित शराबी की सहजता को जैसे दम-भर में ही विकृत कर दिया और उस चितवन का गूढ़ अर्थ नारी की दृष्टि से छिपा नहीं रहा। सविता के जरा देर पहले के सन्देह और संभावना ने अब संशयहीन विश्वास के साथ सारी देह पर जैसे लज्जा की स्याही ढाल दी। उसे याद आया, यह आदमी जानता है कि यह स्त्री नहीं है, वेश्या है। इसीलिए अपमान से उसका हृदय चाहे जितना जल उठा हो, कड़ी आवाज से प्रतिवाद करके सामने ही मर्यादा-हानि का अभिनय करने को जी न चाहा। विगत रात्रि की घटना याद आ गई। उस समय अपमान के उत्तर में उसने भी कम अपमान नहीं किया था। किन्तु यह आदमी रमण बाबू नहीं

हैं—दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। यह शायद अपमान के बदले में एक शब्द भी नहीं कहेगा, हो सकता है, केवल अवज्ञा की दबी हँसी होठों में लिये, विनम्र नमस्कार के साथ, क्षमा माँगकर चुपचाप चला जायगा।

दो-तीन मिनट चुपचाप बीते। विमल बाबू ने कहा—हाँ, आपने मेरी बात का उत्तर तो नहीं दिया ?

सविता ने सिर उठाकर कहा—आप क्या पूछ रहे थे, मुझे याद नहीं।

विमल बाबू ने कहा—आज आप ऐसी अनमनी क्यों हैं ?

किन्तु इसका भी उत्तर न मिलने पर बोले—मैं कह रहा था कि आपकी तबियत सचमुच ही ठीक नहीं है। क्या हुआ है, मैं नहीं जान सकता ?

'ना।'

'मुझे न बताइए, डाक्टर से तो किसी रुकावट के बिना कह सकती हैं।'

'ना, यह भी नहीं कर सकती।'

'लेकिन यह आपका बड़ा अन्याय है। कारण, जो दोषी है, वह दण्ड नहीं पा रहा है—दण्ड पा रहा है वह आदमी जो बिल्कुल ही निर्दोष है।'

इसका भी उत्तर न मिला। विमल बाबू कहने लगे—कल जो देख गया हूँ, उससे कहीं अधिक आज आप अस्वस्थ हैं! शायद आज भी उत्तर देंगी कि मुझसे देखने में भूल हुई है, शायद कहेंगी अपनी आँखों पर अविश्वास करने को, किन्तु एक बात आज मैं आपसे कहूँगा। ग्रह-चक्र ने मुझे बचपन से बहुत घुमाया है, इन दोनों आँखों से मुझे संसार का बहुत कुछ देखने को मिला है। पर इन आँखों में विशेष भूल नहीं हुई। होती तो बीच नदी में ही मेरे भाग्य की नौका डूब जाती। किनारे आकर न लगती। मेरी वे ही दोनों आँखें आज शपथ करके बतला रही हैं कि आज आप स्वस्थ नहीं हैं, तो भी मैं कुछ न कर पाऊँगा—मुंह बन्द किये चला जाऊँगा, यह सहन करना तो बहुत कठिन है।

फिर दोनों की आँखें मिल गई। किन्तु अब की सविता ने दृष्टि नीची नहीं की, केवल चुप रह कर ताकती रही। सामने विमल बाबू भी वैसे ही चुप बैठे थे। उनके लालसा से चमक रहे नेत्रों में वेग था, जो विरोध मानना नहीं चाहता—डाक्टर को बुलाने के लिए दौड़ना चाहता है। और वहाँ ? धन नहीं आदमी नहीं, किसी अज्ञात घर के कोने में उनकी सन्तान रोगशय्या पर पड़ी

है। निरुपाय माता का हृदय गहरे अन्तस्तल में हाहाकार कर उठा। केवल वेदना से नहीं; लज्जा से और दुस्सह पश्चाताप से। अब वह किसी तरह रोककर जल्दी से उठ पड़ी। बोली—अब और मुझे कष्ट न दीजिएगा विमल बाबू! मुझे कुछ न चाहिए, मैं अच्छी हूँ। इतना कहकर ही नमस्कार करके चली गई। विमल बाबू को विस्मय अवश्य हुआ, किन्तु क्रोध नहीं आया। समझ गये कि यह कठिन मान-अभिमान का मामला है—ठीक होने में दो-चार दिन लगेंगे।

× × ×

दूसरे दिन दस बजे बहुत दूर पर गाड़ी छोड़कर दरवान के पीछे-पीछे सविता १७ नंबर के घर के द्वार पर आ खड़ी हुई। फटिक की माँ बाहर जा रही थी, ठिठक कर खड़ी हो गई। पूछा—आप कौन हैं?

'तुम कौन हो माँ?'

'मैं फटिक की माँ हूँ—इस घर की बहुत दिनों की टहलनी।

'कहाँ जा रही हो फटिक की माँ?'

दासी ने हाथ की कटोरी दिखाकर कहा···दूकान से तेल लेने। मालिक का पैर लग जाने से अचानक सब तेल गिर गया, इससे फिर लेने जा रही हूँ।

'जान पड़ता है, रसोइया नहीं आया?'

'नहीं माँ जी, अभी तक नहीं आया। सुनती हूँ, कल आवेगा। आज भी मालिक ही खाना बना रहे हैं।'

'क्या राजू घर में नहीं है?'

'उन्हें जानती हैं! नहीं माँ जी, वह घर में नहीं हैं—लड़के पढ़ाने गये हैं। अब आते ही होंगे।'

'और रेणु कैसी है फटिक की माँ!'

'वैसी ही है। क्या जाने क्यों ज्वर नहीं छोड़ता माँ जी। सबको बड़ी यही चिन्ता है।'

'देखता कौन है?'

'हमारे विनोद डाक्टर, वे कभी आवेंगे।—आप कौन हैं माँ जी?'

'मैं इन लोगों के गाँव की बहू हूँ फटिक की माँ, बहुत दूर के नाते की।

कलकत्ते में रहती हूँ। सुना कि रेणु बीमार है। उसी की सुधि लेने आई हूँ। बाबू जी मुझे जानते हैं।'

'उन्हें सूचना दे आऊं क्या ?'

'नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है फटिक की माँ। मैं आप ही ऊपर जा रही हूँ। तुम तेल लेकर आओ।'

दरवान खड़ा था। उससे कहा—तुम मोड़ पर जाकर खड़े रहो महादेव, जाने का समय होने पर बुला भेजूंगी। गाड़ी उसी स्थान पर खड़ी रहे।

'बहुत अच्छा माँ जी,' कह कर महादेव चला गया।

सविता ऊपर चढ़कर बरामदे में जिस ओर ब्रज बाबू रसोई बनाने में लगे हुए थे, वहाँ जाकर खड़ी हो गई। पैरों की आहट ब्रज बाबू के कानों में पहुँची, पर घूम कर देखने का मौका नहीं मिला। बोले, तेल ले आई ? पानी खौलने लगा है फटिक की माँ, आलू और पर्वल एक साथ चढ़ा दूं या पर्वल पहले पका लूं ?

सविता ने कहा—एक साथ ही चढ़ा दो मंझले बाबू, कुछ-न-कुछ तैयार हो ही जायगा।

ब्रज बाबू ने घूम कर देखा। बोले, कौन—नई बहू ? कब आई ? बैठो।—ना ना, जमीनपर नहीं, बड़ी धूल है। मैं आसन देता हूँ। कहकर हाथ का बर्तन चटपट उतार ही रहे थे कि सविता ने हाथ बढ़ाकर उसमें बाधा दी। करते क्या हो ? तुम अपने हाथ से उठा कर आसन दोगे, तो मैं कैसे बैठूंगी ?

'यह ठीक है। लेकिन अब कुछ दोष नहीं है। उस घर से एक आसन ला न दूं ?'

'ना ?'

सविता उसी जगह जमीन पर बैठ कर बोली—दोष तब भी था, अब भी है और मरने के बाद भी रहेगा मंझले बाबू ! लेकिन वह बात आज रहने दो। रसोई बनाने वाला क्या मिल नहीं रहा है ?

'मिलते तो बहुत हैं नई-बहू, लेकिन गले में एक जनेऊ रहने से ही तो उनके हाथ का नहीं खाया जा सकता। राखाल कल एक मनुष्य को पकड़ लाया था, लेकिन विश्वास नहीं कर सका। कल फिर किसी और को पकड़

लाने ने लिए कह गया है।'

'लेकिन वह आदमी भी तुम्हारे तर्क के सामने टिक न सकेगा मंझले बाबू !

ब्रज बाबू हँसे। बोले—अचरज नहीं है। अन्ततः इसी से डर रहा हूँ। लेकिन उपाय क्या है ?

सविता ने कहा—मैं यदि किसी को इस काम के लिए पकड़ कर ले आऊँ तो उसे रख लोगे मंझले बाबू ?

ब्रज बाबू ने कहा—अवश्य रख लूंगा।

'तर्क नहीं करोगे ?'

ब्रज बाबू फिर हँसे। बोले—नहीं जी नहीं, नहीं करूंगा, इतना जानता हूँ कि तुम्हारी तर्क पास होकर ही वह यहां आवेगा। और वह और भी कठिन है। खैर वह चाहे जा करे, तुम बूढ़े ब्राह्मण की जाति नष्ट न करोगी, इसमें संदेह नहीं है।

'मैं क्या धोखा नहीं दे सकती ?'

'ना, नहीं दे सकतीं। आदमी को ठगना या धोखा देना तुम्हारा स्वभाव नहीं है।'

सविता ने दोनों आँखों में आंसू भर आने से चटपट मुंह फेर लिया—पीछे कहीं आंसू गिर न पड़ें और ब्रज बाबू उन्हें देख न लें।

राखाल आ गया : उसके दोनों हाथों में एक-एक पोटली थी। एक में तरकारी थी और दूसरी में साबूदाना, बार्ली, मिसरी, फल-मूल आदि रोगी के लिए। नई-माँ को देख कर पहले उसे आश्चर्य हुआ, इसके बाद हाथ का बोझ रख कर पैरों की धूल माथे से लगा कर उसने प्रणाम किया। ब्रज बाबू से कहा—आज बहुत देर दो गई काका बाबू, आप ठाकुर जी की पूजा करने जाइए। पूजा का उद्योग-आयोजन कर लीजिए। मैं नहा कर बाकी रसोई बनाये डालता हूं। इतना कहकर उसने क्षणभर भोजन-सामग्री जो बन रही थी उसकी ओर नजर डाल घर कहा—कड़ाही में वह क्या पक रहा है ?'

ब्रज बाबू ने कहा—रसेदार आलू-परवल।

'और ?',

'और ? और भात बनेगा—और क्या है राजू ?'

राखाल ने कहा—इतने सब लोग क्या सिर्फ इसीसे खा सकते हैं काका बाबू ? पानी कहाँ है, सिल-लोढ़ा मसाला कहाँ है, कुछ भी तो दिखाई नहीं पड़ता। बरामदे में झाड़ू तक नहीं लगी—धूल जमा हो रही है। इतनी देर तक आप लोग कर क्या रहे थे ? फटिक की माँ कहीं गई ?

व्रज बाबू ने अप्रतिभ होकर कहा—अचानक पैर लगने से तेल गिर गया था न—वह दूकान से तेल लेने गई है—आती ही होगी।

'और मधुआ ?'

'मधुआ पेट में दर्द के मारे सवेरे से ही पड़ा है, उठ तक नहीं सका। रोगी का काम, घर का काम, अकेली फटिक की माँ—'

'बहुत अच्छा है' कहकर राखाल ने मुंह फुला लिया। इतने में उसकी दृष्टि कड़ाही-भर मट्ठे के ऊपर पड़ी। उसने पूछा—इतना मट्ठा किसने खरीद लिया।

व्रज बाबू ने कहा—यह मट्ठा नहीं, फटे दूध का पानी है। अच्छी तरह फटा क्यों नहीं, रेणु ने तो पिया ही नहीं।

सुनकर राखाल जल उठा। 'पिया नहीं सो बुद्धिमानी का काम किया।'

सारा भार उसके ऊपर है। रात को जागकर, धन की चिन्ता करके, दौड़-धूप परिश्रम करके राखाल बहुत ही क्लान्त था, स्वभाव रूखा पड़ गया था। क्रोध में आकर बोला—आपका काम ऐसा ही होता है। आपसे यह भी नहीं हो सकता कि इतनी-सी तैयारी करके रोगी को खिला सकें।

सविता के सामने अपने अनाड़ीपन के लिए तिरस्कृत होकर व्रज बाबू ऐसे कुण्ठित हो उठे कि मुंह देखकर दया आवे। कोई विवरण उनकी जबान से न निकला। किन्तु यह सब देखने की राखाल को फुर्सत नहीं। उसने कहा—आप ठाकुरघर में जाइए ; जो करना है, मैं ही करता हूँ।

व्रज बाबू लज्जित मुख से उठ खड़े हुए। ठाकुरघर का कोई काम—अभी तक नहीं हुआ था—सब उन्हीं को करना होगा। व्रज बाबू एक बार स्नान करने के लिए नीचे जा रहे थे, सविता सामने आकर खड़ी हो गई। बोली—आज लेकिन पूजा-आह्निक सब जरा जल्दी-जल्दी कर लेना होगा मँझले

बाबू। देर करने से काम न चलेगा।

'क्यों ?'

सविता ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। मुंह घुमाकर राखाल से कहा, अपने काका बाबू के लिए पहले थोड़ी-सी मिसरी तो भिगो दो राजू। कल वह एकादशी का व्रत रहे हैं और आज अभी तक जल का स्पर्श नहीं किया।

राखाल और व्रज बाबू, दोनों ने ही विस्मय से उसके मुंह की ओर ताका। व्रज बाबू ने कहा—यह बात भी अभी तक तुम्हें याद है नई बहू ?

सविता ने कहा, आश्चर्य ही तो है। किन्तु तुम देर न लगा सकोगे—यह मैं कहे देती हूं। देर लगाओगे तो गोविन्द जी के दरवाजे पर जाकर ऐसा हंगामा शुरू कर दूंगी कि ठाकुरजी की पूजा के मन्त्र तक भी तुम भूल जाओगे। जाओ, शान्त होकर पूजन-भजन करो। अब कोई चिन्ता तुम्हें न करनी होगी।

फटिक की मां तेल लेकर आ गयी। राखाल ने स्टोव जलाकर बार्ली चढ़ा दी। पूछा—और दूध नहीं है फटिक की मां ?

'नहीं है बाबू, मालिक ने सब नष्ट कर डाला।'

'तो अब क्या उपाय होगा ? रेणु क्या पियेगी ?'

अब की नई-मां जरा हंसी। बोली—दूध नहीं है भैया तो उसमें डरने की क्या बात है ? इस वेला बार्ली से काम चल जायगा। लेकिन देखो, तुम स्वयं भी मालिक की तरह बार्ली को भी नष्ट न कर डालना।

'नहीं मां, मैं इतना लापरवाह नहीं हूं। मेरे हाथ से कुछ नष्ट नहीं होता।'

सुनकर नई मां फिर जरा हंसी, लेकिन कुछ कहा नहीं। जरा देर बाद वह वहां से उठकर नीचे उतरी। आंगन में एक किनारे पानी का नल है। पानी के शब्द से ही पता चल गया, खोजना नहीं पड़ा। नल की कोठरी के किवाड़े भिड़े हुए थे, ठेलते ही खुल गये। भीतर व्रज बाबू स्नान कर रहे थे। वह हड़बड़ा उठे। सविता ने भीतर घुसकर दरवाजा बन्द कर लिया। फिर बोली—मंझले बाबू, तुमसे कुछ बात करनी है।

'अच्छी बात है, अच्छी बात है, चलो बाहर चलें।'

'ना, बाहर लोग देख सकते हैं। यहाँ तुम्हारे आगे मुझे लज्जा नहीं है।'

व्रज बाबू सिटपिटा कर उठ खड़े हुए। बोले—क्या बात है नई-बहू ?

सविता ने कहा—मैं इस घर से यदि न जाऊं तो आप मेरा क्या कर सकते हो ?

व्रज बाबू उसके मुंह की ओर देख हतबुद्धि से होकर बोले—इसका मतलब ?

सविता ने कहा—यदि न जाऊं तो तुम्हारे सामने मेरी देह में कोई हाथ न लगा सकेगा। पुलिस को बुलाकर तुम मुझे गिरफ्तार करा न सकोगे। किसी दूसरे के आगे शिकायत करना भी असम्भव है। न जाने पर मेरा क्या कर सकते हो ?

व्रज बाबू ने भय से कठेठी हँसी हँसकर कहा—तुम भी कैसा ठट्ठा कर रही हो नई बहू, जिसका सिर-पैर नहीं। लो हटो, दरवाजा खोलो—देर हो रही है।

सविता ने उत्तर दिया—मैं ठट्ठा नहीं करती मँझले बाबू। मैं सत्य ही कह रही हूं। जब तक उत्तर न दोगे, किसी प्रकार दरवाजा न खोलूंगी।

व्रज बाबू और अधिक डर गये। बोले—ठट्ठा नहीं तो यह तुम्हारा पागलपन है। पागलपन का क्या कोई उत्तर है ?

'उत्तर नहीं है तो रहो इसी स्थान पर पागल के साथ एक जगह बन्द। दरवाजा नहीं खोलूंगी।'

'लोग क्या कहेंगे ?'

'उनका जो जी चाहे, कहें।'

व्रज बाबू ने कहा—अच्छी आफत है ! दुनिया में कहीं कभी किसी ने जबरदस्ती रहने की बात सुनी है ? तब तो कानून विचार-आचार नहीं रहने का। संसार में जो जी चाहे वही वह कर सकता है।

सविता ने कहा—कर तो सकता ही है। तुम क्या करोगे, बताओ ?

'यहाँ रहोगी, अपने घर भी न जाओगी ?'

सविता ने कहा—ना। मेरा अपना घर यही है, जहाँ स्वामी है, संतान है। इतने दिन पराये घर में थी, अब वहाँ नहीं जाऊँगी।

'यहाँ रहोगी कहाँ ?'

'नीचे इतनी कोठरियाँ हैं, उन्हीं में से एक में रहूँगी। लोगों को दासी कहकर मेरा परिचय देना—तुमको झूठ भी न कहना होगा।

'तुम पागल हो गयी हो नई-बहू ? यह कहीं कर सकता हूँ ?'

'यह न कर सकोगे ; किन्तु यहाँ से निकलना इससे कहीं अधिक कठिन काम है। वह कैसे कर सकोगे ? मैं किसी प्रकार भी नहीं जाऊँगी मंझले बाबू, यह मैंने निश्चय से कह दिया।'

'पागल हो ! पागल !'

'पागल काहे से हूँ ? जोर-जबरदस्ती के कारण ? तुम्हारे ऊपर जोर-जबरदस्ती नहीं करूँगी तो और किसके ऊपर करूँगी ? और जोर अजमाना ही यदि करना चाहो तो मुझसे पार नहीं पाओगे।'

'पार क्यों न पाऊँगा ?'

'कैसे पाओगे ? तुम्हारे तो अब रुपया-पैसा नहीं है—गरीब हो गये हो—मामला-मुकदमा काहे से चलाओगे ?'

ब्रज बाबू हंस पड़े। सविता घुटने टेककर उनके दोनों पैरों के ऊपर सिर रखकर चुप हो रही। आज तीन दिन हुए, वह सभी विषयों में उदासीन, भ्रान्त चित्त, शून्य मार्ग में हर घड़ी पागल के समान चक्कर मारती फिर रही है। अपनी ओर ध्यान देने का घड़ी-भर भी उसे समय नहीं मिला। उसके असंयत रूखे केशों की राशि वर्षा के दिगन्त तक फैले हुए मेघ की तरह स्वामी के पैरों को ढककर चारों ओर भीगी मिट्टी के ऊपर पल-भर में फैल गई। झुककर उसी ओर देखकर ब्रज बाबू सहसा चंचल हो उठे। किन्तु उसी दम अपने को सम्भालकर बोले—तुम्हें अपनी बेटी के लिए ही तो चिन्ता है न नई-बहू ? अच्छा देखूँ यदि—

सविता ने वक्तव्य पूरा नहीं करने दिया—सिर उठाकर उनकी ओर देखा। आँखों में आँसू भरे हुए थे। कहा—नहीं मंझले बाबू, लड़की के लिए अब मैं चिन्ता नहीं करती। उसे देखने को आदमी हैं। लेकिन तुम ? यह भार मेरे सिर पर डालकर एक दिन मुझे इस घर में लाये थे—

सहसा रुकावट पड़ गई। उनकी बात भी पूरी नहीं होने पाई। बाहर से

पुकार आई—राखाल बाबू !

राखाल ने ऊपर से उत्तर दिया—आइए डाक्टर साहब।

सविता उठकर खड़ी हो गई, दरवाजा खोलकर एक ओर हटकर खड़ी हो गई। व्रज बाबू बाहर निकल आये।

८

व्रज बाबू ठाकुर जी की कोठरी में थे और बाहर खुले द्वार के पास बैठ कर सविता अपलक नेत्रों से देखती हुई पति के कामों को भली-भाँति देख रही थी। किसी दिन इन ठाकुर जी का सारा दायित्व उसका अपना था, उसके स्वयं न करने से पति को पसन्द नहीं आता था। उस समय अवकाश के अभाव से और बहुत से सांसारिक कामों की उन्हें उपेक्षा करनी पड़ती थी। इस कारण फुफुआ सास तरह-तरह के बहानों से उनकी गलतियाँ पकड़कर अपने गुप्त द्वेष का बदला लेने का समय खोजती रहती थीं, आश्रित ननदें टेढ़ी बातों से अपने मन का क्षोभ मिटाती थीं। कहती थीं—'हम लोग क्या ब्राह्मण के घर की लड़कियाँ नहीं हैं? देवी-देवता का काम-काज क्या हम नहीं जानतीं? पूजा-पाठ अर्चना, देवी-देवता पर क्या नई बहू के घर का एकाधिकार है कि केवल वही सीख कर आई है?'

इन सब बातों का उत्तर किसी दिन सविता नहीं देती थी, कभी बाध्य होकर इस कोठरी का काम यदि दूसरे को देना पड़ता था तो सारा दिन उसका मन न मालूम कैसा होने लगता था। चुपके-चुपके ठाकुर जी से क्षमा-याचना करके कहती थी—'गोविन्दजी, जानती हूँ, ठीक सेवा नहीं हो रही है, लेकिन उपाय नहीं है।'

उन दिनों स्वच्छता, पवित्रता और अनुष्ठान पर क्या उनकी तीक्ष्ण दृष्टि थी? और आज? वही गोपालमूर्ति पहले की सी भाँति प्रशान्त मुख से आज भी देख रही है, अभिमान का कोई भी चिह्न उन दोनों आँखों में नहीं है।

इस परिवार में जो इतना बड़ा प्रलय हो चला, तोड़ने-जोड़ने में इस घर में युगान्तर हो गया इतना बड़ा परिवर्तन क्या ठाकुरजी भी नहीं जान सके

थे। बिलकुल ही विकार-रहित उदासीन ? उनके अभाव का चिन्ह क्या कहीं भी नहीं पड़ा ? उनकी इतने दिनों की इतनी सेवा सूखी जल रेखा की तरह चिन्ह-रहित हो गई !

शादी के बाद ही उन्होंने गुरुमन्त्र की दीक्षा ली, परिजनों ने आपत्ति करके कहा था—'इतनी छोटी अवस्था में यह होना उचित नहीं है, क्योंकि अवहेलना से अपराध का स्पर्श हो सकता है। ब्रज बाबू ने इस पर कान नहीं दिया। उन्होंने कहा था—अवस्था में छोटी होने पर भी वह घर की गृहिणी है, मेरे गोविन्दजी का भार लेगी, इसीलिए उसको घर में लाना पड़ा है, नहीं तो कोई और स्वार्थ ही नहीं था। वह इच्छा पूरी नहीं हुई है, इष्टमन्त्र भी वे भूल नहीं गई हैं, तो भी सब मिट गया है, उसी गोविन्द जी के कमरे में प्रवेश करने का अधिकार भी उसको नहीं है, दूर बाहर बैठना पड़ा है।'

डाक्टर को विदा करके राखाल हंसते हुए चेहरे से उछलते-उछलते आ पहुँचा, बोला—'माता के आशीर्वाद से बढ़कर क्या कोई दवा है नई-माँ ? घर पर आई देखकर ही जान गया हूँ कि भय नहीं है, रेणुका अच्छी हो रही है।'

सविता देखने लगीं, ब्रज बाबू द्वार के पास आ खड़े हुए हैं। राखाल ने कहा—'ज्वर नहीं है, विनोद बाबू स्वयं ही बहुत खुश हैं, कह गये हैं, उस समय यदि ज्वर हो जाय तो कल फिर ज्वर नहीं होगा। अब भय की बात नहीं है ! दो दिनों में ही पूरे तौर से रोग-मुक्त हो जायगी। नई-माँ यह केवल आपके आशीर्वाद का ही फल है, नहीं तो ऐसा न होता। आज रात को निश्चिन्त होकर जरा सोने को मिलेगा, काकाजी, जान बच गई।'

यह सूचना सचमुच ही कल्पनातीत है। रेणुका का रोग मामूली नहीं है, क्रमशः दशा बिगड़ने की ओर जा रही है, यही था आतङ्क मरण-जीवन के कठिन मार्ग में बहुत दिनों तक अनिश्चित संग्राम करते हुए चलने के लिए ही सभी जब तैयार हो रहे थे। तभी आ गया यह आशातीत शुभ-समाचार। सविता गले में आंचल डालकर धरती पर बड़ी देर तक माथा रखकर प्रणाम करके उठ बैठीं, नेत्र पोंछ कर बोलीं—राजू, तुम चिरंजीवी हो बेटा !'

राखाल की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है, सिर पर से भारी बोझ उतर

गया है, बोला—'माँ, पुराने समय में राजा-रानी गले का हार खोलकर देते थे।'

सविता सुनकर हँसने लगीं, बोलीं—'वह तो तुम्हारे गले में शोभा नहीं देगा बेटा, यदि जीवित रहूँगी तो दुलहिन के आने पर उसके ही गले में डाल दूंगी।'

राखाल ने कहा—'इस जीवन में वह गला तो ढूंढ़ने पर मिलेगा नहीं माँ। बीच ही में मैं वंचित हो गया। जानती तो हैं, मेरे भाग्य में सुख का अन्न धूलि में पड़कर भोग में नहीं आने पाता।'

सविता समझ गईं, वह उस दिन जो उनके घर से निमन्त्रण मिला था उसी का जिक्र कर रहा है। राखाल कहने लगा—'रेणुका को ठीक हो जाने दो, हार भले ही न मिले, मुंह मीठा करने का दावा मैं छोड़ूँगा नहीं, लेकिन वह भी है दूसरे दिन की बात, आज चलिए एक बार रसोईघर की ओर। इधर कई दिन सिर्फ भात खाकर हम लोगों के दिन बीते हैं। किसी ने इसकी चिन्ता नहीं की; आज इससे काम न चलेगा। अच्छी प्रकार खाना चाहिए। आइए, इसका प्रबन्ध कर दीजिए।'

'चलो न बेटा!' यह कहकर सविता उठ पड़ीं। वहाँ दूर बैठकर राखाल से उन्होंने सब कुछ ही करा डाला और ठीक समय पर अच्छी तरह ही आज खाना-पीना हो गया। सभी जानते थे कि सविता ने अभी तक कुछ भी नहीं खाया है। लेकिन खाने का प्रस्ताव मुंह से निकालने का साहस किसी को नहीं हुआ। केवल फटिक की माँ नई आगन्तुक होने से और जानकारी न रहने के कारण यह बात एक बार कहना चाहती थी लेकिन राखाल ने आँख के संकेत से मना कर दिया।

सभी के मुख पर आज एक प्रकार के उद्वेग की हँसी-खुशी का भाव है मानो एकाएक किसी जादू-मन्त्र से इस घर पर से भूत का उपद्रव हट गया है। रेणुका को ज्वर नहीं है, वह निश्चिन्त सो रही है। धरती पर एक चटाई बिछाकर थके राखाल ने नेत्र मूंद लिये हैं, मधु की आहट नहीं है, शायद उसके पेट का दर्द बन्द हो गया है, नीचे से खन्-खन् झन्-झन् की आवाज आ रही है। शायद फटिक की माँ जूठे बर्तन आज दिन रहते, सवेरे-सवेरे मांज रही है।

सविता आकर मालिक के कमरे का द्वार ठेलकर चौखट के पास बैठ गई—'अरे, जाग रहे हो ?'

व्रज बाबू जाग ही रहे थे, उठकर बिछौने पर बैठ गये।

सविता ने कहा—'क्यों, मेरी बात का उत्तर नहीं दिया ?'

व्रज बाबू ने कहा—'उस समय तुमको, राखाल बुला ले गया, उत्तर जान लेने का समय मुझे मिला नहीं।'

'किससे जान लोगे—मुझसे ?'

व्रज बाबू ने कहा—'अचरज में क्यों पड़ती हो नई-बहू, बहुत दिनों से यही व्यवस्था तो होती आ रही है। उस दिन तो राखाल के कमरे में बहुत दिनों की स्थगित समस्या का समाधान करा लिया था तुमसे। पता लगाने से जान लोगी कि उसमें से एक में भी किसी प्रकार की कोई भूल नहीं हुई है।'

सविता को मुंह लटकाये बैठी देखकर वे कहने लगे—प्रश्न चाहे जिस ओर से ही क्यों न आया हो उत्तर देती रही हो तुम ही, मैं नहीं। उसके बाद अचानक एक दिन मेरी लक्ष्मी-सरस्वती, दोनों को ही तुमने गायब कर दिया, मेरी बुद्धि की थाली खो गई, तब से उत्तर देने का भार पड़ गया मेरे अपने ही ऊपर। देता भी आया हूं, लेकिन उसकी दुर्गति क्या है यह तो तुम अपने ही नेत्रों से देख रही हो नई-बहू।'

सविता ने मुंह उठाकर कहा—'लेकिन यह तो मेरा अपना प्रश्न है मंझले मालिक।'

व्रज बाबू ने कहा—'लेकिन यह प्रश्न तो आसान नहीं है। इसमें मौजूद है घर-गृहस्थी, समाज, परिवार, इसमें है सामाजिक रीति-नीति, है लौकिक पारलौकिक धर्मसंस्कार, है तुम्हारी लड़की का कल्याण-अकल्याण, उसकी मान-मर्यादा, उसके जीवन का सुख-दुःख, इतनी बड़ी भयंकर जिज्ञासा का उत्तर तुम्हारे सिवा कौन देगा बताओ तो ? मेरी बुद्धि में यह समायेगा क्यों ? तुमने कहा है यदि तुम न जाओ, यदि बलपूर्वक यहां रह जाओ, मैं क्या कर सकता हूं। मैं तो नहीं जानता कि क्या करना उचित है नई-बहू, तुम ही बताओ।'

सविता बैठी हुई बहुत देर तक कितनी ही बातें सोचने लगी। उसके बाद

उसने पूछा—'मंझले मालिक, तुम्हारा व्यवसाय क्या सचमुच ही सब नष्ट हो गया है ?

'हाँ, सचमुच ही सब नष्ट हो गया है।'

'मैं रुपया निकालकर न लेती तो क्या होता ?'

'उससे भी नहीं बचता, केवल डूब जाने में एक दो वर्ष की देर लगती।'

'इस समय तुम्हारे हाथ में रुपये-पैसे कितने हैं ?'

'कुछ भी नहीं। अपनी हीरे की अँगूठी बेचने पर जो पांच सौ रुपये मुझे मिले हैं उनसे ही काम चल रहा है।'

'कौन सी अँगूठी ? अपने व्रतारम्भ की दक्षिणा कह कर जिसे मैंने स्वयं ही तुम्हारे हाथ में पहिना दी थी—वही ? तुमने उसे बेच डाली है ?'

'उसके अलावा मेरे पास और कुछ भी नहीं था यह तो तुम्हें मालूम है नई बहू !'

सविता कुछ देर मौन रहकर बोली—वे जो दो इलाके थे क्या वे भी निकल गये ?,

ब्रजबाबू ने कहा—'निकल नहीं गये लेकिन निकल जायेंगे। बन्धक रखे हैं, छुड़ा न पाऊंगा।'

कुछ देर चुपचाप बीत जाने पर सविता ने पूछा—'तुम्हारी इस विवाहिता स्त्री के पास क्या रह गया है ?'

ब्रजबाबू ने कहा—'उनके नाम से पटलडांगा में दो मकान खरीदे गये थे, वे हैं और जेवर हैं पचीस-तीस हजार रुपये के, उनका और उनकी लड़की का काम चल जायगा—कष्ट न होगा।'

'रेणुका के लिए क्या है मंझले मालिक ?'

'कुछ भी नहीं। मामूली जेवर थे उन्हें भी शायद भूल से लेती गई हैं।'

'यह सुनकर रेणुका की माँ (सविता) मुंह झुकाये मौन हो रही।

ब्रज बाबू ने कहा—सोचता हूँ, रेणुका अच्छी हो जायगी तो हम लोग अपने गांव को चले जायेंगे। वहाँ दया करके यदि कोई लड़की को ग्रहण करे तो उसकी शादी कर देंगे, उसके बाद भी यदि जीवित रहूँगा तो गोविन्द जी की सेवा करके गांव में किसी प्रकार मेरे जीवन के इने गिने दिन कट जायेंगे,

ऐसे आशा है।'

लेकिन सविता से कोई उत्तर न पाकर वे कहने लगे—एक बात है कि रेणुका को लेकर उसको राजी न कर सका हूं। उसको तुम जानती नहीं हो, लेकिन वह हो गई है तुम्हारी ही तरह अभिमानिनी, सहज में कुछ नहीं कहती, लेकिन जब कहती है तो उसको फिर टाला नहीं जा सकता। जिस दिन मैं इस घर पर चला आया, उस दिन रेणुका ने कहा—'चलो बाबू जी हम लोग गांव चले चलें। लेकिन मेरी शादी करने की चेष्टा मत करना, अपने बाबू जी को अकेला छोड़कर मैं कहीं जाऊंगी नहीं।'

मैंने कहा—'मैं तो बूढ़ा हो चला बेटी, अब कितने दिन रहूंगा, लेकिन तब तुम्हारी क्या दशा होगी बोलो न ?' उसने कहा—'बाबू जी मेरा भाग्य बदल न सकोगे, बचपन में जिसे मां छोड़कर चली जाती है, जिसके ब्याह के दिन अज्ञात बाधा से सब छिन्न-भिन्न हो जाता है, जिसके बाप का राज्य धन आतिशबाजी की तरह हवा में उड़ जाता है, उसे सुख-भोग के लिए भगवान् दुनिया में नहीं भेजते। उसके दुःख का जीवन दुःख में ही समाप्त हो जाता है। यही है मेरे भाग्य की लिखावट बाबू जी, मेरे लिए सोच-सोच कर तुम और कष्ट मत उठाओ।'

इतना कहते-कहते एकाएक उनका गला भर आया लेकिन अपने को संभाल कर उन्होंने कहा—रेणुका ने ये बातें कहीं विरक्त होकर भी नहीं, दुःख के धक्के से व्याकुल होकर भी नहीं। वह जानती है कि उसके भाग्य में ये सब घटनाएं होंगी ही, उसके चेहरे पर विषाद की काली छाया नहीं थी, उसने ये बातें कहीं भी सहज भाव से—लेकिन जो मुंह से निकल पड़ा वही नहीं, सोच विचार करके ही उसने कहा था। इसलिए भय होता है, शायद इससे उसे सहज में हटाया न जा सकेगा। तो भी मैं सोचता हूं नई बहू, इस दुर्भाग्य में मुझे यही सान्त्वना है कि मेरी रेणुका शोक करने के लिए बैठी नहीं है, अपने मन में एक बार भी मेरा तिरस्कार नहीं किया।'

पति की ओर एकटक दृष्टि से देखते हुए सविता के दोनों नेत्रों में जल भर आया। उसने कहा—'मंझले मालिक के जीवित रहते सब कुछ ही मैं अपने नेत्रों से देखूंगी, कानों से सुनूंगी, लेकिन कुछ भी कर न सकूंगी ?'

ब्रज बाबू ने कहा—'क्या करना चाहती हो नई बहू, रेणुका तो किसी दशा में भी तुम्हारी सहायता न लेगी ? और मैं···।'

सविता की जबान चुप न रह सकी, अकस्मात् पूछ बैठी—रेणुका को क्या मालूम है कि मैं आज भी जिन्दा हूं मंझले मालिक ?'

ये कई बात साधारण ही थीं लेकिन इस प्रश्न में कितने प्रकार से रात्रि का सपना, दिन की कल्पना भरी पड़ी है, यह बात उसके अलावा उसको और जानता कौन है ? पीले चेहरे से देखते हुए उत्तर की प्रतीक्षा में उसके मन के अन्दर हलचल मचने लगी। ब्रज बाबू चुप रहकर कुछ देर सोचकर बोले—'हां, उसे मालूम है।'

'उसे मालूम है कि मैं जीवित हूं ?'

'मालूम है। वह जानती है कि तुम कलकत्ते में हो और अगाध ऐश्वर्य में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही हो।'

सविता ने मन-ही-मन कहा—'हे पृथ्वी, तुम फट जाओ !'

ब्रज बाबू ने कहना शुरू किया—'वह तुम्हारी सहायता न लेगी और मैं गोविन्द जी की अन्तिम पुकार कानों से सुन चुका हूं नई बहू, तो भी मुझे कुछ देकर तुम तृप्ति पाओगी तो मैं ले लूंगा। प्रयोजन है इसलिए नहीं—मेरे धर्म का अनुशासन है, अपने ठाकुर जी की आज्ञा होने से लूंगा। तुम्हारा दान हाथ पसार कर लेकर मैं पुरुष का अन्तिम अभिमान समाप्त करके तिनके की अपेक्षा भी हीन होकर दुनिया से विदा हो जाऊंगा। यदि उस समय उसके भी चरणों में स्थान पा सकूं।'

सविता पति के मुंह की ओर न देख सकी। लेकिन साफ समझ गई कि उनकी आंखों से दो बूंद आंसू लुढ़क पड़े। वहां स्तब्ध भाव से मुंह झुकाये बैठी रहकर उसे सबकी बातें स्मरण होने लगीं। उसे वह बात याद आ गई जब पति के नहाने के कमरे में द्वार बन्द करके उसने उनसे जोर लगाकर कहा था—'यदि मैं न जाऊं, तुम मेरा क्या कर सकोगे !' उनके पैरों पर माथा रखकर कहा था—'यही तो मेरा घर है, यहां है मेरी कन्या, और हैं मेरे पति। मुझे विदा करने की किसमें शक्ति है ?'

लेकिन आज वह समझ गई उसकी बातें कितनी अर्थहीन, कितनी असंभव

हैं। कितना हास्यास्पद है उसका यह दावा। आकाश-नदी के एक छोर पर खड़ी है एक कुल त्यागिनी और दूसरे छोर पर खड़ा है उसका पति, उसकी बीमार लड़की। बीच में है संसार, घर-गृहस्थी, नीति, समाज-बन्धन के असंख्य विधि-विधान। केवल आँखों से आँसू बहाकर, पति के चरणों पर मस्तक पटककर इस गुरु-भार को वह किस तरह टालेगी ? उसने और कोई बात नहीं कहा। पति के उद्देश्य से फिर एक बार चुपचाप धरती पर मस्तक रखकर वह खड़ी हो गई।

राखाल की नींद खुल गई। उसने आकर कहा—'मालूम होता है शायद नई-माँ चली गई हैं।'

'नहीं बेटा, अब जाऊँगी। रेणुका की तबियत कैसी है ?'

'अच्छी है माँ, अभी तक सो रही है।'

'मँझले मालिक, अब मैं जाऊँ ?'

'हाँ, जाओ।'

राखाल ने कहा—'माँ, चलिए, आपको गाड़ी पर बिठा आऊँ। कल फिर आप आवेंगी न ?'

'हाँ, आऊँगा बेटा।'

इतना कहकर वे चल दीं। राखाल भी पीछे-पीछे चलने लगा।

आज की सब बातों, सब घटनाओं की सविता मन-ही-मन आलोचना कर रही थी। उसके तेरह वर्ष पूर्व का जीवन जिन कुछ चीजों से गुथा हुआ था, आज फिर उनके ही बीच उसके दिन बीतने लगे। पति, कन्या, राखाल और कुल देवता गोविन्द जी। गृहत्याग के बाद से प्रतिक्षण आत्मगोपन करके ही उसका इतना समय व्यतीत हुआ है; कभी वह तीर्थ-यात्रा के लिए बाहर नहीं निकली है, किसी देवमंदिर में नहीं गई है, कभी गंगा-स्नान करने के लिए नहीं गई है—कितने पर्व दिन कितने शुभ क्षण, कितने स्नान के मुहूर्त चले गये हैं, साहस करके किसी दिन मार्ग के बरामदे में नहीं खड़ी हुई है, पीछे किसी परिचित आदमी की निगाह उस पर न पड़ जाय। उस दिन राखाल के घर में अचानक कुछ-कुछ आवरण उठ गया है—आज सबके सामने ही उसका भय दूर हो गया, लज्जा हट गई। रेणुका ने अभी तक सुना नहीं है, लेकिन सुनना उसको

शेष न रहेगा। वह शायद इसी प्रकार चुपचाप क्षमा करेगी। उसके बाद किसी का गुस्सा नहीं, अभिमान नहीं। व्यथा देने के लिए जरा-सा भी कटाक्ष किसी ने नहीं किया है। दुःख के दिनों में वह जो दया करके उन लोगों का समाचार जानने के लिए आ गई है इसी से सभी कृतज्ञ हैं। व्यस्त होकर ब्रज बाबू अपने हाथ से उसको बैठने का आसन देने आये थे। मानो अतिथि की सेवा में कहीं कोई कमी न रह जाय। अर्थात् परिपूर्ण विच्छेद का और कुछ भी शेष नहीं है, आते समय सविता असन्दिग्ध रूप से यही बात जानकर आई है।

रेणुका को मालूम है कि उसके पिता दरिद्र हैं। उसे मालूम है कि उसके भविष्य के सभी सुख-सौभाग्य की आशा निर्मूल हो चुकी है। इसी बात को लेकर वह शोक मनाने नहीं बैठी है, व्यवस्था को उसने अविचलित धैर्य के साथ स्वीकार कर लिया है, उसने तय कर लिया है कि स्वस्थ हो जाने पर गरीब पिता को साथ लेकर वह अपने एकान्त गांव में लौट जायगी। उनकी सेवा करके वहां ही जीवन व्यतीत करेगी।

ब्रज बाबू ने कहा है, रेणुका को मालूम है कि उसकी मां जीवित है—उसकी मां अगाध ऐश्वर्य और सुख में है। पति की वह बात सविता को जितनी बार याद आई उतनी ही बार सर्वाङ्ग में व्याप्त होने वाली लज्जा से वह कंपित हो उठी। यह झूठ नहीं है—लेकिन यही क्या सच है? लड़की को उसने देखा नहीं है, राखाल के मुंह से उसके रूप का विवरण सुन लिया है—सुना है वह अपनी मां के समान ही देखने में है। अपना मुंह याद करके उसने चित्र अंकित करने की चेष्टा की, उतना स्पष्ट तो नहीं हुआ, फिर भी रोगतप्त उसका अपना मुंह ही मानो मानस पट में बार-बार फूट उठने लगा।

देहात के दुःख-दर्द के कितने ही सम्भव-असम्भव चित्र उसकी कल्पना में आने लगे। संसार में अनासक्त दरिद्र पिता ईश्वर-चिन्ता में निमग्न हैं, किसी प्रकार भी उनकी दृष्टि में नहीं पड़ता कि वहीं पर रेणुका एकदम ही अकेली है। दुर्दिन में सान्त्वना देने वाला मित्र नहीं है, विपत्ति में आश्वासन देने वाला आत्मीय नहीं है—वहां उसके दिन कैसे बीतेंगे? यदि कभी इसी प्रकार बीमार पड़ जायगी, तब? हठात् यदि वृद्ध पिता को परलोक से बुलाहट आ जायगी, उस दिन? लेकिन उपाय नहीं है, कुछ उपाय नहीं है। उसे ध्यान आने लगा

कि पिंजड़े में बन्द करके उसके ही नेत्रों के सामने मानो उसकी सन्तान की कोई हत्या कर रहा है।

सविता को चेत हुआ। गाड़ी आकर उसके द्वार पर खड़ी हो गई थी। ऊपर चढ़ रही थी कि उसी समय दासी ने आकर चुपके से कहा—'मां, बाबू जी बहुत गुस्सा हो रहे हैं।'

'वे कब आये हैं ?'

'बहुत देर हुई। विमल बाबू के साथ बड़े कमरे में बैठकर बातचीत कर कर रहे हैं।'

'वे कब आये ?'

'थोड़ी ही देर पहले। अभी एकदम उस कमरे में जाने की आवश्यकता नहीं है मां, उनका गुस्सा कुछ शान्त हो जाने दो।'

सविता ने भौंहें टेढ़ी करके कहा—'तुम जाओ, अपना काम करो!'

वह स्नान करके कपड़े बदलकर जब बैठकखाने में आ खड़ी हुई तब शाम का दीपक जल चुका था, विमल बाबू ने उठकर खड़े होकर पूछा—'आज 'तबियत कैसी है ?'

'अच्छी है, बैठिए।'

उनके बैठ जाने पर सविता स्वयं भी जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई।

विमल बाबू ने कहा—'सुना है कि दोपहर के पहले ही आप घर से बाहर निकली थीं—आज आपका भोजन तक भी नहीं हुआ है ?'

सविता ने कहा—'नहीं, इसके लिए मुझे समय नहीं मिला।'

रमण बाबू मुंह उदास किये बैठे थे, बोले—'कहां जाना हुआ था आज ?'

सविता ने कहा—'मुझे काम था।'

'सारा दिन काम ?'

'नहीं तो सारा दिन घूमने जाऊंगी क्यों ? पहले भी तो लौट सकती थी।'

रमण बाबू ने क्रुद्ध कण्ठ से कहा—'सुनता हूं कि आजकल अधिकतर ही तुम घर पर नहीं रहतीं—काम क्या था तनिक सुन सकता हूं या नहीं ?'

सविता ने कहा—'नहीं, वह तुम्हारे सुनने योग्य नहीं है। विमल बाबू, आज भी आपका जाना नहीं हुआ ?'

विमल बाबू ने कहा—'नहीं, हुआ नहीं। बड़े चाचाजी जब तक कुछ अच्छे नहीं हो जाते तब तक शायद मैं न जा सकूंगा!'

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही रमण बाबू गुस्से के साथ बोल उठे—'मुझसे पूछ कर क्या तुम बाहर गई थीं?'

सविता ने शान्त-भाव से जवाब दिया—'उस समय तो तुम थे नहीं।'

उत्तर गुस्सा बढ़ाने योग्य नहीं था। लेकिन वे गुस्सा हो ही चुके थे, एकाएक चिल्ला उठे—'रहूं या न रहूं यह तो मैं समझूंगा लेकिन मेरी आज्ञा के बिना एक कदम भी तुम बाहर न जाओगी यह साफ बता देता हूं सुन लिया?'

सुन लिया सभी ने, विमल बाबू ने सकोच से व्याकुल होकर कहा—रमण बाबू, आज मैं जाता हूं, काम है।'

'नहीं नहीं, आप बैठिए। लेकिन यह सब निर्लज्जता मैं सहन नहीं करता इसीलिए मैंने केवल उसे बता दिया।'

सविता ने कहा—'निर्लज्जता तुम किसे कहते हो?'

'कहता हूं, जो कुछ तुम करती हुई घूमती रहती हो उसी को।'

'काम रहने पर भी जाऊंगी नहीं?'

'नहीं। मैं जो कहूंगा, वही करना होगा। दूसरा काम नहीं।'

'वही तो इतने दिनों से करती आई हूं छोटे बाबू, लेकिन अब क्या तुम मेरे ऊपर अविश्वास करने लगे हो?'

उस पर किसी दिन अविश्वास नहीं होता था, तो भी क्रोध के आवेश में रमण बाबू बोले—'होता है सौ बार। तुम सीता हो या सावित्री? जिससे अविश्वास नहीं हो सकता! एक आदमी को धोखा दे चुकी हो, मुझे धोखा नहीं दे सकती।'

विमल बाबू लज्जा से घबड़ा उठे। इन लोगों के झगड़े के बीच बातचीत करना भी ठीक नहीं, लेकिन सविता मौन होकर बहुत देर तक चुपचाप रमण बाबू के मुंह की ओर देखती रही, उसके बाद बोली—छोटे बाबू, तुम जानते हो कि मैं झूठी बात नहीं कहती। हम लोगों का सम्बन्ध आज से समाप्त हो गया। फिर तुम मेरे घर पर न आना।

वाद-विवाद इसके पहले भी हुए हैं, लेकिन सब एकतरफा होते थ।

शोर-चिल्लाहट के भय से सविता चुप रहती थी, पीछे कहीं गुप्त बात किसी के कानों तक न पहुँच जाय। उसी नई-बहू के मुंह से इतनी कड़ी बात सुनकर रमण बाबू पागल हो उठे, विशेषतः तीसरे व्यक्ति के सामने मुंह बनाकर बोले—'किसका घर है यह? तुम्हारा? कहने में कुछ भी लज्जा नहीं लगी?'

सविता उनके मुंह की ओर देखकर बड़ी देर चुप रही, उसके बाद वह धीरे-धीरे बोली—'हां, मुझे शर्म आनी चाहिए छोटे बाबू, तुम सत्य बात कह रहे हो। न तो यह घर मेरा है और न तुम्हारा ही है—तुमने ही दिया था। कल मैं किसी दूसरी जगह चली जाऊंगी तब सभी तुम्हारा रहेगा। तेरह साल के बाद चले जाने के दिन तुम्हारी एक कौड़ी भी मैं अपने संग न ले जाऊंगी, सब ही तुम्हें लौटा देती हूं।'

इस कण्ठ-स्वर से रमण बाबू आश्चर्यचकित हो गये। कहने लगे—'कल किस प्रकार चली जाओगी?'

'हां, मैं चली जाऊंगी।'

'चली जाऊंगी कहने से क्या तुमको जाने दूंगा?'

'मुझे रोकने की व्यर्थ कोशिश न करो छोटे बाबू, हम लोगों का सब समाप्त हो गया—यह फिर लौट कर नहीं आवेगा।'

इतनी देर में रमण बाबू को चेत हुआ कि मामला सचमुच ही भयंकर हो गया है। डर कर उन्होंने कहा—'मैं क्या सचमुच ही कह रहा हूं नई-बहू कि यह घर तुम्हारा नहीं है, मेरा है? गुस्से में क्या मुंह से एक भी बात निकाली नहीं जा सकती?'

सविता ने कहा—'गुस्से के कारण नहीं। गुस्सा जब शान्त हो जायगा शायद देर होगी—तब समझोगे इतना बड़ा घर दान करने की हानि तुमसे सही न जायगी, सदैव कांटे की तरह तुम्हारे मन में यही बात बिंधती रहेगी कि हम दोनों के लेन-देन में अकेले तुम ही ठगे गये हो। डण्डी पलड़े में एक दिशा को जब तुम खाली देखोगे तब दूसरी ओर बटखरे का बोझ तुम्हारी छाती पर चक्की की तरह दबाकर बैठ जायगा—सहन करने की शिक्षा तुमको नहीं मिली है। लेकिन और बहस करने की ताकत मुझमें नहीं है—मैं बहुत

थक गई हूँ। विमल बाबू, फिर शायद भेंट होने का मौका हम लोगों को न मिलेगा—मुझे कल ही जाना होगा।'

'कहाँ जाओगी?'

'यह अभी तक मैं नहीं जानती।'

'लेकिन जाने के पहले भेंट होगी ही। मैं फिर आऊँगा।'

'समय मिल जाय तो आइएगा। लेकिन आज मैं जा रही हूँ।'

इतना कहकर सविता दोनों को नमस्कार करके चली गई।

विमल बाबू ने कहा—'रमण बाबू, मेरा भी नमस्कार लीजिए—मैं चला।'

६

इतनी बड़ी बात छिपी नहीं रही, सब लोग जान गये। सवेरा होने के पहले ही सभी किराएदारों ने सुना कि कल रात को बाबू और गृहिणी में भारी झगड़ा हो गया है और नई-माँ ने प्रतिज्ञा कर ली है कि कल ही यह घर छोड़कर चली जायँगी और कोई होता तो वे केवल थोड़ा-सा हँसकर अपने-अपने कामों में लग जाते; लेकिन इनके बारे में वे ऐसा नहीं कर सके। पर यह बात भी न थी कि वे इस पर ठीक विश्वास कर सके हों। किन्तु बात ऐसी बड़ी थी कि अगर सच हो तो बड़ी चिन्ता की है। उन्हें शहर में इतने कम किराए पर ऐसा रहने का स्थान नहीं मिलेगा—एक यही भय न था; उनके ऊपर कितने ही महीनों का बहुत-सा किराया भी बाकी पड़ा है और कितनी ही तरह से वे इस घर की मालकिन के निकट ऋणी हैं। अनेक तो यह भूल ही गये हैं कि यह घर उनका अपना नहीं है। उन्होंने आकर शारदा को पकड़ा। शारदा ने जाकर मुरझाये हुए मुख से—आज यह सब लोग क्या कह रहे हैं माँ?

'क्या कह रहे हैं?'

'कहते हैं कि इस घर से आप चली जा रही हैं।'

सच ही तो कह रहे हैं शारदा।'

'सच कह रहे हैं ? सचमुच ही आप चली जायेंगी ?'

'सचमुच चली जाऊँगी शारदा ।'

सुनकर शारदा स्तब्ध हो रही। इसके बाद धीरे-धीरे पूछा—'लेकिन कहाँ जायेंगी ?'

सविता ने कहा—यह अभी तक कुछ ठीक नहीं किया। जाना होगा, केवल अभी ही स्थिर किया है।

शारदा की आँखों में आँसू भर आये। उसने कहा—वे कोई विश्वास नहीं कर पा रहे हैं माँ। सोचते हैं, यह केवल आपकी क्रोध में कही हुई बात है। क्रोध शान्त होने पर आप न जायेंगी। मैं भी सोच नहीं सकती माँ, कि हमारी आशाओं पर बिना मेघ के इतना बड़ा वज्रपात होगा—निराश्रय होकर हम सब किधर कहाँ बह जायेंगे। तो भी लोग जो नहीं जानते, वह मैं जानती हूँ। मैं समझ पाई हूँ माँ कि इस समय यह घर इतना कड़वा या अरुचिकर हो उठा है कि अब इसमें रहना आपके लिए असह्य हो रहा है। लेकिन जाने की बात कहते ही तो जाना नहीं हो सकता ?

नई-माँ ने कहा—क्यों नहीं हो सकता शारदा ? यह घर मुझे आज से ही नहीं बारह वर्ष पहले जब मैंने इसमें पहले पहल पैर रखा था, उसी दिन से कड़वा लग रहा है। लेकिन बारह वर्ष तक जो भूल की है वही भूल और बारह साल करनी होगी, यह अब नहीं मानूंगी—इस दुर्गति से अपने को अवश्य ही मुक्त करूंगी।

शारदा ने कहा—माँ, मेरे तो कोई नहीं है। मुझे किसके पास छोड़ जायेंगी !

नई-माँ ने कहा—जिसके स्वामी है उसके सब कुछ है शारदा। तुमने कोई अन्याय, कोई अपराध नहीं किया। जीवन को पछता कर एक दिन लौटना ही पड़ेगा। दुःख की ज्वाला से हतबुद्धि होकर वह चाहे जहाँ भाग गया हो, उसे फिर तुम्हारे पास आना ही होगा। लेकिन मेरे साथ जाने से तो वह तुमको सहज में न खोज पावेगा।

शारदा ने सिर झुकाकर कहा—नहीं माँ, वह अब नहीं आवेंगे।

'ऐसा कभी नहीं होता शारदा, वह आवेगा ही।'

नहीं मां, नहीं श्रावेंगे। इसका कारण मैं श्रापसे कहूंगी, लेकिन श्राज नहीं, श्रोर किसी दिन।'

जानने के लिए सविता ने जोर नहीं दिया; श्रत्यन्त विस्मय से चुप हो रही।

शारदा कहने लगी—श्राप चाहे जहां जायं, मैं साथ चलूंगी। श्राप बड़े घर की बेटी, बड़े घर की बहू हैं। श्रापका कहीं श्रकेला जाना नहीं हो सकता, साथ में एक दासी चाहिए ही। मैं श्रापकी वही दासी हूं मां।

'यह तुमने कैसे जाना शारदा, कि मैं बड़े घर की बेटी हूं, बड़े घर की बहू हूं? किसने तुमसे यह कहा?'

शारदा ने कहा—किसी ने नहीं। लेकिन क्या यह बात मैं श्रकेली ही जानती हूं? सभी जानते हैं। यह बात श्रापकी श्रांख की पुतलियों में लिखी है। श्राप जिधर से निकल जाती हैं, सबको खबर हो जाती है। बाबू ने किसी जरा से संदेह का इशारा किया था, कुछ थोड़ी-सी श्रपमान की बात कही थी—ऐसा कितने ही घरों में तो हुश्रा करता है—लेकिन वह श्राप से सही नहीं गई, सब त्याग कर चली जाना चाहती हैं। बड़े घर की लड़की के श्रति-रिक्त क्या इतना स्वाभिमान श्रोर किसी में हो सकता है मां?

क्षणभर चुप रहकर वह फिर कहने लगी—भीतरी बात सभी जानते हैं। तो भी जो कोई कभी उसे जबान पर नहीं ला सकता, सो इसका कारण न तो भय है श्रोर न श्रापके श्रनुग्रह का लोभ। ऐसा होता तो यह छलना किसी न किसी दिन प्रकट हो पड़ती। जो कोई इंगित श्राभास से भी श्रसम्मान नहीं कर सकता, सो केवल इसीलिए मां।

सविता ने कृतज्ञ कण्ठ से स्वीकार कर के कहा—तुम सभी मुझे प्रेम करते हो, यह मैं जानती हूं।

शारदा ने कहा—केवल प्रेम ही नहीं, हम सब श्रापका बड़ा श्रादर करते हैं। श्राप श्रच्छी हैं, इसीलिए नहीं, श्राप बड़ी हैं, इसलिए करते हैं। इसीलिए चर्चा करने को कौन कहे, इस बात को सोचने में भी हम लज्जित होते हैं। उन्हीं, हम लोगों को छोड़कर श्राप कैसे चली जायंगी?

'लेकिन बिना गये भी तो कोई उपाय नहीं है।'

'अगर आपके लिए विना गये उपाय नहीं है, तो मेरे लिए भी आपके साथ गये विना उपाय नहीं है। मैं न रहूँगी तो आपका काम-काज कौन कर देगा माँ ?'

सविता ने कहा—कौन करेगा, यह नहीं जानती, लेकिन यदि मैं बड़े घर से ही आई होऊँ शारदा, तो तुम भी वैसे घर से नहीं आई हो जिसके लोग पराई टहल करते फिरते हैं। तुम्हें मैं ही क्यों दासी का काम करने दूँगी ?

शारदा ने उत्तर दिया—तो दासी का काम नहीं करूँगी, मैं माँ की सेवा करूँगी, आप अपमान की लज्जा से अकेली जाकर राह में खड़ी होंगी, इसका दुःख कितना बड़ा है, यह मैं जानती हूँ। वह मुझसे न सहा जायगा, इसलिए साथ अवश्य ही जाऊँगी। यह कह कर उसने आँचल से आँखें पोंछ लीं।

वह स्पष्ट कर के कहना नहीं चाहती, केवल इशारे से ही समझाना चाहती है कि निराश्रय को कितना दुःख है ! सविता को स्वयं भी स्मरण हो आयी उस दिन की बात, जिस दिन गहरी रात को स्वामी का घर छोड़ कर वह बाहर आई थी। 'आज भी उस दुःख की तुलना करने के लिए उसे संसार का कोई भी दुःख ढूँढ़े नहीं मिला। उसके बहुत लम्बे बारह वर्ष इसी घर में कटे। इस नरक-कुण्ड में भी जीने के प्रयोजन से फिर उसे धीरे-धीरे बहुत कुछ संचय करना पड़ा। वह सब क्या आज सचमुच ही बोझा है ? सचमुच ही क्या प्रयोजन बिलकुल नहीं रहा ? क्या उसने अपने को फिर से पा लिया है ? शारदा की सतर्क वाणी ने उसे सचेत किया। उसके मन में सन्देह उत्पन्न हुआ कि निर्विघ्न आश्रय के त्याग का घोर दुस्साहस शायद अब आज वह नहीं कर सकती। पुण्यमय स्वामी-गृह-वास की बहुत-सी स्मृतियाँ उसके मानस-पट पर उभर आईं। भय हुआ कि उस दिन की वह देह, वह मन, वह शान्त ग्राम-भवन का सरल सामान्य प्रयोजन इस विक्षुब्ध नगरी की अपवित्र जीवन-यात्रा के बवंडर में चक्कर खाकर न जाने कहाँ डूब गये हैं। आज किसी प्रकार उनका पता नहीं मिलेगा। उसे मन-ही-मन मानना ही पड़ा कि अब वह वही नई-बहू नहीं है। उसकी आयु बहुत हो गई है; अभ्यास भी बहुत बदल गये हैं। यह आश्रय जिसने दिया है, उसकी दी हुई लांछना और अपमान चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, उस आश्रय को त्याग कर खाली हाथ मार्ग में निकल पड़ना आज उसकी

अपेक्षा भी कठिन है। किन्तु एकाएक ध्यान आया कि रहा ही किस तरह जाय ? इस आदमी के विरुद्ध उसका विद्वेष और घृणा दिन-दिन जमा होते-होते कितने बड़े पर्वताकार हो उठे हैं, यह इतने दिन उसने आप भी इस तरह हिसाब करके नहीं देखा था। उसे जान पड़ा, जैसे वह आया है, पलंग पर बैठ कर पान-तमाखू से एक गाल बतोड़ी की तरह फुला कर और बारंबार उच्चारित उन्हीं सब अत्यन्त अरुचिकर सम्भाषणों और मजाकों से उसके मनोरंजन का प्रयत्न कर रहा है—उसकी लालसा-लिप्त वह गंदी चितवन, उसकी बिल्कुल निर्लज्ज अति उग्र अधीरता—उसी कामार्त्त अधेड़ व्यक्ति की शय्या के पास जाकर फिर उसे रात बितानी होगी—यह सोच कर क्षण भर के लिए सविता जैसे हतचेतन हो रही।

'माँ ?'

'क्यों शारदा ?'

'आज सचमुच ही तो नहीं चली जायँगी ?'

'आज नहीं तो एक दिन तो जाना ही होगा।'

'क्यों जाना होगा ? यह घर तो आपका है।'

'नहीं, मेरा नहीं, रमण बाबू का है।'

इतने दिन वह यह नाम नहीं लेती थी, जैसे सत्य ही यह नाम लेना उसके लिए निषिद्ध है। आज छलना की यह नकाब उसने उतार दी। शारदा ने इस-पर लक्ष्य किया। कारण, हिन्दू-नारी के कानों में यह बात खटकती ही है। इसका कारण भी समझ लिया। बोली—हम सब तो जानते हैं कि यह घर उन्होंने आपको दिया था। अब तो इस पर उनका अधिकार नहीं है माँ।

सविता ने कहा—सो मैं नहीं जानती शारदा। वह आईन-अदालत की बात है। मैं नहीं जानती कि मौखिक दान का कितना स्वत्व है।

शारदा ने भयभीत होकर कहा—सिर्फ जबानी ? लिखत-पढ़त नहीं हुई ? ऐसा कच्चा काम क्यों किया था माँ ?

सविता मौन हो रही। उसे उसी समय याद आया कि स्वामी के पास उसका जो रुपया जमा था, वह उन्होंने सर्वस्व चला जाने पर भी उस दिन ब्याज और मूल-सहित सब लौटा दिया है।

शारदा ने कहा—आपने रमण बाबू को आने के लिए मना कर दिया है। अब यदि वह गुस्से के मारे इस बात को अस्वीकार कर दें ?

सविता ने अविचलित कण्ठ से कहा—वह यही करें शारदा, मैं उन्हें तनिक भी दोष न दूंगी। केवल उनके निकट मेरी यही प्रार्थना है कि लड़ने-झगड़ने और चीखने-चिल्लाने के लिए अब वह मेरे सामने न आवें।

सुन कर शारदा अवाक् हो रही। अन्त को सूखे हुए मुख से बोली—माँ, एक बात कहती हूँ आप से। रमण बाबू को विदा कर दिया, रहने का घर भी जाने को जान पड़ता है। सचमुच ही क्या आपको कोई चिन्ता नहीं होती ? उस दिन मुझे छोड़ कर जब वह चले गये, तब अकेली मैं भय से कैसे पागल हो गई। ज्ञान या समझ न होने से ही तो तब विष खाकर मरने चली थी माँ, नहीं तो इतना बड़ा पाप करने को मेरा साहस न होता। लेकिन आपको तो सम्पूर्ण निर्भय देखती हूँ, किसी बात की चिन्ता नहीं करतीं—आपको किसी की पर्वाह नहीं है। ऐसा किस प्रकार संभव है माँ ? जान पड़ता है, हम लोगों से बड़ी होने के कारण ही आपके लिए यह संभव है।

सविता ने कहा—बड़ी नहीं बेटी। तुम्हारी और मेरी दशा एक नहीं है। तुम थीं सम्पूर्ण निरुपाय—लेकिन मैं ऐसी नहीं हूँ। अभी उस दिन जो बड़ी सम्पत्ति—खरीदी गई है, वह मेरी है शारदा।

शारदा ने आश्वास्त होकर पूछा—उसमें तो कोई गड़बड़ नहीं होगी माँ !

सविता गर्व के साथ कह उठी—वह मेरे स्वामी की है शारदा—वह मेरा रुपया है। उसमें किसी की क्या शक्ति है जो गड़बड़ करे !

बारह वर्ष से सविता अकेली है। आत्मीय-स्वजनहीन होकर पराये घर में उसके बारह वर्ष बीते हैं। मन की बात जिससे कही जाय, इतने दिन ऐसा एक भी आदमी नहीं था। रुपयों का ब्योरा बताने में अकस्मात् इस लड़की के सामने उसका इतने दिन के रुंधे हुए हृदय के स्रोत का मुंह खुल गया। एका-एक किस तरह स्वामी से भेंट हो गई, अन्धकारप्राय घर के कोने में केवल छाया देखकर किस प्रकार स्वामी ने उसको पहचान लिया, तब किस प्रकार उसने अपने को संभाला, तब उसने क्या कहा, क्या किया, यह सब बिना किसी रुकावट के बकते-बकते कुछ देर के लिए सविता जैसे अपने को भूल बैठी।

शारदा के विस्मय की सीमा नहीं—नई-माँ का अपने को इतना भूल जाना उसकी कल्पना से भी परे था।

नीचे से आवाज आई—माँ जी !

सविता ने सचेत होकर उत्तर दिया—कौन, महादेव ?

दरबान ने ऊपर आकर जताया कि उनकी आज्ञा के अनुसार शोफर गाड़ी ले आया है।

आध घंटे बाद तैयार होकर नीचे उतरकर उसने देखा, दरवाजे के पास शारदा खड़ी है। उसने कहा—माँ, मैं साथ चलूंगी। वहाँ राखाल बाबू हैं। वह कभी अप्रसन्न न होंगे।

कोई साथ जाय, यह सविता की इच्छा नहीं थी। उसने कहा—अप्रसन्न तो शायद कोई न होगा। लेकिन वहाँ जाकर तुम क्या करोगी शारदा ? शारदा ने कहा—मैं सब जानती हूँ माँ। रेणु बीमार है, मैं उसे एक बार देख आऊंगी। इससे भी अधिक मुझे साध है रेणु के बाप को देखने की। प्रणाम करके पैरों की धूल माथे से लगाऊँगी। यह कहकर सम्मति की उपेक्षा किये बिना ही वह गाड़ी में बैठ गई।

मार्ग में जाते समय उसने धीरे-धीरे पूछा—रेणु के बाप देखने में कैसे हैं माँ ?

सविता ने कौतुक करके कहा—तुमको कैसे जान पड़ते हैं शारदा ? ठाठ-बाट वाले बहुत जबर्दस्त आदमी—क्यों ?

शारदा ने कहा—नहीं माँ, ऐसा नहीं जान पड़ता। लेकिन मैं तभी से तो सोच रही हूँ, कोई भी चेहरा जैसे पसन्द नहीं आता।

'क्यों नहीं पसन्द आता शारदा ?'

'जान पड़ता है, इसलिए पसन्द नहीं आता माँ, कि वह केवल रेणु के पिता ही नहीं हैं, आपके भी स्वामी हैं ! मन-ही मन जैसे किसी तरह दोनों जनों को एक साथ मिला नहीं पा रही हूँ।'

सविता ने हँस कर कहा—मान लो ऐसे हैं—एक बूढ़े वैष्णव—मुझसे अवस्था में बहुत बड़े—सिर पर शिखा है, बाल प्रायः सब पक गये हैं, गोरा रंग, लम्बा शरीर, पूजा-व्रत-उपवास आचार-नियमों से दुबले-पतले—ऐसा

आदमी तुमको पसन्द आता है क्या शारदा ?

'ना ना, नहीं पसन्द आता। आपको आता है ?'

'पसन्द किये बिना उपाय क्या है शारदा ? स्वामी पसन्द-नापसन्द की वस्तु नहीं है। उसे बिना कुछ विचारे मान लेना होता है। तुम कहोगी, यह तो हुई शास्त्र की विधि, मनुष्य के मन की विधि नहीं है। लेकिन यह तर्क कौन करते हैं जानती हो बेटी ? वे ही करते हैं, जिन्होंने आज भी मनुष्य के मन का सच्चा हाल नहीं जाना, जिनको दुर्गति की आग जलाकर जीवन का मार्ग टटोलते भटकना नहीं पड़ा। संसार-यात्रा में स्वामी के रूप-यौवन का प्रश्न स्त्रियों के लिए तुच्छ बात है बेटी, यह दो दिन में ही हिसाब के बाहर पड़ जाती है।

शारदा अशिक्षित होने पर भी इस बात को ठीक सत्य मान कर ग्रहण नहीं कर सकी। समझी यह सविता के पश्चात्ताप की ग्लानि है—प्रतिक्रिया से मथे जा रहे हृदय की एक क्षमा की भिक्षा है। इच्छा न हुई कि तर्क करके उसके दुःख को बढ़ावे; किन्तु चुप भी नहीं रहा गया। बोली—एक बात जानने को बड़ा जी हो रहा है माँ, परन्तु—

सविता ने कहा—परन्तु क्या बेटी ? यही तो कि प्रश्न करके मुझे और लज्जित नहीं करना चाहती हो ? लेकिन अब लज्जा और नहीं बढ़ेगी, तुम निर्भय होकर पूछो।

इतने पर भी शारदा का संकोच दूर न हो रहा था। उसे मौन देखकर सविता ने आप ही कहा—शारद तुम यह जानना चाहती हो कि यदि यही बात सच है तो मेरी इतनी बड़ी दुर्गति क्यों हुई ? इसका उत्तर मैंने अनेक बार अनेक प्रकार से सोच कर देखा है; किन्तु अपने पूर्वजन्म के कर्म-फल के अलावा इस प्रश्न का उत्तर आज भी मैं नहीं पा सकी बेटी।

यद्यपि शारदा आप भी कर्मफल को मानती है, तो उसका मन नई-माँ के इस उत्तर का साथ नहीं दे सका। वह चुप हो रही। सविता ने उसके मुख की ओर देखकर यह समझ लिया। बोली—और किसी जन्म के अज्ञात कर्मफल के सिर दोष मढ़कर इस जन्म के टूटे बेड़े से निकलने की सन्धि खोजती फिरूं, इतनी बड़ी अजान मैं नहीं हूं बेटी, किन्तु इस गोरखधन्धे से बाहर निकलने की राह

कौन निकाल पाया है, बताओ तो ? जिस आदमी को मैंने कल विदा कर दिया, उसे मैंने अपने स्वामी की अपेक्षा बड़ा कभी नहीं समझा, उसके लिए कभी श्रद्धा नहीं की, कभी उससे प्रेम नहीं किया, तो भी उसी के घर में मेरा एक युग किस प्रकार कट गया ?

अब की शारदा बोली। उसने कुछ लजाते हुए कहा—आज न हो, किन्तु उस दिन भी क्या रमण बाबू को आपने प्यार नहीं किया माँ ?

सविता ने कहा—नहीं बेटी, उस दिन भी नहीं—किसी दिन भी नहीं।

शारदा ने कहा—तो फिर यह सब क्यों हुआ।

सविता ने क्षण-भर चुप रहकर मलिन हँसी हँसकर कहा—पद-स्खलन में क्या कोई 'क्यों' रहता है शारदा ? वह अचानक सम्पूर्ण अकारण व्यर्थ में हो जाता है। इन बारह-तेरह वर्षों में कितनी ही औरतों को तो मैंने देखा है—आज शायद वे सर्वनाश की कीचड़ के तले में न जाने कहाँ डूब गई हैं, लेकिन उस दिन मेरी एक भी बात का वे उत्तर नहीं दे सकीं। मेरी ओर आँखें फैलाये ताकने लगीं, उनमें आँसू भर आये। मैं तो सोच ही नहीं पाई कि अपने भाग्य के सिवा वे और किसको कोसेंगी। देखकर उनका अपमान क्या करती, अपना ही माथा पीटकर रोकर कहा—निष्ठुर देवता ! अपने मायावी संसार में तुमने बिना दोष के दुःख के गीत गाने का भार क्या अन्त को इन सब अभागिनों के ऊपर डाला है ! क्यों होता है, यह मैं नहीं जानती शारदा, किन्तु ऐसा ही होता है।

शारदा ने अब की भी साथ नहीं दिया, सिर हिलाकर बँधे रास्ते के पक्के नियम को अनुसरण करके बोली—उनका दोष न था, ऐसी बात आप कैसे कह रही हैं माँ ?

सविता के उत्तर नहीं दिया। फिर उसे और समझाने की चेष्टा नहीं की। केवल एक साँस छोड़कर खिड़की के बाहर शून्य दृष्टि से मार्ग की ओर ताकने लगी।

गाड़ी आकर यथास्थान खड़ी हुई। महादेव के दरवाजा खोल देने पर दोनों उतर पड़ीं। गाड़ी कल के समान अपेक्षा करने के लिए अन्यत्र चली गई।

१७ नम्बर के घर का द्वार खुला था। दोनों ने भीतर प्रवेश करके देखा,

नीचे कोई नहीं है। सीढ़ी से ऊपर चढ़ते ही एक सोलह-सत्रह वर्ष की लड़की देख पड़ी जो बरामदे में बैठी तरकारी काट रही थी। लड़की ने खड़े होकर और 'आइए' कहकर दोनों की अभ्यर्थना की। जंगले के ऊपर आसन पड़ा था, उसे उतारकर विछा दिया और सविता के पैरों की रज माथे से लगाई।

यह लड़की आज इतनी बड़ी हो गई है! आसन पर बैठकर सविता किसी प्रकार अपने को सम्भाल न सकी। उमड़े हुए आंसुओं के वेग से उसकी सारी देह बार-बार कांप उठी और तुरन्त ही दोनों आंखों से लगातार आंसुओं की धारा वह चली। सविता ने समझा कि यह लज्जा की बात है, शायद इन आंसुओं की कोई मर्यादा इस लड़की के निकट नहीं है। किन्तु संयम का बांध टूट गया था, किसी प्रकार कम न हुआ—आंसू रोके नहीं रुके। केवल जोर से दोनों आंखों के ऊपर आंचल दवाकर वह मुंह छिपाये वैठी रही।

१०

जितनी ही सविता ने रुलाई रोकनी चाही उतनी ही वह शासन के बाहर चली गई। क्षुब्ध समुद्र-जल ने किसी तरह मानो अन्त मान लेना नहीं चाहा। लड़की ने सान्त्वना देने का प्रयत्न नहीं किया। निर्बल क्लान्त हाथ से जिस प्रकार साग काट रही थी उसी तरह चुपचाप काम करती रही। अन्त में यद्यपि रोने की उद्दण्डता शान्त हो चली लेकिन अपने मुंह के पर्दे को सविता किसी भी प्रकार हटा न सकी। वह मानो खूब चिपककर पड़ा रहा। लेकिन इस प्रकार कितनी देर चलेगा; सबकी परिस्थिति अन्दर-ही-अन्दर दुस्सह होने लगती है। इसीलिए शायद शारदा ही सबसे पहले कह उठी—'आज तुम्हारी तबियत कैसी है दीदी ?'

'अच्छी है।'

'फिर ज्वर तो नहीं आया ?'

'नहीं, मुझे तो मालूम नहीं दिया।'

'डाक्टर अभी तक आये नहीं ?'

'नहीं, शायद वे दूसरे समय आवेंगे'

शारदा ने कुछ सोचकर कहा—'क्यों, राखाल बाबू दिखाई नहीं देते ? क्या वे घर पर नहीं हैं ?'

'कहीं पढ़ाने गये हैं।'

'और तुम्हारे बाबू जी ?'

'सवेरे चले गये थे, और देर में लौटने के लिए कह गये हैं।'

शारदा की बातें समाप्त हो चलीं। इस बार वह क्या कहेगी सोचकर समझ न सकी। अन्त में बहुत संकोच के बाद उसने पूछा—'ये कौन हैं, क्या तुम पहचान गईं रेणुका ?'

'कैसे पहचानूंगी, मुझे तो चेहरा भी याद नहीं।'

'समझ भी नहीं सकी ?'

रेणुका ने सिर हिलाकर कहा—'समझ तो सकी हूं। राजू भैया बतला गये हैं। लेकिन आप कौन हैं यह नहीं समझ पायी।'

शारदा ने अपना परिचय देकर कहा—'मेरा नाम है शारदा, तुम्हारी मां के पास रहती हूं। राखाल बाबू मुझे जानते हैं। मेरे विषय में क्या कोई बात उन्होंने तुमसे कही नहीं ?'

'नहीं। उन सब बातों को वे मुझसे कैसे बतलायेंगे ? बताना तो ठीक नहीं है।'

इस बार शारदा का मुंह एकदम ही बन्द हो गया। उसकी बुद्धि-विवेचना जितनी दूर सम्भव थी उसने उसे उतनी दूर चलाया है और आगे बढ़ने योग्य उसको खोजने से कुछ नहीं मिला। कुछ मिनट चुपचाप बीत जाने पर रेणुका उठ गई, लेकिन थोड़ी ही देर बाद एक लोटा हाथ में लेकर आई और बोली—'उठिए मां, पांव धोने के लिए पानी लाई हूं।'

इस आह्वान से सविता पागल की भांति अचानक उठ खड़ी हुई। उन्होंने लड़की को गोद में खींच लिया, लेकिन कुछ ही देर के लिए। उसके बाद ही अचेत होकर धरती पर गिर पड़ीं। कुछ मिनट के बाद चेत में आने पर उन्होंने देखा, उनका माथा शारदा की गोद में है और सामने बैठी हुई लड़की पंखा डुला रही है।

रेणुका ने कहा—'मां, पूजा का स्थान ठीक कर दिया है, एक बार उठ

जाना पड़ेगा।'

यह सुनकर उनके दोनों नेत्रों के कानों से सिर्फ जल चू पड़ा।

रेणुका ने फिर कहा—'शारदा दीदी ने कहा था, आपने चार-पांच दिन से कुछ भी खाया नहीं, थोड़ी-सी मिश्री भिगो कर मैंने रख दी है मां, इस बार उठकर पी लेना होगा। लेकिन बाल सब धूल और जल में लुट-पुट कर एक हो गये हैं; यह मेरा दोष नहीं है मां, शारदा दीदी का है। हां मां, आपके बाल मानो काले रंग के रेशम हैं। लेकिन मेरे बाल ऐसे सख्त क्यों हो गये हैं मां? शायद बचपन में खूब मुड़वा दिया गया था? देहात में यही बड़ा दोष है।

सविता ने हाथ से लड़की के माथे को छुआ। कई दिनों के ज्वर से उसके बिखरे हुए बाल रूखे हो उठे हैं। बहुत देर तक अंगुलियों से हिलाती-डुलाती रही, अनेक बार बातें करते समय गले में रुकावट आ गई, अन्त में उस माथे को अपनी गोद में खींच कर वे नेत्रों से आंसू गिराने लगीं। जो बात गले में रुक गई थी वह गले में ही दबी रह गई। बात भले ही मुंह से न निकले, लेकिन यह अनुच्चारित भाषा समझने में किसी को देर न लगी। लड़की समझ गई, शारदा समझ गई और समझ गये वे, जिनके लिए इस दुनिया में कोई भी चीज अनजान नहीं।'

इस दशा में कुछ देर रहकर सविता उठ पड़ी। लड़की उनको नीचे स्नान के कमरे में ले जाकर फिर नहलवा कर ले आई। बल-पूर्वक पूजा पर बैठा दिया और उसके समाप्त होने पर उसी प्रकार बल प्रयोग करके उनको मिश्री का शरबत पिला दिया।

रेणुका ने कहा—'मां, अब जाती हूं रसोई पकाने। आपको खाना पड़ेगा।'

'यदि न खाऊं?'

'ऐसा होने से आपके पैरों पर माथा रगड़ूंगी, बिना खाये आप छुटकारा न पा सकेंगी।' रेणुका ने कहा।

उसने फिर कहा—'सवेरे जरा मिश्री खाकर जल पी चुकी हूं, आज और कुछ न खाऊंगी। कुछ दुर्बल तो सचमुच हो गई हूं, लेकिन रसोई पकाये बिना काम चलेगा कैसे, मां? राजू भैया के आने में देर होगी। बाबू जी भी लौटेंगे बहुत दिन चढ़ जाने पर। रसोई न बनाने से इतने आदमी खायंगे क्या? इसके

अलावा मुझे ठाकुर जी का भोग भी तो बनाना होगा ।'

इतना कह कर उसने जैसे ही रेलिंग पर से उतार कर अंगौछा कन्धे पर रख लिया, वैसे ही सविता ने चौंक कर पूछा—'क्या तुम स्नान करने जा रही हो रेणुका ?'

रेणुका ने हँसकर कहा—'माँ, आप भूल गई हैं। आपने क्या कभी बिना स्नान किये ही भोग बनाया था ?'

सविता के मुंह से इस बात का उत्तर न निकला। शारदा ने कहा—'लेकिन फिर ज्वर तो आ सकता है रेणुका।'

रेणुका ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, शायद आवेगा नहीं, अब मैं अच्छी हो गई हूं और हो जाने से भी मैं क्या करूंगी शारदा दीदी, जब तक अच्छी हूँ, तब तक तो करना ही पड़ेगा ! हम लोगों के यहां करने वाला तो और कोई दूसरा है नहीं।'

उत्तर सुनकर दोनों ही चुप हो रहीं।

रसोई मामूली थोड़ी पकानी थी, लेकिन उसे कर डालने में रेणुका को कितना कष्ट हो रहा था यह स्पष्ट है। ज्वर के कारण सात-आठ दिनों के उपवास से अत्यन्त दुर्बल थी। लड़की बहुत कष्ट उठा-उठाकर आंखों के सामने ही काम करने लगी, मां चुपचाप बैठ कर देखती रही, लेकिन कुछ भी करने को नहीं रहा। इस जीवन का पारिवारिक बन्धन जो इस प्रकार टूट गया है, व्यवधान जो इतना वृहत् हो गया है, ऐसा प्रत्यक्ष रूप से समझ लेने का अवकाश शायद सविता को और किसी प्रकार भी न मिलता जैसा कि आज मिल गया।

भोजन तैयार हो गया। शारदा को लक्ष्य करके रेणुका ने कहा—'बाबू जी के लौटने में, शायद आज दिन ढल जायगा। आप क्यों झूठ-मूठ कष्ट उठावेंगी शारदा दीदी, खा लीजिए। बाबू जी कहा करते है, ऐसी दशा में गृहस्थी में किसी एक के उपवास करके रहने से ही कोई दोष नहीं होता। सचमुच होता नहीं ?'

यह कहकर वह मां के मुंह की तरफ देखती हुई उत्तर के लिए प्रतीक्षा करती रही।

सविता जानती हैं कि उन लोगों के बड़े परिवार में बाध्य होकर ही एक दिन यह नियम चलाया गया था। ठाकुर जी की पूजा के लिए पुजारी ब्राह्मण नियुक्त रहने पर भी ब्रज बाबू सहज में काम किसी पर छोड़ देना नहीं चाहते थे फिर भी चिरकाल से ढीले स्वभाव का आदमी होने के कारण उनको ही प्राय: व्यर्थ देर हो जाय करती थी। लेकिन लड़की के प्रश्न के उत्तर में उनको क्या कहना चाहिए, यह वे सोचकर भी समझ नहीं पाईं।

उत्तर न पाकर रेणुका कहने लगी—'परन्तु मेरी नई-माँ को देर सही नहीं जाती थी। खाने में जरा देर होने पर भी वे बहुत गुस्सा कर बैठती थीं। बाबू जी ने इसीलिए मुझे एक दिन दु:खी होकर कहा था कि गाँव के घर पर कितने ही दिन जो आपका इस समय खाना नहीं होता था, उपवास करके दिन काटना पड़ता था, इसकी गिनती नहीं है, लेकिन किसी दिन क्रोध करके आपने नहीं कहा कि ठाकुर जी को फेंक दो।'

शारदा ने आश्चर्य में पड़कर पूछा—'ठाकुरजी को फेंक देने को कहती हैं?'

'हाँ, कितनी ही बार कह चुकी हैं। कहती हैं कि गङ्गा जी में फेंक आओ।'

'तुम्हारे बाबू जी क्या कहते हैं?'

शारदा के प्रश्न का उत्तर उसने माँ को ही दिया। कहा—'मेरी आयु उस समय नौ साल की थी। बाबू जी ने मुझे बुला भेजा। उनके कमरे में जाकर मैंने देखा कि नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं। मुझे अपने पास बैठाकर उन्होंने आदर करके कहा—'मेरे गोविन्द का भार था एक दिन तुम्हारी माँ पर। आज से तुम ही उनका काम करो—कर सकोगी न बेटी?' मैंने कहा—'कर सकूंगी बाबू जी!' तभी से मैं ही ठाकुर जी का काम करती हूँ, पूजा जब तक नहीं हो जातीं, घर में बिना खाये रहती हूँ। लेकिन आज मैं नहीं कहती माँ। ज्वर का भय न रहता तो आपको बैठने को कहकर हम लोग मिलकर खा लेते।'

इतना कहकर वह हँसने लगी। सोचकर भी उसने नहीं देखा कि इसने कितनी असम्भव और कितनी मर्मान्तक ठेस अपनी माँ को पहुँचाई।

सविता मुंह फेर कर चुपचाप बैठी रहीं। एक बात का भी उन्होंने उत्तर नहीं दिया। लड़की जो कुछ भी कहे, माँ जानती हैं, इस घर की अब वे कुछ भी नहीं हैं। पारिवारिक नियमों के पालन में आज उनका खाना न खाना

दोनों ही अर्थहीन हैं।

रेणुका शारदा को ठाकुर जी के दर्शन के लिए ले गई। सविता उसी स्थान पर मौन होकर बैठी रही। लड़की ने कितनी थोड़ी बात कह दी है! अपनी विमाता के ऊबे हुए चित्त का सामान्य विवरण, ठाकुर देवता के प्रति श्रद्धा का उदाहरण, यही तो! कितने ही घरों में है। कोई अकाल्पनिक बात भी नहीं है और शायद विशेष दोष की भी बात नहीं है। यह स्त्री शायद अपने पति को एक क्षण के लिए समझ न सकी है, उसके कितने ही दिनों का कितना मुखभार, कितना दबा हुआ झगड़ा कितने ही छोटे-छोटे संघर्षों के काँटों से बिछे हुए शक्तिहीन दिन, कितनी ही वेदना विक्षत दुःखमय स्मृतियाँ—सविता के मानस-पटल पर साकार हो उठीं।

फिर भी, किसलिए? इसी प्रश्न ने अब से अधिक मात्रा में सविता को बींध दिया। जो भार स्वभावतः उसका अपना ही है उसे यदि कोई अ य ढो न सके तो उसे क्या दोष दिया जा सकता है, उसके अपराध के सिवा और किसका अपराध है। अधर्म की मार इतनी निर्दय होती है, अकेले इतना दुःख भी दुनिया में पैदा किया जाता है, उनकी मूर्ति ऐसी भद्दी है इसके पहले इस हद तक वे समझ न सकी थीं, ग्लानि और व्यथा के भारी बोझ से उनकी साँस तक मानो रुक जाने लगी। तो भी प्राणपण बल से वे केवल यही मन ही मन कहने लगीं—इसका प्रतिकार क्या नहीं है? दुनिया में चिरस्थायी तो कुछ भी नहीं है, केवल दुष्कृति ही इस जगत् में अविनश्वर है? कल्याण के सभी द्वार सदा के लिए बन्द करके क्या केवल वही रह जायगी, किसी दिन भी क्या उसका नाश नहीं होगा?

'माँ, बाबू जी आ गये हैं।'

सविता ने मुंह ऊपर उठाकर देखा, सामने ब्रज बाबू खड़े हैं। पल भर के लिए सब विघ्न बाधा भूल कर वे उठकर खड़ी हुई और बोलीं—'इतनी देर कैसे कर दी? बाहर निकल जाने पर क्या तुम घर-गृहस्थी की सभी बातें भूल जाओगे? देखो तो दिन कितना चढ़ आया है?'

ब्रज बाबू महा अप्रतिहत रूप से विलम्ब का विवरण देने लगे। सविता नेकहा—'लेकिन अब देर न कर सकोगे। ठाकुर जी की पूजा आज संक्षेप में

कर देनी पड़ेगी यह मैं तुम्हें बतलाये देती हूँ।'

'ऐसा ही होगा नई बहू, ऐसा ही होगा। रेणुका, द तो बेटी मेरा अँगोछा जल्दी स्नान कर आऊं।'

'नहीं बाबू जी, तुम थोड़ा आराम करो। जो देर होनी थी वह हो चुकी। मैं तमाखू भर लाती हूँ।'

माँ और पिता दोनों ही बेटी के मुंह की ओर देखने लगे। ब्रज बाबू ने कहा—'बेटी के बिना पिता के प्रति इतना दर्द और किसी को नहीं होता नई बहू। उसके सामने तुम हार गईं।' यह कहकर वे हँस पड़े।

सविता ने कहा—'हार जाने में कोई आपत्ति नहीं है मंझले मालिक, लेकिन यही एकमात्र सत्य नहीं है, दुनिया में एक और ऐसे पुरुष हैं जिनके सामने लड़की की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, माँ की भी नहीं।'

इतना कहकर वे भी हंसने लगीं।

यह हँसी देखकर ब्रज बाबू मानो चौंक पड़े, परन्तु और कोई बात न कहकर कुरता-धोती बदलने के लिए अपने कमरे में चले गये।

उस दिन खाना-पीना समाप्त हुआ। प्रायः दिन के अन्त में ब्रज बाबू बिछौने पर बैठकर तमाखू पी रहे थे। सविता कमरे में जाकर फर्श पर एक ओर दीवाल के सहारे बैठ गई।

ब्रज बाबू ने पूछा—'तुमने खा लिया ?'

हाँ।'

'लड़की ने कोई भूल तो नहीं की ?'

'नहीं!'

ब्रज बाबू ने कुछ देर चुप रहकर कहा—'गरीब का घर है। कुछ नहीं है। शायद तुमको कष्ट हुआ हो नई बहू।'

सविता ने पति के मुंह की ओर देखकर कहा—'यह नहीं होगा मंझले मालिक, तुम मुझे कड़ी बात सुना सकोगे। इतना ही मेरा अन्तिम विचार है। मरते समय यदि होश में रहूँगी तो केवल यही बात उस समय सोचूंगी कि मेरे समान पति दुनिया में किसी को कभी नहीं मिला।'

ब्रज बाबू के मुंह से लम्बी साँस निकल पड़ी। बोले—'तुम्हारे अपने खाने

के कष्ट की बात मैंने नहीं कही नई बहू । मैं कह रहा था कि आज यह भी तुमको अपनी आंखों से देखना पड़ा । तुम आ क्यों गईं ?'

सविता ने कहा—'देखना आवश्यक है मँझले मालिक । नहीं तो शान्ति अधूरी रहती । तुम्हारे गोविन्द की एक दिन मैंने सेवा की थी, शायद वे ही खींचकर ले आये । बिलकुल ही नहीं छोड़ सके हैं ।'

यह कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू भर आया । आंचल से उसे पोंछकर उन्होंने कहा—'अनन्य मन से यदि उनको चाहने लगूं, मन में कहीं भी यदि कपट न रखूं, तो वे क्या मुझे क्षमा नहीं करते मँझले मालिक ?'

'ब्रज बाबू ने कष्ट से आंसू रोककर कहा—'अवश्य ही करते हैं ।'

'परन्तु मैं किस तरह जान सकूंगी ?'

'यह तो मैं नहीं जानता नई बहू । वह दृष्टि शायद वे ही देते हैं ।'

सविता बड़ी देर तक मुंह नीचे झुकाये बैठी रही, फिर उसने मुंह ऊपर उठाया, पूछा—'आज तुम कहां गये थे ?'

ब्रज बाबू ने कहा—'नन्द साहा के यहां मेरा कुछ रुपया पावना था ।'

'दे दिया ?' सविता ने पूछा ।

'तुम क्या जानती हो···।'

'यह मैं सुनना नहीं चाहती, पूछती हूं दिया या नहीं, बताओ ?'

ब्रज बाबू न देने का कारण खोल कर बताने में कितना ही मानो कुण्ठित हो उठे । बोले—'आनन्दपुर के साहा लोगों को तुम जानती ही हो । वे लोग अति सज्जन धर्मभीरु आदमी हैं, लेकिन आजकल का समय ऐसा हो गया है कि मनुष्य इच्छा करने पर भी कुछ कर नहीं सकता । इसके अलावा नन्द साहा अब अन्धे हो गये हैं, व्यवसाय चला गया है भतीजों के हाथ में—लेकिन देंगे एक दिन अवश्य ही ।'

'यह मैं जानती हूं । क्योंकि उनको मैं धोखा देने नहीं दूंगी । नन्दा साहा को मैं भूल नहीं गई हूं ।'

'क्या करोगी—दावा ?'

'हां और कोई उपाय यदि न मिला ।'

'ब्रज बाबू ने हंसकर कहा—'स्वभाव तो देखता हूं रत्ती भर भी बदला

नहीं है।'

'कौन बदलेगा ? स्वभाव तुम्हीं लोगों का क्या बदल गया है ? दुःसमय किसका तुमसे अधिक है ? लेकिन तुम किसको धोखा दे सके हो ? मेरी तरह कृतघ्न का ऋण भी तुमने कौड़ी-कौड़ी देकर चुका दिया। उन लोगों को भी यही करना पड़ेगा। अन्तिम कौड़ी तक चुका कर ही वे लोग छुटकारा पावेंगे।'

'तुम्हारा क्रोध उन लोगों पर किसलिए है ?'

'क्रोध तो नहीं है यह मेरी ज्वाला है। तुमको भाई ने धोखा दिया, मित्रों ने धोखा दिया, आत्मीय स्वजनों ने, कर्मचारियों ने, स्त्री तक ने तुमको धोखा देना नहीं छोड़ा। इस बार उन लोगों के साथ मेरा समझना-बूझना है। तुम्हारे नये सम्बन्धी लोग मुझे पहचानते नहीं, लेकिन वे लोग मुझे पहचानते हैं।'

व्रज बाबू को बहुत दिन पहले की बातें याद आ गईं, उन दिनों भी एक बार वे डूबने लगे थे। तब इसी रमण ने हाथ पकड़ कर उनको किनारे लगाया था। उन्होंने कहा—'हाँ, वे लोग खूब पहचानते हैं। नई बहू मर गई, यह जान कर जो लोग आराम में हैं वे लोग कुछ डर जायँगे। सोचेंगे भूत का उपद्रव हो रहा है। शायद गया में पिण्ड देने के लिए दौड़े जायंगे।

सविता ने कहा—'वे लोग जैसी इच्छा हो करें मैं डरती नहीं। केवल तुम पिण्ड देने के लिए न दौड़ पड़ो तो उसी से हो जायगा। यही मेरी चिन्ता है। स्वयं तो वह काम तुम न करोगे ?'

व्रज बाबू चुपचाप बैठे रहे।

'उत्तर क्यों नहीं दिया ?'

व्रज बाबू और भी कुछ देर उसके मुंह की ओर देखते रहे। अपराह्न सूर्य का कुछ-कुछ प्रकाश खिड़की से फर्श पर फैल गया था। उसकी ओर सविता की दृष्टि आकर्षित करके उन्होंने धीरे-धीरे कहा—'इसी तरह मेरा समय गिर चला नई बहू, पावना समझने का अब समय नहीं रहा। लेकिन तुम्हारे अलावा दुनिया में शायद और कोई ऐसा नहीं है जो समझ सके कि मैं कितना क्लान्त हो चुका हूं। छुट्टी की दरखास्त पेश करके बैठा हुआ हूं, मंजूरी आने में देर नहीं है। जो कुछ मैं ले चुका हूं, जो दे चुका हूं, उसका हिसाब-किताब हो चुका है। हिसाब अच्छा नहीं हुआ है यह मैं जानता हूं, गड़बड़ी बहुत रह गई

है, लेकिनतो भी जिरह में खींच न सकूंगा। अपना यह अनुरोध तु वापस ले लो।'

सविता एक दृष्टि से देखती हुई पति की बातें सुन रही थी। समाप्त हो जाने पर उसने केवल पूछा—'सचमुच ही क्या अब तुम न कर सकोगे मंझले मालिक ? सचमुच ही तुम बहुत थक गये हो ?'

'सच ही बहुत थका हूं नई बहू। सचमुच ही अब न कर सकूंगा। कितना थका हूं, यह तुम्हारे अलावा और कोई न समझेगा। वे लोग कहेंगे आलस्य, कहेंगे जड़ता, कहेंगे मेरे नैराश्य का दैन्य। वे लोग तर्क करेंगे, युक्ति देंगे, मार-मार कर अब भी छुड़ाना चाहेंगे—वे लोग केवल यही बात जान गये हैं कि मशीन में चाभी देने से ही चलने लगती है। लेकिन उसका भी तो अन्त है, इस पर तो वे लोग विश्वास नहीं कर सकते।'

'मैं विश्वास करूं तो तुम प्रसन्न होगे ?'

'प्रसन्न होऊंगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता, लेकिन शान्ति पाऊंगा।'

'अब तुम क्या करोगे ?'

'रेणुका को साथ लेकर घर जाऊंगा। वहां सबके चले जाने पर भी जो कुछ बचा रहेगा उससे किसी प्रकार हम लोगों का खर्च चल जायगा और जो लोग हमें छोड़कर कलकत्ते में रह गये हैं उनकी चिन्ता नहीं रही, वह तो तुम पहले ही सुन चुकी हो।'

'रेणुका का भार किसे दे जाओगे मंझले मालिक ?'

'दे जाऊंगा भगवान् को। उनसे बड़ा आश्रय दूसरा नहीं है। यह मैं जान गया हूं।'

सविता मौन भाव से बैठी रहीं। भगवान् में उनका अविश्वास नहीं है। परन्तु अपनी कन्या के सम्बन्ध में इतनी बड़ी निर्भयता से निश्चिन्त भी नहीं हो सकतीं। शंका से हृदय अन्दर-ही-अन्दर हिलने लगा। लेकिन इसका उत्तर क्या है। खोजने पर मिला भी नहीं। केवल जो बात उसके मन में दिन-रात कांटे की तरह बिंध रही थी, वही मुंह से निकल पड़ी। बोलीं—'मंझले मालिक, मुझे रुपया तुमने क्या अपराध का दण्ड देने के लिए लौटा दिया ? प्रतिशोध का क्या और कोई मार्ग तुमको खोजने से नहीं मिला ?'

व्रज बाबू ने कहा—'नहीं तो तुम स्वयं ही कोई मार्ग बता दो ? हम लोगों के रतन चाचा और चाची की बात तुमको याद है ! वह इस अवस्था में क्या प्रसन्न हैं ?'

सविता इतने दुःख में भी हँस पड़ीं। लज्जा के साथ बोलीं—'छिः ! छिः ! कैसी बात तुम कहते हो !'

व्रज बाबू ने कहा—'तो तुम क्या करने को कहती हो ? नई बहू गहना चुराकर भाग गई है इसीलिए क्या पुलिस में भेज दूं ?'

प्रस्ताव इतना हास्यकर था कि कहने के साथ ही दोनों हँस पड़े।

सविता ने कहा—'तुम्हारी जितनी सब कल्पनाएँ हैं सभी अनोखी हैं।'

बहुत दिनों के बाद दोनों की रहस्योज्ज्वल थोड़ी-सी हँसी की किरण से कमरे का गाढ़ अन्धकार मानो कुछ दूर हो गया। व्रज बाबू ने कहा—'दण्ड का विधान सभी का एक नहीं होता नई बहू। दण्ड यदि देना ही हो तो तुमको और क्या दण्ड दे सकता हूं ? जिस रात को तुम अपनी गृहस्थी को पैरों से ठेलकर चली गई उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया था फिर यदि कभी भेंट होगी तो तुम्हारा जो कुछ पड़ा रह गया है वापस देकर मुक्त हो जाऊंगा।'

सविता को याद पड़ गई पति की एक बात जिसे वे उन दिनों प्रायः ही कहा करते थे, ऋण छोड़कर मरना नहीं चाहिए नई बहू, वह दूसरे जन्म में भी आकर अपनी मांग रखता है। इसी बात का उनको भय है। किसी भी सूत्र से दोनों की भेंट फिर न होने पावे—जिससे सभी सम्बन्ध यहीं पर चिरकाल के लिए टूट जायें।

सविता ने कहा—'मैं समझ गई मंझले मालिक। इस जन्म में और उस जन्म में फिर मेरा कोई दावा तुम्हारे ऊपर न रह जाय। सब ही समाप्त हो जाय—यही न ?'

व्रज बाबू चुप हो रहे और जो अन्धकार अभी-अभी जरा हट गया था वह फिर इस मौनता के बीच से हजारों गुना बढ़कर वापस चला आया। पति के मुंह की ओर फिर वह देख न सकी। आँखें झुकाये मृदु कण्ठ से उसने पूछा—'तुम लोग घर कब जाओगे मंझले मालिक ?'

'जितना शीघ्र जा सकूं।'

'तो अब मैं जाऊँ ?'

'जाओ।'

सविता उठ खड़ी हुईं। समझ गईं सब खत्म हो गया है। उस भूकम्प की रात को रसातल का गर्भ चीरकर जो पाषाण स्तूप ऊपर फेंके जाकर दोनों के बीच व्यवधान बना दिया था, वह आज भी उसी प्रकार अक्षय ही बना हुआ है, उसका तिल भर भी नष्ट नहीं हुआ है। यह निरीह शान्त मनुष्य इतना कठोर हो सकता है आज के पहले इस बात को उसने कब सोचा था।

कमरे के बाहर पैर बढ़ाकर भी सविता सहसा ठिठक कर खड़ी हो गईं। बोलीं—'मुक्ति न पाओगे मंझले मालिक, तुम हो वैष्णव, कितने मनुष्यों के कितने ही अपराधों को तुमने अपने जीवन में क्षमा कर दिया है परन्तु मुझे क्षमा न कर सके। यह ऋण तुम्हारा रह गया। एक दिन शायद यह जान जाओगे।'

व्रज बाबू उसी प्रकार मौन रहे। सन्ध्या हो चली, जाते समय रेणुका ने माँ को प्रणाम किया लेकिन कुछ कहा नहीं। यह नीरवता का मन्त्र उसने भी शायद अपने पिता से ही सीखा है।

शारदा को साथ लेकर सविता बाहर चली गईं, पर सवार होते ही निगाह पड़ गई कि राखाल, तारक को लेकर तेजी से उसी ओर आ रहा है।

तारक ने कहा—'नई माँ, एक बार उतर कर खड़ा होना पड़ेगा। मैं प्रणाम करूँगा।'

बातचीत करना कठिन था। सविता ने इशारे से दोनों को गाड़ी पर सवार होने को कह कर किसी तरह केवल इतना ही कहा—'आओ बेटा, मेरे साथ तुम लोग भी चलो।'

११

राखाल ने एक सप्ताह पहले आकर कहा—'नई माँ, सत्रह नम्बर के घर में आप तो जाएँगी नहीं—आज शाम को यदि मेरे घर एक बार अपनी पद-धूलि दें।'

'क्यों राजू ?'

'काका जी के लिए कुछ फल-मूल खरीद लाया हूँ—इच्छा है कि उनको थोड़ा जलपान कराऊँ—वे आने को राजी हो गये हैं।'

'क्या मुझको उन्होंने बुलाया है ?'

'वे भले ही न बुलावें, मैं तो बुला रहा हूं मां। कल वे लोग चले जायंगे गांव, उन लोगों को ट्रेन पर चढ़ा देने को कह गये हैं।'

सविता जानती थीं कि ब्रज बाबू कहीं भी कुछ नहीं खाते, उनको राजी करने के लिए राखाल को बहुत प्रयत्न करना पड़ा है—शायद उसने सोचा है कि इस उपाय से ही दोनों की भेंट फिर हो जाय। राखाल के आवेदन के उत्तर में सविता को उस दिन बहुत चिन्ता करनी पड़ी थी, स्नेह से उसकी ओर चुपचाप देख कर अन्त में उसने कहा—'नहीं बेटा, मैं जाऊँगी नहीं। मुझे देख कर वे सिर्फ दुःख ही पाते हैं, उनको मैं और दुःख देना नहीं चाहती।'

इसके बाद एक सप्ताह बीत चुका है। राखाल से सूचना मिली है कि ब्रज बाबू लड़की को लेकर गांव को चले गये हैं। उनके इस विवाह की स्त्री, कन्या रह गई हैं कलकत्ते में अपने भाई के संरक्षण में। राखाल ने कहा है कि उन लोगों को कोई रंज नहीं है, क्योंकि रुपये का कष्ट नहीं है। मकान के किराये से इन दोनों का समय अच्छी प्रकार कटेगा। जेवर की पूंजी भी तो है।'

शाम को अकेली बैठी सविता इन्हीं बातों को सोच रही थीं। बारह वर्षों तक चलने वाला प्रतिदिन का सम्बन्ध, फिर भी, कितना शीघ्र, कितने सहज में ही वह दूर हो जाता है। उनका अपना भाग्य किस दिन फूट गया उस दिन सवेरे भी वह जानती नहीं थीं, रात भी कटेगी नहीं सब छोड़कर उन्हें मार्ग में निकल जाना पड़ेगा। अत्यन्त दुःख-स्वप्न में भी क्या सविता कल्पना कर सकती थीं कि इतनी बड़ी हानि कोई सहन कर सकता है ? फिर भी सहनी ही तो पड़ी ! बारह वर्ष बीत गये लेकिन आज भी वे उसी तरह जीवित हैं—उसी तरह दिन पर दिन बिना बाधा के कटते गये, कहीं भी रुकने का काम नहीं।

यह विडम्बना क्यों आ गई आज तक भी इसका कारण वह स्वयं नहीं जानतीं। जितना ही सोचती रही है, आत्मधिक्कार से जल-भुन कर जितनी

वार अपना विचार आप ही करने गई है उतनी ही बार उनको मालूम होता रहा है कि इसका अर्थ नहीं है, कारण नहीं है-–इसका मूल अनुसन्धान करने जाना व्यर्थ है। या शायद ऐसा ही यह संसार है—अघटन इसी प्रकार अकारण ही घटित होकर जीवन-स्रोत दूसरी ओर बह जाता है। मनुष्य की बुद्धि कहीं अन्धी होकर मर जाती है, नालिश करने को जाने पर असामी का पता नहीं मिलता।

इधर रमण बाबू भी अब नहीं आते। वह आवें, यह इच्छा भी सविता नहीं करती; किन्तु विस्मित होकर सोचती है कि मना करते ही क्या सब सम्बन्ध सत्य ही समाप्त हो गया। निरन्तर एकत्र-वास के बारह वर्ष के क्या कोई चिह्न ही कहीं शेष नहीं रह गये—-सब एकदम पुंछ गये। शायद यह दुनिया ऐसी ही है! लेकिन यहां क्या केवल अपचय ही है? उपचय कहीं नहीं है? केवल क्षति ही है? तो फिर क्यों शारदा उसके पास आ पड़ी? उसकी लड़की के समान—मां के समान। घर के अनेक किराएदारों में वह भी एक थी। केवल नाम जाना हुआ था, चेहरा पहचाना हुआ था। कभी उसे सीढ़ियों पर देखा था, कभी आंगन में और कभी चलते-फिरते मार्ग में। वह संकोच के साथ हट गई है, आंखों में आंखें डालकर देखने का साहस नहीं किया। अकस्मात् ऐसी क्या बात हुई, किसने सविता के हृदय के अन्तस्तल में उसका घर बना दिया! किन्तु यही क्या चिरस्थायी है? कौन जाने कब वह घर मिटाकर इसी प्रकार सहसा अदृश्य हो जायगी?

और भी एक आदमी आये हैं विमल बाबू! मृदुभाषी धीर प्रकृति के आदमी हैं। थोड़ी देर के लिए आकर रोज खबर ले जाते हैं कि कहां कौन जरूरत है। हित चाहने की अत्यन्त अधिकता से उपदेश की धूमधाम नहीं है, वक्तृता के आडम्बर के साथ बैठकर बातचीत करने का आग्रह नहीं है, कुतूहल कटुता के साथ बाल की खाल निकालने वाले प्रश्न करने की प्रवृत्ति नहीं है। दो-चार साधारण बातें करके ही चले जाते हैं। समय जैसे उनका बंधा हुआ है। नियम और संयम के शासन ने जैसे इस मनुष्य के सभी कामों को, सभी व्यवहारों को बड़ी मर्यादा दे रखी है। तथापि उनकी दृष्टि से सविता डरती है। वह दृष्टि भूखे शिकारी पशु की नहीं है, वह दृष्टि भले आदमी की है,

इसी से भय है। उन आँखों में है आर्त्त की प्रार्थना, उन्माद का व्यभिचार नहीं है—केवल इसी कारण उसे शंका है—कहीं असावधानी में इसी मार्ग से कभी पराभव न आ जाय।

उनके आने पर दोनों में इस प्रकार बात होती है—

पूर्व की ओर के ढके हुए बरामदे में एक बेत की कुर्सी खींचकर बैठकर विमल बाबू कहते हैं—आज कैसी तबियत है ?

सविता कहती हैं—अच्छी ही तो है।

'लेकिन वैसी अच्छी तो दिखाई नहीं देती ? मुंह कैसा सूखा-सूखा है।'

'कहाँ ? नहीं तो।'

'नहीं' कहने से नहीं मानूंगा। खाने-पीने का कभी यत्न नहीं करतीं। अवहेलना करने से भला शरीर कैसे टिकेगा ? दो ही दिन में टूट जायगा।'

'नहीं, टूटेगा। मेरा शरीर बहुत बलवान है।'

विमल बाबू इसके उत्तर में थोड़ा हँसकर कहते हैं—शरीर बलवान होने से ही मानो एक आफत बन गया है। उसे तोड़ डालने की इस समय आवश्यकता है—क्यों ? कहिए तो सच है न ? सविता बड़ी कठिनाई से आँसू रोककर चुप हो जाती है। विमल बाबू कहते हैं, मोटर यों ही पड़ी है, बेकार ड्राइवर को वेतन देती हैं। तीसरे पहर जरा हवा खाने, घूमने क्यों नहीं निकल जातीं ?

'खाली घूमने तो मैं कभी नहीं जाती विमल बाबू।'

सुनकर विमल बाबू फिर जरा हंसकर कहते हैं—यह ठीक है। बिना काम के घूमने का अभ्यास मुझे भी नहीं है ! आज राखाल बाबू आये थे ?

'नहीं।'

'कल भी तो नहीं आये थे ?'

'ना, चार-पांच दिन से उसे नहीं देखा। शायद किसी और फालतू काम में फंसा है।'

'फालतू काम में ? यही उसका स्वभाव है क्या ?'

'हाँ, यही उसका स्वभाव है। बिना किसी स्वार्थ के पराई बेगार भुगतने में वह बेजोड़ है।'

विमल बाबू अन्यमनस्क भाव से कुछ देर चुप बैठे रहते हैं। दूर पर शारदा दीख पड़ती है। वह हाथ के इशारे से बुलाते हैं। कहते हैं—आज तुमने मुझे पीने के लिए पानी नहीं दिया बेटी ? तुम्हारे हाथ के पानी और पान के बिना मुझे तृप्ति नहीं होती।

शारदा पानी और पान लाकर देती है। वह एक गिलास पानी समाप्त करके और पान मुंह में देकर उठ खड़े होते हैं। कहते हैं—अच्छा तो आज चलता हूं।

सविता आप भी उठ खड़ी होती है कहती है—अच्छा।

तीन-चार दिन इसी प्रकार की बातचीत चलने के बाद उस दिन विमल बाबू जब उठने लगे तो सविता ने कहा—आज मैं आपके काम की थोड़ी हानि करूंगी। अभी न जा सकेंगे, जरा बैठना होगा।

विमल बाबू बैठ गये। बोले—यह आपसे किसने कहा कि जरा बैठने से मेरे काम में हानि होगी ?

सविता ने कहा—किसी ने कहा नहीं, मेरा अनुमान है। आपको कितने ही काम हैं—व्यर्थ समय तो नष्ट होगा ही ?

विमल बाबू ने कहा—यह मैं नहीं जानता। लेकिन क्या इसीलिए आप मुझसे किसी दिन बैठने के लिए नहीं कहतीं ? सच बताइएगा ?

यह बात सच नहीं है, किन्तु सविता ने इसके लिए बहस नहीं की। बोली—रमण बाबू से आपका मिलन होता है ?

'हां, अक्सर होता है।'

'वह अब यहां नहीं आते—आप जानते हैं ?'

'जानता क्यों नहीं ?'

'अब क्या वह इस घर में नहीं आवेंगे ?'

'यह मुझे नहीं मालूम। जान पड़ता है, आप बुला भेजें तो आ सकते हैं।'

सविता ने क्षणभर चुप रहकर कहा—आज सवेरे की डाक से एक दस्तावेज आई है। यह घर रमण बाबू ने मेरे हाथ बेचकर बिक्री-कबाला की रजिस्ट्री कर दी है। आप जानते हैं ?

'जानता हूं।'

'किन्तु देने की इच्छा ही यदि थी तो सीधे दान-पत्र न करके बिक्री करने का बहाना क्यों किया ? दाम तो मैंने दिये नहीं ।'

'किन्तु दान-पत्र अच्छी चीज नहीं है ।'

सविता ने कहा—सो मैं जानती हूँ विमल बाबू । मेरे स्वामी थे व्यापारी आदमी—इस समय उनके सभी कामों में मेरी पुकार होती थी । यह मुझे मालूम है कि मुझे दान करने का कारण दिखाने में ऐसी सब बातें लिखनी होतीं जो किसी स्त्री के लिए गौरव की नहीं हैं । तो भी मैं कहती हूँ कि इस मिथ्या से वही अच्छा था ।

इसके पहले ऐसा कोई कारण भी नहीं हुआ था और इस तरह सविता ने बातचीत भी नहीं की थी । विमल बाबू मन-ही-मन चंचल हो उठे । बोले—बात एकदम झूठ भी नहीं है नई बहू ।

यह 'नई बहू' सम्बोधन नया था । सविता का मुख देखकर यह नहीं जान पड़ा कि वह प्रसन्न हुई ; किन्तु कण्ठ-स्वर के सहज भाव को वैसा ही बनाये रखकर कहा—ठीक इसी बात का मैंने सन्देह किया था विमल बाबू । दाम आपने दिये हैं, लेकिन क्यों दिये ? उनका दान लेने में तो एक सान्त्वना भी थी ; किन्तु आपका देना तो निरा भीख देना है । यह मैं क्यों लूंगी, बताइए ?

विमल बाबू मौन होकर सिर झुकाये बैठे रहे ।

सविता ने कहा—उत्तर न देने से मैं दस्तावेज लौटाकर चली जाऊँगी विमल बाबू !

अब की सिर उठाकर विमल बाबू ने देखा । बोले—इसी भय से दाम दिये हैं कि आप कहीं चली न जायें । बिना दिये रह नहीं सका, इसी से आपका घर मोल ले लिया है ।

'रुपए उन्होंने ले लिये ?'

'हाँ, भीतर-ही-भीतर रमण बाब को रुपयों की तंगी हो गई थी । वह और सम्भाल नहीं पा रहे थे ।'

सविता कुछ देर चुप रहकर बोली—मुझको भी कुछ सन्देह हो रहा था, लेकिन इतना नहीं सोचा था । फिर जरा चुप रहकर बोली—सुना है, आपके बहुत रुपए हैं । उतने रुपए शायद आपके लेखे कुछ नहीं हैं । तो भी वास्तविक

बात तो शेष ही रह गई विमल बाबू ! दे आप सकते हैं, लेकिन मैं लूंगी कैसे ? ना, यह न होगा—बार-बार चुप रहकर उत्तर टाल जाने से मैं नहीं मानूंगी। बताइए।

विमल बाबू ने धीरे-धीरे कहा—एक सच्चे मित्र का उपहार मान कर भी तो ले सकती हैं।

सविता ने उनके मुख पर नजर टिका कर जरा हंस कर कहा—लेना हो तो विवरण की कमी नहीं होती, यह मैं जानती हूं। आप मेरे मित्र नहीं हैं, यह भी मैं नहीं कहती। किन्तु इस बात को छोड़िए। यहां पर और कोई नहीं है, केवल आप हैं और मैं हूं। मुझसे कहने में संकोच हो, यह अधिकार पुरुष के निकट अब मेरा नहीं है। बताइए तो यह क्या सच है ? यही क्या आपके मन की बात है ?

विमल बाबू सिर उठाकर क्षण भर ताकते रहे। इसके बाद बोले—मन की बात आपको क्यों जताऊंगा ? जताने में तो लाभ नहीं है।

'लाभ नहीं है, यह भी जानते हैं ?'

'हां, यह भी जानता हूं।'

सविता ने निकलती हुई सांस को दबा लिया। इस स्वल्पभाषी शान्त मनुष्य के प्रतिदिन के आचरण को स्मरण करके उसकी आंखों में आंसू भर कर आने लगे। उन्हें रोक कर उसने कहा—मेरे जीवन के इतिहास को आप जानते हैं विमल बाबू ?

'ना, नहीं जानता। सिर्फ जो कुछ हुआ, जिसे अनेक लोग जानते हैं, मैं भी केवल उतना ही जानता हूं नई-बहू—उससे अधिक नहीं।'

सुनकर सविता जैसे चौंक उठी। बोली—तो क्या जो हुआ है, वह मेरे जीवन का इतिहास नहीं है विमल बाबू ? ये दोनों चीजें क्या एकदम पृथक हैं ? सच-सच बताइए तो।

उसके प्रश्न की व्याकुलता से विमल बाबू दुविधा में पड़ गये; किन्तु वैसे ही बिना किसी संकोच के कह उठे—हां, ये दोनों चीजें एक नहीं हैं नई-बहू। कम-से-कम अपने जीवन के द्वारा यही बात आज बिना किसी संशय के जान पाया हूं कि ये दोनों एक नहीं हैं।

इसका अर्थ यद्यपि स्पष्ट नहीं हुआ, तथापि इस बात ने सविता के हृदय में गहरी चोट की। चुपचाप मन-ही-मन में उसने बड़ी देर तक आन्दोलन करके अन्त को कहा—सुना तो है आपने कि मैं स्वामी को छोड़ कर रमण बाबू के साथ चली आई थी—फिर उस दिन उनका भी त्याग कर दिया है। मैं तो अच्छी औरत नहीं हूँ—फिर एक दिन अन्य पुरुष को ग्रहण कर सकती हूँ, यह बात क्या आपके मन में नहीं आती ?

विमल बाबू ने कहा—नहीं। यद्यपि उसने आना चाहा था पर उसी समय हटा भी दिया है।

'क्यों ?'

सुनकर, विमल बाबू ने हँसकर कहा—यह प्रश्न तो बच्चों का-सा हुआ। उसने यह किया है, अतएव उसे यही करना चाहिए, यह उत्तर आपको बच्चों के पढ़ने की पुस्तकों में मिलेगा। मैंने उससे अधिक पढ़ा है नई-बहू।

'पढ़ाया किसने ?'

'पढ़ाने वाला कोई एक नहीं है। कक्षा में घण्टे-घण्टे में मास्टर बदले हैं। उनमें से कोई याद है और कोई याद नहीं है। लेकिन जो हेडमास्टर हैं, जिन्होंने परख कर इन सब मास्टरों को नियुक्त किया था, उनको तो देखा नहीं, फिर आपके आगे उनका नाम कैसे लूँ—बताइए ?

सविता ने क्षणभर सोचकर कहा—जान पड़ता है, आप खूब धार्मिक मनुष्य हैं, क्यों विमल बाबू ?

विमल बाबू ने पूछा—धार्मिक मनुष्य आप किसे कहती हैं ? आपके स्वामी के समान ?

सविता ने चकित होकर प्रश्न किया—उन्हें क्या आप पहिचानते हैं ? उनके साथ परिचय है क्या ?

विमल बाबू ने उसके उद्वेग को लक्ष्य किया; किन्तु पहले के ही समान शान्त स्वर में कहा—हाँ जानता हूँ। एक दिन किसी तरह कुतूहल को दबा न सका—उनके पास गया। बड़ा प्रयत्न करने पर मिलन हुआ, बातचीत भी बहुत कुछ हुई।—नहीं नई बहू, उन्होंने जिस भाव से धर्म को लिया है, मैंने उस भाव से नहीं लिया, उन्होंने जैसा समझा है, वैसा मैंने नहीं समझा। उस

विषय में हम लोगों का कोई मेल नहीं है। मैं धार्मिक मनुष्य नहीं हूं।

आवेग और उत्तेजना से सविता के हृदय में हलचल मच गई। यह समझना शेष नहीं रहा कि सारे कुतूहल का मूल कारण वह आप है। वह रुक नहीं सकी, पूछ बैठी—वहां पर मेल न हो, किन्तु क्या कहीं पर आप दोनों मेल नहीं खाते? दोनों का स्वभाव क्या बिल्कुल विपरीत है?

विमल बाबू ने कहा—इसका उत्तर आपको नहीं दूंगा—उत्तर देने का समय अभी नहीं आया।

'कम-से-कम यह तो बताइए कि यह बात भी तब मनमें नहीं आई कि इस आदमी को कोई त्याग कर कैसे चली गयी?'

विमल बाबू ने हंसकर कहा—'कोई' माने आप ही तो? किन्तु आप तो त्यागकर नहीं चली आईं। सभी ने मिल कर चले आने के लिए लाचार किया था।

'यह भी आपने सुना?'

'सुना क्यों नहीं।'

'सभी कुछ?'

विमल—हां, सभी कुछ सुना है।

सविता की दोनों आंखों में आंसू भर आये। बोली, उन लोगों को मैं दोष नहीं देती; उन्होंने अच्छा ही किया था। स्वामी के संसार को अपवित्र न कर के मुझे आप ही चले आना चाहिए था। इतना कहकर उसने आंचल से आंसू पोंछ डाले फिर थोड़ी देर बाद कहा, लेकिन इतना सब जानकर भी आप मुझे क्यों प्यार करते हैं—बताइए तो?

'प्यार करता हूं, यह बात तो अभी तक मैंने नहीं कही नई-बहू?'

'नहीं। आपने कहा नहीं, इसी से तो इस बात को इस प्रकार सच्चे रूप में जान पाई हूं विमल बाबू। किन्तु सोचती हूं कि जिस आदमी ने इतना देखा है, मेरी सभी बातें जो सुन चुका है, उसने मुझसे क्या समझकर प्रेम किया? अवस्था मेरी ढल चुकी है, रूप भी नहीं रहा—जो कुछ शेष है, वह भी दो दिन में समाप्त हो जायगा—उसको आदमी क्या सोचकर प्रेम कर सका?

विमल बाबू ने उसके मुंह की ओर देखकर कहा—यदि मैंने प्रेम ही किया

हो नई-बहू, तो वह शायद संसार में बहुत कुछ देख चुकने के कारण ही संभव हुआ है। पुस्तक में पढ़े हुए पराये उपदेश को मानकर चलता होता तो शायद न कर सकता। किन्तु वह रूप और यौवन का लोभ नहीं है, यह बात यदि आपने सचमुच समझ ली हो, तो मैं कृतज्ञ हूँ।

सविता ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, यह बात मैं सचमुच समझ गई हूँ। किन्तु मैं पूछती हूँ, मुझे पाकर आपको क्या लाभ होगा? मुझे लेकर क्या करेंगे?

विमल बाबू ने कुछ उत्तर नहीं दिया, केवल चुपचाप उसकी ओर ताकते रहे। क्रमशः वह दृष्टि जैसे व्यथा से भर गई। सविता अधीर होकर कह उठी—इस प्रकार क्या केवल ताकते ही रहेंगे, मेरी बात का उत्तर न देंगे?

'इसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं है नई-बहू। मैं केवल यह जानता हूँ कि आपको मैं नहीं पाऊँगा—मेरे लिए पाने का मार्ग नहीं है।'

'क्यों नहीं है? आपने यह बात कैसे समझी?'

'समझा हूँ अनेक दुःख पाकर। मैं भी निष्कलंक या बेदाग नहीं हूँ नई बहू। एक दिन अनेक औरतों को ही मैंने जाना था। उस दिन ऐश्वर्य के बल से उन्हें छोटा करके लाया था—वे स्वयं भी छोटी हो गई और मुझे भी वही बना दिया। वे अब नहीं हैं—कौन कहाँ बह गई, इसकी भी सूचना आज नहीं है।'

जरा रुककर बोले—तब इस खेल में उतरने में मुझे कुछ रुकावट नहीं हुई, लेकिन आज पग-पग पर बाधा है।

सविता ने सिहर कर प्रश्न किया—केवल ऐश्वर्य से ही उनको फुसलाया था? किसी से वास्तविक प्रेम नहीं किया?

विमल बाबू ने कहा—किया क्यों नहीं! एक स्त्री आपकी ही तरह घर छोड़कर पास आई थी, लेकिन खेल समाप्त हो गया—उसे नहीं रख सका। मैं उसे दोष नहीं देता। किन्तु आज यह मुझे समझने को शेष नहीं है कि प्यार के धन को छोटा करके नहीं रखा जा सकता, उसे खोना ही पड़ता है। उस दिन रमण बाबू को भी तो इसी प्रकार खोते देखा है।

सविता ने प्रश्न किया—यही क्या आपको भय है?

विमल बाबू बोले, भय नहीं है नई-बहू, अब यही मेरा व्रत है—उस व्रत से डिगूँ नहीं, यही मेरी साधना है। आपकी लड़की को, मैंने देखा है, आपके स्वामी को देख आया हूँ। किस प्रकार सर्वस्व देकर ऋण चुका कर वह चले गये हैं, यह भी जान चुका हूँ, सुनने को मुझे कुछ शेष नहीं है। इसके पश्चात् मैं आपको कैसे पाऊँगा ? द्वार जो बन्द है। मैं जानता हूँ, छोटा करके आपको मैं किसी दिन पा न सकूँगा और इससे भी बढ़कर यह जानता हूँ कि छोटा न करके भी आपको पाने का तनिक भी मार्ग मेरे लिए खुला नहीं है। इसी से तो मैंने कहा था नई-बहू, कि आप मुझे अपना सच्चा मित्र मान कर ग्रहण कीजिए। यह घर उसी मित्र का दिया उपहार है। यह आपको छोटा करने का कौशल नहीं है।

सविता सिर झुकाये चुप बैठी रही। कितनी बातें उसके मनमें आईं-गईं, इसका कुछ ठिकाना नहीं। अन्त को सिर उठा कर उसने कहा—यह मित्रता कितने दिन टिकेगी विमल बाबू ? यह मिथ्या का आवरण क्यों टिकने लगा ? नर-नारी के मूल-सम्बन्ध में यह एक दिन हम लोगों को खींचकर नीचे उतार ही देगा। इसे कौन रोकेगा ?

विमल बाबू ने कहा—मैं रोकूँगा नई-बहू। आपकी अपेक्षा करता रहूँगा। किन्तु आपके मन को भुलाने का आयोजन नहीं करूँगा। यदि कभी अपना परिचय पाइए, मेरी तरह दोनों आँखों से देख कर दृष्टि यदि कभी बदले, तो मुझे अपने पास बुलाइएगा—जीता रहा तो दौड़ा आऊँगा—छोटा करके लेने के लिए नहीं—आऊँगा सिर पर उठा कर बिठाने के लिए।

सविता की आँखें छलछलाने लगीं। बोली—आपका परिचय पाने को अब शेष नहीं है विमल बाबू। आँखों की यह दृष्टि इस जीवन में नहीं बदलेगी। केवल आशीर्वाद दीजिए कि जो दुःख स्वयं ही बुलाकर लाई हूँ, उसे सह सकूँ।

विमल बाबू के नेत्र भी सजल हो उठे। बोले—दुःख कौन देता है, किधर से वह आता है, यह आज भी मुझे नहीं मालूम। इसीसे आपके अपराध का विचार करने नहीं बैठूँगा, केवल प्रार्थना करूँगा कि वह दुःख चाहे जिस प्रकार आया हो, चिरस्थायी न हो।

'लेकिन चिरस्थायी ही तो हो गया है।'

'यह भी नहीं जानता नई-बहू। मेरी आशा यह है कि संसार में अभी तुम्हें जानने को कुछ शेष है, अभी तुम्हारा सब कुछ देखना यहीं समाप्त नहीं हो गया। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम उस दिन सहज में ही इस दुःख का एक किनारा देख पाओ।'

सविता ने उत्तर नहीं दिया। फिर दोनों जने कई मिनट तक मौन रहे। सविता ने जब सिर उठाया, तब उज्ज्वल दीपक के प्रकाश में देखा गया कि उसकी पलकें आँसुओं से भीगकर भारी हो उठी हैं। उसने धीमे स्वर में कहा—तारक बर्दवान के किसी गाँव में मास्टरी करता है। उसने मुझे वहाँ बुलाया है। कुछ दिन के लिए उसके पास चली जाऊँ ?

'जाओ ?'

'तुम क्या कलकत्ते में ही रहोगे ?'

'रहना ही होगा। यहाँ एक नया कार्यालय खोला है; उसका बहुत-सा काम शेष है।'

सविता ने जरा हँसकर कहा—रुपए तो बहुत इकट्ठे कर लिये हैं—अब और इकट्ठा करके क्या करेंगे ?

प्रश्न सुनकर विमल बाबू हँसे, बोले—जमा नहीं किये, वे आप ही जमा हो उठे हैं नई-बहू, क्योंकि मैं उन्हें रोक नहीं सका। क्या करूँगा, यह नहीं जानता। सोचा है, समय होने पर एक आदमी से उनका प्रयोजन सीख लूंगा।

सविता ने उठकर पास की खिड़की खोल दी, फिर आकर कहा—इस घर की अब मुझे आवश्यकता नहीं थी।—सोचा था, अच्छा ही हुआ जो गया। एक झंझट मिटा। परन्तु तुमने यह नहीं होने दिया। ये किरायेदार रहे, इनको देखना।

'देखूंगा।'

'और एक अनुरोध मानोगे ?'

'क्या अनुरोध है नई-बहू ?'

'मेरी लड़की और मेरे स्वामी वन-वास में हैं। यदि समय मिले तो उनकी कुछ सुध-बुध लेना।'

विमल बाबू ने हँसते हुए जरा गर्दन हिलाई, कुछ कहा नहीं। इसका क्या

अर्थ है, यह सविता ठीक समझी नहीं, किन्तु हृदय के भीतर जैसे आनन्द की आंधी दौड़ गई। दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगाये—यह स्वामी के लिए या विमल बाबू को सो शायद वह आप भी नहीं जान पाई। घड़ी भर चुप रहकर उनके मुख की ओर ताककर कहा—अपने स्वामी की बात एक दिन तुमको अपने मुंह से ही सुनाऊंगी—उसे केवल मैं ही जानती हूँ और कोई नहीं। लेकिन मैं तुमसे पूछती हूँ, मैं जब बाप के घर छोटी थी, तब तुम क्यों नहीं आये, बताओ तो ?

विमल बाबू ने हँसकर कहा—इसका कारण यह कि जिन्होंने आज मुझे भेजा है, उन्हें उस दिन इसका ध्यान न था। उसी भूल का महसूल चुकाने में हम लोगों के प्राणों के ऊपर बीत रही है, किन्तु जान पड़ता है, इसी प्रकार उस बूढ़े विधाता के विचित्र ध्यान का रस जम उठता है—कभी उससे भेंट हो तो हम दोनों नालिश पेश कर देंगे। क्यों, ठीक है न ?

दूर पर शारदा को कई बार आते-जाते देखकर, उसे पास बुलाकर कहा—तुम्हारी माँ के भोजन में देर हो गई है—क्यों बेटी ? अब उठना चाहिए।

शारदा अत्यन्त अप्रतिभ होकर बार-बार प्रतिवाद करके कहने लगी—नहीं, कभी नहीं। देर हो गई है आपको। आप आज भोजन करके जाने पावेंगे।

विमल बाबू हँसकर उठ खड़े हुए। बोले—तुम्हारी केवल यही बात मैं न रख सकूंगा बेटी। मुझे बिना खाये ही जाना होगा। जाता हूँ।

सविता ने उठकर नमस्कार किया; किन्तु शारदा के भोजन करने के अनुरोध में सम्मिलित नहीं हुई।

विमल बाबू नित्य के समान आज भी प्रति नमस्कार करके धीरे-धीरे नीचे उतर गये।

१२

रमण बाबू अब आते नहीं, शायद अनबन हो गई। दोनों के मध्य अचानक क्या बात हो गई यह किरायेदार समझ न पाये। आड़ से वे देखते हैं सविता के शान्त उदास चेहरे में—पहले की तुलना में कितना अन्तर है। जेठ

का शून्यमय आकाश आषाढ़ के सजल बादलों के बोझ से मानो झुक कर उन लोगों के पास आ गया है। उसी प्रकार लताओं में, पत्तियों में, तृण-शस्यों में, पेड़-पेड़ में, अश्रुवाष्प की सकरुण स्निग्धता लगी हुई है, उसी तरह जल में, थल में, आकाश में, हवा में सर्वत्र प्रकट हुआ है उनकी गुप्त वेदना का स्तब्ध इङ्गित। उनकी बातों में, आचरणों में किसी दिन भी उग्रता नहीं थी, तो भी किसी प्रकार के अनजान व्यवधान से वह इतने दिनों तक केवल दूर-ही-दूर रहती थीं। अब वह दूरी मिट कर उसको खींच कर सबकी छाती के पास ले आई है। घर की स्त्रियाँ उस दिन यही बात शारदा से कह रही थीं। सोचती थीं शायद विच्छेद के दुःख ने ही उसको इस प्रकार बदल दिया है।

रमण बाबू साधारणतः भले आदमी थे, पराये के समान रहते थे, न किसी की भलाई में, न बुराई में। बीच-बीच में किराया बढ़ाने की आवश्यकता की घोषणा करने के अलावा अन्य कार्य उन्होंने नहीं किया। उनका चला जाना बहुतों को खटक रहा है तो भी वे लोग सोचते हैं कि उस जाने के कलङ्कित मार्ग में नई माँ की सभी कालिख अगर इतने दिनों में धुल जाय तो शोक के बदले में वे लोग आनन्द ही अनुभव करेंगे। यह मानो उनकी ग्लानि दूर हो जाने से वे लोग आप-ही-आप निर्मल होकर बच गये। केवल एक भय था कि यदि वे स्वयं न रहेंगे तो वे लोग ही कहाँ खड़े रहने को स्थान पायेंगे। आज सरकार ने इसी सम्बन्ध में उनको निश्चिन्त कर दिया। उसने कहा—'बुआ जी, घर की एक व्यवस्था हो गई है। तुम लोग जिस तरह हो उसी तरह रहो—तुम लोगों को कहीं भी घर ढूंढ़ने की आवश्यकता न पड़े, माँ ने कह दिया है।'

'शायद माँ अब किसी दूसरी जगह न जायेंगी शारदा?'

'जायंगी, लेकिन फिर लौट आवेंगी। उन्होंने कहा है घर छोड़ कर कहीं अधिक दिन नहीं रहेंगी।'

प्रसन्नता के मारे बुआ जी के नेत्रों में जल भर आया। शारदा को आशीर्वाद देकर वे यह शुभ समाचार दूसरों को देने चली गईं।

विमल बाबू के विदा हो जाने के बाद सविता नित्य अपने पूजा के कमरे में जाती है। पहले पूजा करने में उनका अधिक समय नहीं लगता था। किसी

दिन रात्रि के दस बज जाते थे, किसी दिन ग्यारह। इस समय शारदा की छुट्टी रहती थी, वह नीचे जाकर अपना घरेलू काम-धन्धा करती थी। आज कमरे में जाकर उसने देखा कि राखाल बिछौने पर बैठकर चिराग की रोशनी में उसका लिखा हुआ कागज पढ़ रहा है। उसने पूछा—'आप कब आये?' उसके बाद उसने कुण्ठित स्वर में कहा—'नहीं मालूम, कितनी भूल-चूक मुझसे हो गई है!'

राखाल ने मुंह ऊपर उठाकर कहा—'होने पर भी भूल-चूक को मैं सुधार लूंगा, लेकिन देख रहा हूं कि लिखावट तो कुछ भी आगे नहीं बढ़ी है?'

'नहीं, समय तो मिलता ही नहीं।'

'क्यों नहीं मिलता?'

'कैसे मिले बताइए न? मां के कुल काम तो मुझे ही करने पड़ते हैं।'

'नई-मां को नौकर-नौकरानियों की कमी नहीं है। उनसे कहती क्यों नहीं कि मुझे समय की आवश्यकता है, मुझको भी काम है। लेकिन यह बड़ा ही अन्याय है।'

राखाल के कण्ठस्वर में तिरस्कार का आभास था, लेकिन शारदा का चेहरा देखने से ऐसा नहीं जान पड़ा कि वह तनिक भी लज्जित हुई है। उसने कहा—'आपका ही क्या कम अन्याय है देवता? भिक्षा का दान छिपाने के लिए व्यर्थ का बोझ लाद दिया है मेरे कन्धे पर। दूसरे को अकारण सताने से आप ही ज्वर से भोगना पड़ता है, कमरे में अकेले पड़े रह कर भोगना पड़ता है, टहल करने वाला कोई आदमी नहीं मिलता। इतने दुबले क्यों हो गये?'

राखाल ने कहा—'दुबला नहीं हूं, ठीक ही हूं। लेकिन लिखना व्यर्थ का काम कैसे हो गया?'

शारदा ने कहा—'व्यर्थ का काम नहीं है तो क्या है। ज्वर हुआ है, वह भी छिपा सकने के कारण। ऐसी ही दशा है, अच्छी बात है, उसे भले ही मैं लिख डालूं लेकिन वह आपके किस काम में आवेगा सुनूं तो?'

'काम में न आवेगा? तुम कह क्या रही हो?'

शारदा ने कहा—'यही कहती हूं कि वह सब किसी भी काम में न लगेगा और यदि लगे भी तो मेरा क्या? मुझे आपने मरने नहीं दिया, अब बचा

रखने की गरज आपकी है। एक लाइन भी मैं नहीं लिखूंगी।'

राखाल ने कहा—'नहीं लिखोगी तो मेरा उधार रुपया अदा कैसे करोगी?'

'उधार का रुपया अदा न करूंगी, कर्जदार ही बनी रहूँगी।'

राखाल की इच्छा हुई कि उसका हाथ अपने हाथ में खींचकर कह दे ऐसा ही सही, लेकिन साहस नहीं किया। वरन् तनिक गम्भीर होकर ही उसने कहा—'जो कुछ तुमने लिखा है उसी से क्या तुम समझ नहीं सकतीं कि उन सबको सचमुच ही आवश्यकता है?'

शारदा ने कहा—आवश्यकता है मुझे केवल हैरान करने की—और कुछ भी नहीं। केवल कुछ-कुछ रामायण, महाभारत की कथाएँ—यहां से वहां से ली गई है—ठीक मानो धार्मिक लीला के दल की वक्तृता है। यह सब किस-लिए लिखूं?'

उसकी बात सुन कर राखाल जितना आश्चर्य में पड़ गया उससे कहीं अधिक वह विपत्ति में पड़ गया। वास्तव में लेख उसी श्रेणी के हैं, वह लीला के अभिनय रचता है, नकल करा कर लीला मण्डलियों के अधिकारियों को देता है, यही है उसकी असल जीविका, लेकिन उपहास के भय से मित्र-मण्डली में इसे प्रकट नहीं करता, कहता है कि लड़कों को पढ़ाता हूँ। लड़कों को पढ़ाता न हो ऐसी बात नहीं है, लेकिन इस आमदनी से उसके ट्राम का किराया भी नहीं जुटता। उसकी इच्छा नहीं है कि उपार्जन का यह रास्ता कहीं पकड़ में न आ जाय मानो यह बहुत ही अप्रतिष्ठा और लज्जाजनक काम है। उसके मन में यह संदेह भी पैदा हुआ कि शारदा को कितनी अशिक्षिता कहकर प्रचार किया था, शारदा वह सच नहीं है। बिल्कुल झूठ है। क्रोध से मन जल उठा। शारदा के प्रश्न के उत्तर में कोई बात ढूंढ़ने पर नहीं मिली तो वह बोल उठा—'शारदा, पहले तो तुम बहुत ही भली स्त्री मालूम पड़ती थीं, अचानक ऐसी दुष्ट हो कैसे गईं?'

शारदा ने अपनी हंसी को दबाकर कहा—'मैं दुष्ट हो गई हूँ?'

'हो नहीं गई हो? अच्छा, तुम्हारे विचार से आवश्यक काम क्या है जरा सुनूं तो?'

'बता रही हूँ। पहले यह बताइए कि छः-सात दिन आप क्यों नहीं आये?'

'तबीयत कुछ खराब थी।'

'झूठी बात।' यह कहकर शारदा उसके चहरे की ओर कुछ देर तक चुपचाप देखती रही फिर बोली—हुआ था बुखार, और वह भी खूब तेज, तबीयत खराब कह कर बात छिपाना चाहते हो। आपकी बुढ़िया नौकरानी भी बीमार पड़ी हुई थी। स्टोव जलाकर अपने लिए साबूदाना तैयार करने की आवश्यकता पड़ी थी। सुनती हूँ आपके इष्ट-मित्र बहुत हैं, उनमें से किसी को आपने सूचना क्यों नहीं भेजी ?'

यह प्रश्न राखाल के लिए नया नहीं—पिछले वर्ष भी प्रायः ऐसी ही अवस्था उत्पन्न हो गई थी। लेकिन वह चुप हो रहा। वह यह बात स्वीकार न कर सका कि दुनिया में जिसके मित्रों की संख्या अपरिमित है उसको ही दुःख के दिनों में बुलाने योग्य मित्रों का सब से अधिक अभाव रहता है।

शारदा ने कहा— उन लोगों को जाने दो, नई-माँ को सूचना क्यों नहीं भेजी ?'

प्रत्युत्तर में राखाल आश्चर्य के साथ बोल उठा—'नई-माँ ! नई माँ भला जायेंगी मेरे उस सड़े टूटे-फूटे डेरे में सेवा करने ? तुम क्या कह रही हो शारदा, इसका कोई ठिकाना ही नहीं है। लेकिन मेरी बीमारी की सूचना तुमको किसने दी ?'

शारदा ने कहा—'कोई भी क्यों न दे, लेकिन दुःख तो यह है कि उसने ठीक समय पर नहीं दी। सुनकर नई माँ ने कहा था कि, राजू ने मेरी रेणुका को बचाया था, दिन के समय रसोई पकाकर, सब के मुंह में अन्न जुटाकर रात को सारी रात जागकर, अपनी सारी पूंजी खोकर, डाक्टर-वैद्यों का ऋण चुका कर ! और वह खुद ही जब बीमार पड़ गया तब स्वयं गया बुखार की प्यास बुझाने के लिए पाइप से पानी लाने, चूल्हा॰ जला कर स्वयं ही उसने भूख मिटाने के लिए पथ्य तैयार किया, उसने दवा नहीं पाई अपना आदमी पास में न रहने के कारण। लेकिन मुझे वह सूचना क्यों देता बेटी—मेरे ऊपर तो उसको विश्वास ही नहीं है ! लड़की की बीमारी में दूसरे के नाम से जब वह सहायता माँगने आया था, उसे मैंने तो दी नहीं।'—यह सोचकर शारदा के नेत्रों से जल उमड़ चला। वह फिर कहने लगी—'लेकिन वह नई-माँ

की बात थी, मैंने क्या कुसूर किया देवता ? आज तक भी रुपया अदा न कर सकी इसीलिए गुस्सा किया ?'

राखाल हँसकर बोला—'यह तो तुमने चाय की प्याली का तूफान खड़ा कर दिया शारदा। नन्हीं-सी बात को तुमने कितनी पेचीदा बना दी है। ज्वर क्या किसी को नहीं होता ? दो ही दिनों में वह अच्छा हो गया।'

शारदा ने कहा—'वह जो अच्छा हो गया, वह है भगवान की कृपा हम लोगों के ऊपर—आपके लिए नहीं। वास्तव में आप बहुत बुरे आदमी हैं। विष खाकर मरने जा रही थी, आपने मरने नहीं दिया, अस्पताल में दिन-रात आप डटे रहे। लौट आने पर कुछ खाये-पिये बिना मरने जा रही थी तो उसमें भी रुकावट डाल दी। एक ओर तो यह दशा है फिर दूसरी ओर बीमारी की दशा में थोड़ी-सी सेवा करूंगी वह भी आपसे सहन नहीं हुआ। क्या आप हमेशा ऐसी ही शत्रुता करते रहेंगे, छुटकारा न दीजिएगा ? मैंने आपका क्या बिगाड़ा था ? इस जन्म का तो मैं अपना दोष नहीं देखती। यह क्या पिछले जन्म की सजा है ?'

राखाल उत्तर न दे सका, मौन होकर सोचने लगा—यह मुंह-जोर स्त्री हठात् ऐसी उद्दण्ड कैसे हो गई है ?

शारदा रुकी नहीं। दिन के समय की कड़ी रोशनी में इतनी बातें इतने बुरे निःसङ्कोच से वह कुछ भी न कह सकती थी, लेकिन यह था रात का समय, एकान्त कमरे के छायापूर्ण अभ्यन्तर में केवल वह थी और एक दूसरा आदमी था। वह कहने लगी—'मैं जानती हूं कि देवता, क्यों आपने आज तक शादी नहीं की। वास्तव में स्त्रियों के प्रति आपके मन में भारी घृणा है। लेकिन यह भी जानिएगा कि जिनको आपने आज तक देखा है, जिनकी इच्छाएं पूरी की हैं, पीछे-पीछे घूमते रहे हैं, वे ही सभी स्त्री जाति के उदाहरण नहीं। इस संसार में दूसरी स्त्रियां भी हैं।'

बड़े जोर से हँसकर राखाल बोला—'आज तुमको हो क्या गया है ?'

'सचमुच ही आज मुझे बहुत क्रोध आया है।'

'क्यों ?'

'इसलिए कि मुझे आपने बीमारी की सूचना नहीं दी।'

'सूचना देने से ही क्या होता ? वहां और कोई भी स्त्री नहीं है, अकेली क्या तुम मेरी सेवा कर पातीं ?'

'कर पाती नहीं तो चुपचाप घर में बैठी रहती ?'

'तुम्हारे पति, क्या कहते जब लौट आने पर वे यह बात सुन लेते ?'

'वे लौटकर आवेंगे नहीं यह बात मैं आपसे कई बार कह चुकी हूं। आप कहेंगे—तुम कैसे जान गईं ? इसका उत्तर यह है कि मैं न जानूंगी तो दुनिया में और कौन जान सकेगा ?'

इतना कहकर शारदा ने दम भर चुप रहकर कहा—'इसके अलावा एक बात और है। अकेली आपकी सेवा करने के लिए मेरा जाना ही दोष की बात होती, लेकिन इस घर में ही किसके भरोसे पर मुझे वे अकेली छोड़कर चले गये हैं ? यही जो आप मेरे कमरे में आकर बैठते हैं—यदि मैं जाने न दूं, पकड़ रखूं, तो कौन रोकेगा ?'

ऐसी बात किसी औरत के मुंह से राखाल ने कभी सुनी नहीं थी विशेषकर शारदा से। गम्भीर लज्जा से उसका चेहरा लाल हो उठा, लेकिन प्रकट होने से वह लज्जा बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं, इसीलिए जोर लगाकर हंसने का प्रयत्न करके वह बोला—'अकेला पाकर तुमने तो मुझसे बहुत-सी बातें कह डालीं, लेकिन उनके रहने पर क्या कह सकती थीं ?'

शारदा ने कहा—'तब तो कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। लेकिन आज आने से उनको दूसरी बात कहती। मैं कहती, जो शारदा तुमको प्राण से भी अधिक चाहती थी—उसने कितना सहा है, उसका गवाह सिर्फ भगवान् है—जिसको ब्याह का नाम लेकर ले आने पर धोखा दिया, झूठी थाली के समान जिसको फेंक दिया जिसके लिए कहीं भी लौटने का रास्ता खुला नहीं रखा, वह शारदा अब नहीं है, वह विष खाकर मर गई है। अपने नहीं तुम्हारे पापों का प्रायश्चित करने के लिए। यह शारदा दूसरी है। उसका पुनर्जन्म हुआ है। आज भी वह स्वतन्त्र है। उसके ऊपर अब किसी का अधिकार नहीं—दावा नहीं।'

यह सुनकर राखाल मौन होकर बैठा रहा।

शारदा कहने लगी—'आपको क्या याद नहीं है देवता, अस्पताल में

अप्रसन्न होकर आपने बार-बार पूछा था—'तुम कहाँ जाना चाहती हो ?' उत्तर में मैंने बार-बार रो-रोकर कहा था—'मेरे जाने को स्थान कहीं नहीं है। केवल एक ही स्थान था, वहीं मैं जा रही थी लेकिन वहाँ आपने जाने नहीं दिया।'

कुछ देर दोनों मौन रहे। राखाल ने कहा—'जीवन बाबू को आँखों से देखा नहीं है, केवल घर के लोगों के मुंह से उनका नाम सुना है। क्या वे तुम्हारे पति नहीं हैं ? यह झूठ ही है ?'

'हाँ सब झूठ है। वे मेरे पति नहीं हैं।'

'क्या तुम विधवा हो ?'

'हाँ।'

फिर कुछ देर दोनों चुप रहे। शारदा ने पूछा—'क्या मेरी कहानी ने मेरे प्रति आपके मन में घृणा उत्पन्न कर दी ?'

राखाल बोला—'नहीं शारदा, मैं इतना नासमझ नहीं हूँ। तुमसे भी अधिक अपराध किया था नई माँ ने, मैंने उनको भी घृणा नहीं की।' लेकिन कह चुकने पर तुरन्त ही वह अत्यन्त लज्जित होकर चुप हो रहा। उसी दम समझ गया, यह है अनधिकार चर्चा, यह है उसका अपना अपमान। यह कैसी भद्दी बात उसके मुंह से अकस्मात् निकल पड़ी।

शारदा ने कहा—'नई-माँ ने आपको माता के समान पाल-पोस कर बड़ा किया।'

राखाल ने कहा— 'हाँ, वे मेरी माँ ही हैं।' यह कहकर इस प्रसंग को झटपट दबाकर उसने कहा—'तुम्हारे माँ-बाप, आत्मीय स्वजन हैं या नहीं, तुम बताना नहीं चाहतीं, कम-से-कम उन लोगों के यहाँ तुम जाओगी नहीं यह मैं जानता हूँ, किन्तु अब क्या निश्चय किया ?'

शारदा ने कहा—'जो कर रही हूँ वही। नई-माँ का काम-काज करूंगी।'

'लेकिन यह क्या जीवन भर तुमको अच्छा लगेगा ?'

शारदा ने कहा—'यह दासीवृत्ति तो नहीं है—माँ की सेवा है। कम-से कम बहुत दिनों तक अच्छा लगेगा यह मैं जानती हूँ।'

राखाल ने कहा—'लेकिन बहुत दिन के बाद भी एक जीवन शेष रह

जाता है, तब अपने ही पैरों पर खड़ा होना पड़ता है, उसमें रुपये की आवश्यकता पड़ती है। केवल सेवा करके उस समस्या की मीमांसा नहीं होती है।'

शारदा ने कहा—'चाहे कितने ही रुपयों की आवश्यकता क्यों न पड़े आपका लिखने का काम मैं न कर सकूंगी। बस एक छोटा-सा पत्र लिख कर बिछौने पर रख दूंगी, कोई भी एक आदमी उसे पढ़ कर मेरे तकिये के नीचे रुपये रख जायगा। उसी से मेरा काम चल जायगा।'

राखाल ने हँसकर कहा—'वह तो भीख लेना हुआ।'

शारदा भी हंस पड़ी, बोली—'भीख ही लूंगी। कोई भी उसको जानेगा नहीं—घूस देकर लोग बतलाते नहीं—मुझे शर्म किस बात की है?'

राखाल की फिर इच्छा हुई कि हाथ पकड़कर उसको अपने पास घसीट लावे और धृष्टता के लिए दण्ड देवे। लेकिन फिर साहस में रुकावट पड़ी—समय निकल गया।

दासी ने बाहर से पुकार कर कहा—'दीदी जी, तुमको माँ बुला रही हैं।'

'माँ की आह्निक पूजा क्या समाप्त हो गई?'

'हाँ, हो गई है!' कहकर वह चली गई!

शारदा ने कहा—'आप चलिएगा नहीं माँ से भेंट करने?'

राखाल ने कहा—'तुम जाओ, मैं बाद में आऊंगा।'

'बाद में क्यों? चलिए न दोनों ही एक साथ चलें।' कहकर वह दबी हुई हँसी की एक तरंग उठाकर द्वार खोलकर तेजी से चलती गई।

राखाल नेत्र बन्द करके बिछौने पर लेट गया। मन में यह विचार आया कि यह कमरा जिस रस माधुर्य से निविड़ हो उठा जीवित मनुष्य के हाथ की भाँति उसने उसके सब अंगों पर स्पर्श किया है, कितने दिनों के परिचित उस साधारण गृह के रहस्य की जैसे आज सीमा ही नहीं है।

उसके हृदय में आज यह किस बात की आकुलता है, किस बात के लिए स्पन्दन हो रहा है? वृक्ष के निगूढ़ अन्तःस्थल में यह कौन बोल रहा है? क्या बोलता है? स्वर धीमा अस्पष्ट ही कान में आ रहा है, भाषा समझ में क्यों नहीं आती? सैकड़ों स्त्रियों को वह पहचानता है। कितने दिनों के कितने ही आनन्दोत्सव उनके संग में, बातचीत में, गीत-गायन में, हँसी-खेल में बीते हैं;

उनकी स्मृति आज भी भूली नहीं है—मन के कोने में खोजने से आज भी वे दिखाई पड़ते हैं, लेकिन शारदा की केवल एक इसी स्त्री के मुंह की बातों से जो विस्मय आज मूर्ति में उमड़ उठा इस जीवन की अभिज्ञता में उसकी तुलना कहां ? यह नारी के प्रेम का रूप है ? उसकी तीस वर्ष की अवस्था में उस अनजान से क्या आज ही भेंट हुई ? इसके ही विजय-गान का क्या अन्त नहीं है, इसका ही कलंक गाकर क्या आज भी समाप्त नहीं किया गया।

लेकिन भूल नहीं है, भूल नहीं है—शारदा के मुंह की बातों से भूल समझने का अवकाश नहीं है। ऐसे सुनिश्चित असंशय के साथ जो आप ही आकर पास खड़ी हो गई, उसको नहीं कहकर वह किस संकोच से लौटा देगा, किस बृहत्तर की आशा से ? लेकिन तो भी दुविधा जागती है, मन पीछे हटना चाहता है, दुनिया कुण्ठा दिखाकर कहती है, शारदा विधवा है, निन्दिता है, वह मलिन है। मित्र-समाज में इसका जब स्त्री कहकर परिचय देगा वह किस दुस्साहस से ? फिर उसी दम याद पड़ती है पहले दिन की बात—वही अस्पताल में जाना। मरणासन्न नारी का फीका पीला चेहरा, मृत्यु की नीली छाया उसके ओठों पर, कपाल पर नेत्रों की पलकों पर—गाड़ी के बन्द दरवाजे के सूराखों से आती है रास्ते की रोशनी—उसके बाद यम-मनुष्य के बीच वह कैसी लड़ाई ? क्या इस दुःख से प्राण वापस पाना ? इन सब बातों को राखाल किस प्रकार भूलेगा ? किस प्रकार भूल जायगा वह उसी के हाथ में शारदा का पूर्ण समर्पण। उन्हीं दोनों नेत्रों का जल पोंछकर कहना—'अब आपकी आज्ञा बिना मरूंगी नहीं।' उस दिन उत्तर में राखाल ने कहा था—'स्वीकृति चिरकाल तक स्मरण रहे।'

दासी ने आकर कहा—'राजा बाबू, आपको मां बुला रही हैं।'

'मुझको !' चकित होकर राखाल उठकर बैठ गया। उसने देखा कि नेत्रों का जल गिरकर तकिये का बहुत-सा भाग भीग गया। उसे पलटकर वह ऊपर चला गया और नई-मां के चरणों की धूलि लेकर पास बैठ गया। इतने दिन न आने और बीमारी की बात की नई-मां ने कुछ भी चर्चा नहीं की, केवल स्नेहार्द्र स्निग्ध कण्ठ से प्रश्न किया—'अच्छे तो हो बेटा ?'

राखाल ने सिर हिलाकर स्वीकार करके कहा—'एक बहुत बड़ा अपराध

मुझसे हो गया है माँ, मुझे क्षमा करना होगा। कई दिन ज्वार में पड़ा रहा, आपके पास सूचना न भेज पाया।'

नई-माँ कोई उत्तर न देकर मौन हो रहीं। राखाल कहने लगा—'वह इच्छा से नहीं हुआ, आप लोगों को ठेस पहुँचाने के लिए भी नहीं हुआ। याद आती है माँ, एक दिन जितना परेशान मैंने किया उतना आपकी रेणुका ने भी नहीं किया। उसके बाद एक दिन अचानक धरती बदल गई, दुनिया में इतना तूफान आया है उसी समय मुझे पता चला। ठाकुर जी की कोठरी में जाकर रोकर मैं कहता था—'गोविन्द जी, अब तो मैं सहन नहीं कर सकता, हमारी माँ को लौटाकर ला दो।' मेरी प्रार्थना को इतने दिनों में ठाकुर जी ने स्वीकार किया है। अपनी उसी माँ का मैं अपमान करूंगा ऐसी बात आपने किस प्रकार सोच डाली!'

नई-माँ ने धीरे-धीरे कहा—'तो किस अभिमान से तुमने सूचना नहीं भेजी बेटा? दरबान को भेजकर जब मैं पता लगाने गई तब कुछ कहने का भी मार्ग तुमने नहीं छोड़ा था।'

राखाल ने हँसते हुए कहा—'यह केवल भूल हो जाने के कारण। आदत तो नहीं है, दुःख के दिनों में याद नहीं पड़ता कि तीन लोक में मेरा कहीं भी कोई था।'

नई-माँ ने उत्तर नहीं दिया—'केवल उसका हाथ पकड़कर और भी निकट उसे खींच लाकर स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरा।

शायद शारदा आड़ में से सुन रही थी। सामने आकर उसने कहा—'देवता को भोजन करके जाने के लिए कह दीजिए माँ, घर पर जाकर तो उन्हें स्वयं ही रसोई पकानी पड़ेगी।'

नई-माँ ने कहा—'तुम स्वयं ही कह सकती हो, बेटी।' उसके बाद मुस्कराकर वे बोलीं—'यह बात वह प्रायः कहा करती है राजू। तुमको अपने ही हाथ से रसोई पकानी पड़ती है इसे मानो वह सह नहीं सकती—उसके हृदय में चोट न पहुँचती है। उसको एक दिन तुमने बचाया था इस बात को शारदा एक दिन के लिए भी नहीं भूलती।'

दम भर के लिए राखाल लज्जा से लाल हो गया। वह कहने लगीं—

'ऐसी स्त्री को किस तरह उसका पति त्यागकर चला गया यही मैं सोचती रहती हूं। जितनी बुरी घटनाएं हैं क्या उनको केवल स्त्रियों के भाग्य में ही विधाता लिख देते हैं।'

शारदा ने कहा—'इस बार उनको शादी करने को कह दीजिए मां। आपके आदेश को वे कभी अस्वीकार न कर सकेंगे।'

तभी सविता कोई बात कहने जा रही थीं, लेकिन राखाल ने झटपट रुकावट डाल दी। कहा—'तुमने मुझे केवल दो-चार दिन ही देखा है, लेकिन उन्होंने मुझे पाल-पोस कर आदमी बनाया है—मेरे स्वभाव को पहचानती हैं। अच्छी तरह जानती हैं कि उसके नहीं हैं घर-द्वार, नहीं है आत्मीय-स्वजन, नहीं है उपार्जन करने की शक्ति-सामर्थ्य, वह है बिलकुल असमर्थ, किसी प्रकार लड़के पढ़ाकर दोनों समय के भोजन की व्यवस्था करता है। उसको किसी के लिए बेटी देना सिर्फ बेटी को मार डालना है। ऐसा अन्यायपूर्ण आदेश मां कभी नहीं देंगी।'

शारदा ने कहा—'लेकिन देंगी तो ?'

राखाल ने कहा—'देंगी तो अपना सौभाग्य समझूंगा।'

महाराज ने आकर सूचना दी—'भोजन तैयार है।' राखाल समझ गया कि यह आयोजन शारदा ने ऊपर आकर ही किया है।

बहुत दिनों के पश्चात् सविता उसको खिलाने के लिए बैठीं। बोलीं—'राजू, तारक जहां नौकरी करता है सुनती हूं वह बिल्कुल ही दामोदर के किनारे है। मुझको बड़े ही चाव से कह रहा है कि कुछ दिन उसके यहां जाकर रहूं। मैंने तय किया है कि वहां हो आऊं।'

'बुलाने के लिए उसने चिट्ठी लिखी है क्या ?'

'चिट्ठी तो नहीं, दो दिन की छुट्टी लेकर वह स्वयं ही आया था कहने के लिए। बहुत अच्छा लड़का है! जैसा विनयी है वैसा ही विद्वान् है। दुनिया में वह उन्नति अवश्य करेगा।'

राखाल ने साश्चर्य मुंह ऊपर उठाकर कहा—'तारक कलकत्ता आया था ? मैं जानता नहीं।'

सविता ने कहा—'जानते नहीं हो ? मालूम होता है कि मिलने का वह

समय न निकाल सका। केवल दो ही दिन की छुट्टी थी न ?'

राखाल चुप हो रहा—सिर झुकाकर भोजन का कौर मलने लगा। उसे याद पड़ गया कि बीमारी के पहले दिन ही उसने तारक को एक पत्र लिखा था, उसमें बताया था, इन दिनों तबियत कुछ ठीक नहीं रहती, उसकी इच्छा है कुछ दिनों की छुट्टी लेकर देहात में जाकर मित्र के घर व्यतीत करे। उस पत्र का उत्तर अभी तक नहीं आया।

१३

उस रात्रि को खाना-पीना होने के बाद घर वापस जाते समय शारदा, राखाल के साथ-साथ नीचे उतर आई और उसने बहुत ही अनुरोध करके कहा—'मेरी इच्छा है कि आपको स्वयं रसोई पकाकर एक दिन खिलाऊँ। खाइएगा न ?'

'अवश्य खाऊँगा। जिस दिन तुम कहोगी।'

'तो परसों। इसी समय। चुपके-चुपके मेरे घर चले आइएगा, चुपके-चुपके खाकर चले जाइएगा !'

राखाल ने हँसते हुए पूछा—'चुपके-चुपके क्यों ? तुम मुझे खिलाओगी इसमें दोष क्या है ?'

शारदा ने भी हँसकर उत्तर दिया—'दोष तो खाने में नहीं है देवता, दोष है चुपके-चुपके खिलाने में। फिर भी अपने सिवा और किसी को जानने न देने का लोभ मैं छोड़ नहीं सकती।'

'सचमुच नहीं छोड़ सकती, या कहना पड़ता है इसलिए कह रही हो ?'

'इतने जोर का उत्तर मैं न दे पाऊंगी।'

यह कहकर शारदा ने हँसकर मुंह घुमा लिया।

राखाल की छाती के निकट सिहरन हो उठी, बोला—'अच्छा, ऐसा ही होगा, परसों ही आऊंगा।'

वह परसों आज आया है। रात अधिक नहीं हुई। शायद आठ बजे होंगे। सभी काम में लगे हैं, राखाल की ओर शायद किसी ने लक्ष्य नहीं किया।

रसोई का काम समाप्त करके शारदा चुपचाप बैठी थी। राखाल को कोठरी में आते देखकर चटपट उठकर बड़े आदर से अभ्यर्थना की और बिछौने पर बिठाकर बोली—मैंने सोचा था, शायद आपको आने में रात हो जायगी, या शायद भूल जायेंगे, आयेंगे ही नहीं।

'भूल जाऊँगा, यह तुमने कभी नहीं सोचा शारदा। यह झूठ है।'

शारदा ने हँसते हुए सिर हिलाकर कहा—हाँ, मैंने यह झूठ कहा। मैंने एक बार भी नहीं सोचा कि आप भूल जायेंगे। अच्छा, खाना लाऊँ?

'लाओ।'

सब पास ही तैयार रखा था। आसन बिछाकर उसने खाने को परोसा। सीमित आयोजन था, बाहुल्य कहीं भी नहीं। राखाल ने प्रसन्न होकर कहा—ठीक यही और ऐसा ही मैंने मन-ही-मन चाहा था शारदा, किन्तु इसकी आशा नहीं की थी। सोचा था, और भी चार जनों के समान आदर-यत्न के साथ बहुत अधिक आडम्बर करोगी। कितनी ही चीजें शायद पड़ी ही रहेंगी—फेंकी जायेंगी। लेकिन वह चेष्टा तुमने नहीं की।

शारदा ने कहा—सामान तो मेरा नहीं है देवता, आप ही का है। अपना होता तो अधिकता करने में भय न लगता, शायद करती भी और सामान नष्ट भी होता।

'अच्छी बुद्धि है तुम्हारी!'

'अच्छी ही तो है। नहीं तो आप सोचते कि इस औरत का अन्याय तो कम नहीं है। देना तो चुकाती नहीं और पराये रुपयों पर रईसी दिखाती है!'

राखाल ने हँसकर कहा—रुपयों का दावा मैंने छोड़ दिया शारदा। अब तुम्हें रुपए वापस न करने होंगे, उनके लिए चिन्ता भी न करनी होगी। केवल वह कापी दे दो, मैं लौटा ले जाऊं।

शारदा ने मुंह पर बनावटी गम्भीरता लाकर कहा—तो यह कहिए कि छोड़ा-छोड़ी हो गई? अब आप भी अपने रुपए न मांग सकेंगे, और मैं भी कुछ न मांग सकूंगी। पैसे के बिना मर जाऊं तो भी नहीं, क्यों?

राखाल ने कहा—तुम बड़ी दुष्ट हो शारदा। सोचता हूं, जीवन तुमको छोड़कर चला कैसे गया? वह क्या तुम्हें पहचान नहीं पाया?

शारदा ने सिर हिलाकर कहा—ना। यह मेरे भाग्य का लेख है देवता। स्वामी ने नहीं पहचाना, जो फुसलाकर निकाल लाये उन्होंने नहीं पहचाना और जिन्होंने यमराज के हाथ से छीन लिया वह भी नहीं पहचान पाये। क्या जाने मैं क्या हूँ, जो कोई पहचान ही नहीं पाता! जरा रुककर फिर कहा—मेरे स्वामी की बात छोड़िए, लेकिन जीवन बाबू की बात कहती हूँ। सचमुच ही वह मुझे पहचान नहीं सके। वह बुद्धि ही उनमें न थी।

राखाल ने कुतूहल के साथ प्रश्न किया—बुद्धि होती तो उन्हें क्या करना चाहिए था ?

'भागना नहीं चाहिए था। मुझसे कहना चाहिए था कि अब मेरे चलाये नहीं चलता, यह भार अब तुम ले लो।'

'वह कहते तो तुम यह भार अपने ऊपर ले लेतीं ?'

'लेती क्यों नहीं। आपने क्या यह सोचा है कि भार केवल मर्द ही ले सकते हैं, स्त्रियां नहीं ले सकतीं ? स्त्रियाँ भी ले सकती हैं। मैं दिखा देती कि किस प्रकार घर-गिरस्ती का भार लेना होता है।'

'इतना यदि जानती हो, तो आत्म-हत्या करने क्यों चली थीं ?'

'आपने सोचा है कि औरतें शायद इसी के लिए आत्म-हत्या करती हैं ? मर्दों की ऐसी ही समझ होती है।'—यह कहकर उसने उसी दम हंसकर कहा—मैंने आत्म-हत्या इसीलिए की थी कि आपको देख पाऊँगी, नहीं तो आपको नहीं पाती—आज भी आप मेरे लिए वैसे ही अज्ञात अपरिचित रहते।

राखाल के मुंह तक एक बात आ रही थी, किन्तु वह उसे दबा गया। उसे और कोई शिक्षा भले ही न मिली हो, किन्तु औरतों के आगे सावधान होकर बात करने की शिक्षा प्राप्त थी।

शारदा ने कहा—देवता, आपने ब्याह क्यों नहीं किया ? सच बताइए न।

राखाल ने मुंह का कौर गले के नीचे उतारकर कहा—तुमको इस बात के जानने से क्या लाभ है ?

शारदा ने कहा—क्या जानें क्यों, जानने को मेरा बहुत जी चाह रहा है। मैं कुछ न सुनूंगी, आपको बताना ही होगा।

राखाल ने कहा—शारदा, हमारे समाज में किसी का ब्याह होता है और

कोई आप स्वयं ब्याह करता है। मेरा ब्याह इसलिए नहीं हुआ कि कोई देने वाला नहीं था और स्वयं मैंने ब्याह करने का साहस इसलिए नहीं किया कि मैं गरीब था। जानती तो हो, संसार में अपना कहने को मेरा कुछ भी नहीं है।

शारदा ने बिगड़कर कहा—आपका यह कहना अन्याय है देवता। गरीब होने से क्या आदमी का ब्याह नहीं होता? उसे क्या ब्याह करने का अधिकार नहीं है? गरीब लोग क्या दुनिया में यों ही आवेंगे और चले जायेंगे, कहीं घर नहीं बाँधेंगे? किन्तु यह बात नहीं है, वास्तव में आप बड़े कायर आदमी हैं—जरा भी साहस नहीं है।

उसकी गर्मी देखकर राखाल ने हँसकर इस अभियोग को स्वीकार कर लिया। कहा—हो सकता है, तुम्हारा ही कहना सच हो, शायद सचमुच ही मैं कायर आदमी हूँ—अनिश्चित भाग्य के ऊपर निर्भर होकर खड़े होते भय करता हूँ।

'किन्तु भाग्य तो सदा ही अनिश्चित रहता है देवता। वह छोटे-बड़े का विचार नहीं करता—अपने नियम से आप चला जाता है।'

'यह भी जानता हूँ, लेकिन मैं जो हूँ—वही हूँ! मैं अपने को तो बदल नहीं सकूँगा शारदा!'

'भले ही न बदल सकें। जो स्त्री होकर आपके पास आवेगी, वह आपको बदलने का भार लेगी—नहीं तो वह स्त्री काहेकी? ब्याह आपको करना ही होगा।'

'करना ही होगा, क्यों?'

शारदा ने अब की कण्ठ-स्वर पर पहले से अधिक बल देकर कहा—हाँ करना ही होगा, नहीं तो मैं किसी प्रकार न छोड़ूँगी। अभी आप कह रहे थे कि कोई ब्याह कराने वाला आदमी न था, इसी से ब्याह नहीं हुआ। इतने दिन पश्चात् आपका वह आदमी मैं आई हूँ। मैं सिखा दूँगी कि किस तरह गरीब का घर चलता है, किस तरह वहाँ भी जो कुछ पाने का है सब पाया जाता है। कंगाल के समान आकाश में हाथ फैलाकर केवल हाय-हाय करके मरने के लिए ही भगवान् ने गरीबों को नहीं उत्पन्न किया है—यह विद्या मैं उसे दे आऊँगी!

उसकी बातें सुनकर राखाल को सचमुच बड़ा विस्मय हुआ; किन्तु मुंह से बोला—यदि वह यह विद्या न सीख पावे—सीखना यदि न चाहे, तो दुःख का भार कौन बँटावेगा शारदा ? किसके पास जाकर शिकायत करूँगा ?

शारदा अवाक् होकर कुछ देर तक राखाल के मुंह की ओर ताकती रह कर बोली—किसी के पास नहीं। ऐसा हो ही नहीं सकता देवता, कि स्त्री होकर वह इस बात को न समझे, स्वामी के दुःख में भाग न ले, बल्कि उस दुःख को और बढ़ावे। यह मैं किसी प्रकार विश्वास नहीं करूँगी ?

और एक बार राखाल ने अपनी जीभ को रोका। यह नहीं कहा कि मैंने कुछ कम औरतें नहीं देखी हैं शारदा; किन्तु वे तुम नहीं हो—शारदा को सभी नहीं पाते।

जवाब न देकर राखाल मौन हो खाने में लग गया। यह देखकर शारदा ने फिर पूछा—क्यों आपने तो कुछ नहीं कहा देवता।

अबकी राखाल ने सिर उठाकर हँसकर कहा—सब प्रश्नों का उत्तर क्या तत्काल ही मिल जाता है ? सोचने में समय भी तो लगता है ?

'समय तो लगता है, किन्तु कितना, जरा सुनूं ?

'यह आज ही मैं कैसे बताऊं शारदा ? जिस दिन मैं स्वयं इस प्रश्न का उत्तर पाऊंगा उस दिन तुमको भी बता दूंगा।'

'यही अच्छा है,' कहकर शारदा चुप हो रही। कोठरी के अंदर एक आदमी चुपचाप भोजन कर रहा है और अन्य आदमी वैसे ही चुपचाप उसकी ओर ताक रहा है। खाना लगभग समाप्त होने को था, इसी समय एक लम्बी साँस के शब्द से चौंककर राखाल ने आंख उठाकर कहा—यह क्या ? क्या बात है ?

शारदा ने सलज्ज मृदु हँसी हँसकर कहा—कुछ भी तो नहीं ! फिर कहा—परसों शायद हम लोग हरिनपुर जा रहे हैं देवता।

'परसों ? तारक के पास ?'

'हां। कल शनिवार है। तारक बाबू रात की गाड़ी से आवेंगे, दूसरे दिन रविवार को हम लोगों को ले जायेंगे।'

'जाना ठीक कैसे हुआ ?'

'कल वह स्वयं ही आये थे।'

'तारक कलकत्ते आया था ? कहाँ, मुझसे तो मिला नहीं !'

'एक ही, दिन की तो छुट्टी थी—दोपहर को आये और शाम की ही गाड़ी से लौट गये।'

कुछ देर बाद कहा, अच्छे आदमी हैं। वे बहुत विद्वान हैं न ?

राखाल ने कहा—हाँ।

'उनके समान आप भी विद्वान क्यों नहीं हुए देवता ?'

राखाल ने हाथ से अपना माथा दिखकर कहा—यहाँ ऐसा ही लिखा था इसलिए।

शारदा कहने लगी—और केवल विद्या ही नहीं, जैसा चेहरा-मोहरा है वैसा ही शरीर में बल भी है। बाजार से बहुत-सी चीजें कल खरीदी थीं—बहुत भारी बोझ था—जाते समय आप ही उसे उठाकर गाड़ी में रख आये। आप कभी भी न उठा सकते थे देवता।

राखाल ने स्वीकार किया—ना, मैं नहीं उठा सकता शारदा, मेरे शरीर में बल नहीं है—मैं बहुत निर्बल हूँ।

'लेकिन यह भी क्या भाग्य का लिखा है ? इसका अर्थ यह है कि आपने कभी चेष्टा नहीं की। तारक बाबू कहते थे कि चेष्टा से सब कुछ होता है, संसार में सब कुछ मिलता है।'

इस बात से हँसकर राखाल ने कहा—किन्तु वह चेष्टा ही किस चेष्टा से मिलती है, यह उससे तुमने क्यों नहीं पूछा ? उसका उत्तर शायद मेरे काम आता।

सुनकर शारदा भी हँस दी। बोली—अच्छी बात है, अब मैं उनसे पूछूँगी, लेकिन यह सब आपकी बातों का घुमाव-फिराव है। वास्तव में सच भी नहीं है और उनका उत्तर भी आपके किसी काम न आवेगा। मुझे मालूम पड़ता है, आप तारक बाबू से अप्रसन्न हैं—क्यों ?

राखाल विस्मय के साथ कह उठा—मैं तारक के ऊपर अप्रसन्न हूँ ! यह सन्देह तुमको कैसे हुआ ?

'क्या जाने किस प्रकार हुआ, लेकिन हुआ अवश्य, इसी से कह दिया।'

राखाल चुप हो रहा, फिर प्रतिवाद नहीं किया।

शारदा कहने लगी—उनकी इच्छा अब गांव में रहने की नहीं है। एक छोटी-सी जगह में छोटे से स्कूल में लड़कों को पढ़ाकर जीवन को बिता देना वह नहीं चाहते। वहां बड़े होने का सुयोग नहीं है, वहां उनकी शक्ति संकुचित हो गई है, बुद्धि सिर नीचा किये हुए है। इसीसे शहर में लौट आना चाहते हैं। यहां ऊंचा होकर खड़े होना उनके लिए कुछ कठिन नहीं है।

राखाल ने विस्मित होकर पूछा—ये बातें तुम्हारी हैं या तारक के मुंह की? शारदा ने कहा—ना, मेरी नहीं है, उन्हीं के मुंह की हैं। मां से कह रहे थे, मैंने सुनी है।

'सुनकर नई-मां ने क्या कहा?'

'सुनकर मां प्रसन्न ही हुईं। बोलीं—उस जैसे लड़के का गांव में पड़े रहना अन्याय है। उन्हें वहां न पड़े रहना पड़े, इसका उपाय वह करेंगी।'

'कैसे करेंगी?'

शारदा ने कहा—यह कुछ कठिन तो नहीं है देवता। मां विमल बाबू से कह दें तो कोई ऐसी बात नहीं जो न हो सके।

सुनकर राखाल उसकी ओर ताकने लगा। अर्थात् उसने पूछना चाहा कि इसका अर्थ क्या है?

शारदा समझ गई, राखाल अभी तक कुछ नहीं जानता। बोली—आप खा चुके, अब हाथ-मुंह धोकर आकर बैठिए—बतलाती हूं।

राखाल कई मिनट बाद हाथ-मुंह धोकर बिछौने पर आकर बैठा। शारदा ने उसे पानी दिया, पान दिया। इसके बाद कुछ फासले से फर्श पर बैठकर कहा—आप जानते हैं, रमण बाबू चले गये?

'चले गये? कहां मुझे तो सूचना नहीं। कहां गये?'

'कहां गये, यह वही जानें, लेकिन यहां अब नहीं आते। जाना उन्हें पड़ता ही—यह बोझ उठाने की शक्ति अब उनमें नहीं थी—किन्तु गये झूठा बहाना करके। इतने छोटे होकर शायद मेरे पास से जीवन बाबू भी नहीं गये। इतना कहकर वह उस दिन से आज तक की सारी घटना सिलसिले से बतलाकर बोली—यह तो होता ही, किन्तु उपलक्ष हुए आप। वह जो आप रेणु की बीमारी में दूसरे के नाम से रुपए मांगने आये और न पाकर बिना भोजन किये

ही चले गये, सो इस अन्याय ने माँ का हृदय तोड़ दिया। इस व्यथा को वह आज भी भूल नहीं सकी हैं। मुझे बुलाकर बोलीं—शारदा, राजू आज मुझे मिलना ही चाहिए, नहीं तो मैं मर जाऊंगी। चलो तुम मेरे साथ। जो कुछ माँ के पास था, सब पोटली में बाँधकर हम दोनों जनी छिपके आपके डेरे पर गई। उसके बाद ब्रज बाबू के घर गईं; किन्तु सब खाली था, सब शून्य। मकान किराये पर देने का नोटिस लटक रहा था। मालूम तो कुछ नहीं हुआ, समझ में सिर्फ यह आया कि कहीं किसी घर में, जिसका पता नहीं, उनकी लड़की बीमार पड़ी है, दवा के लिए पैसा नहीं है, सेवा करने को कोई आदमी नहीं है, शायद जीती है, शायद मर गई और वहां पहुँचने का उपाय भी नहीं—रास्ते का चिह्न पूरा तरह से मिट गया है।

माँ को लौटा लाई। उस समय बाहर के घर में खाना-पीना, नाच-गाना और आनन्द-कलरव हो रहा था। करने को कुछ था ही नहीं, केवल बिछौने पर पड़कर दोनों आँखों से वह लगातार आँसू बरसाने लगीं। मैं सिरहाने बैठ कर चुपचाप उनके माथे पर हाथ फेरने लगी। इसके सिवा उन्हें सान्त्वना देने का मेरे पास था ही क्या?

उस दिन विमल बाबू थे साधारण परिचित आमंत्रित अतिथि। उन्हीं के सम्मान के लिए था वह आनन्दोत्सव। रमण बाबू भीतर झपटते आये और बोले—चलो महफिल में। माँ ने कहा—नहीं, मैं अस्वस्थ हूँ। वे बोले—विमल बाबू करोड़पति धनी हैं; मेरे मालिक हैं। वह खुद आवेंगे इस कमरे में मिलने के लिए। माँ ने कहा—ना, यह न होगा। इससे अतिथि का असम्मान होगा, माँ यह बात न जानती हों, ऐसा न था; किन्तु पछतावे से, व्यथा से, भीतर के गोपन धिक्कार से शायद उस समय उनके लिए किसी को मुंह दिखाना असंभव था। लेकिन दिखाना ही पड़ा। विमल बाबू स्वयं आ पहुँचे। प्रशान्त सौम्य मूर्ति, बातें कोमल। बोले—शायद यह एक तरह से अधिकार-प्रवेश हुआ; लेकिन जाने के पहले आये बिना भी नहीं रह सका। कहिए, कैसी तबियत है? माँ ने कहा—अच्छी हूँ। उन्होंने कहा—यह अप्रसन्नता की बात है, आप स्वस्थ नहीं हैं। कुछ दिन पहले मैंने आपका चित्र देखा था और आज साक्षात् देख रहा हूँ। कितना अन्तर है, सो मैं ही जानता हूँ। यह नहीं

चल सकता, शरीर आपको स्वस्थ करना ही होगा। एक बार सिंगापुर चलिए न ?—वहाँ मैं रहता हूँ—समुद्र के पास ही मेरा एक बंगला है। खूब हवा आती है—प्रकाश की भी सीमा नहीं है। पहले का ही स्वास्थ्य फिर लौट आवेगा—चलिए।

माँ ने उत्तर में केवल यही कहा—नहीं।

'नहीं क्यों ? मेरी प्रार्थना स्वीकार न कीजिएगा ?'

माँ चुप रहीं। जा कैसे सकती थीं, लड़की बीमार और स्वामी गृहहीन !

उस दिन रमण बाबू शराब पीकर प्रकृतिस्थ न थे। एकदम आग-बबूला होकर कह उठे—जाना ही होगा। मैं आज्ञा देता हूँ, तुम्हें जाना ही पड़ेगा।

'ना, मैं नहीं जा सकूंगी।'

इसके बाद शुरू हुआ अपमान और कटु बातों का तूफान। वे बातें कितनी कटु थीं, यह मैं कह नहीं सकती देवता। बवंडर ने घूम-घूम कर भूतल पर जहाँ जितना गन्दगी का कूड़ा था, सब वहाँ जमा कर दिया—यह प्रकट होने में देर नहीं लगी कि माँ उस आदमी की स्त्री नहीं, रखेल हैं। सती का नकाब डाले छद्म वेष में केवल एक गणिका हैं। तब एक किनारे खड़े-खड़े मैंने अपनी बात सोचकर मन-ही-मन कहा—धरती, तू फट जा ! औरतों की यह कितनी बड़ी दुर्गति है, उसके पहले यह कौन जानता था !

राखाल एकटक अब तक शारदा के मुंह की ओर देख रहा था, क्षण-भर के लिए उसने उधर से आंख फेरी।

शारदा कहने लगी—माँ पत्थर की मूर्ति के समान स्तब्ध होकर बैठी रहीं।

रमण बाबू चिल्ला उठे—जाओगी कि नहीं, बताओ ? बैठी सोच क्या रही हो ?

माँ का कण्ठस्वर पहले की अपेक्षा भी मृदु हो आया। बोलीं, क्या सोचती हूँ जानते हो मंझले बाबू ? केवल यही सोचती हूँ कि तुम्हारे पास मेरे ये बारह साल कैसे कट गये ? सोते-सोते क्या सपना देखती रही ? लेकिन बस अब और नहीं, मेरी नींद खुल गई है। अब तुम मेरे घर न आना, जिससे अब हम दोनों एक दूसरे का मुंह न देख पावें। कहते-कहते उनका सारा शरीर जैसे

घृणा से बार-बार सिहर उठा।

अब की रमण बाबू पागल हो उठे। बोले—यह घर किसका है? मेरा है। मैंने तुमको दिया नहीं।

माँ ने कहा—यही अच्छा है, तुमने दिया नहीं। यह घर मेरा नहीं, तुम्हारा ही है। मैं कल ही इसे त्यागकर चली जाऊँगी। किन्तु रमण बाबू ने इस उत्तर की आशा नहीं की थी। एकाएक माँ का मुंह देखकर उन्हें चेत हुआ—तब डर कर नाना प्रकार से समझाना चाहा कि यह केवल उन्होंने क्रोध में कह डाला है; इसका कोई अर्थ नहीं।

माँ ने कहा—तात्पर्य है मँझले बाबू। हमारा सम्बन्ध समाप्त हो गया, अब किसी प्रकार न जुड़ेगा।

रात हो गई, रमण बाबू चले गये। जो उत्सव सवेरे इतनी धूमधाम से आरंभ हुआ था, वह इस तरह समाप्त होगा, यह किसने सोचा था!

राखाल ने कहा—उसके पश्चात्?

शारदा ने कहा—ये बातें तो छोटी हैं, इसके बाद की ही बात बड़ी है देवता। विमल बाबू की अभ्यर्थना उस दिन बाहर से समाप्त अवश्य हो गई, किन्तु भीतर की ओर से और रूप में लौट आई। माँ का यह अपमान उन्हें कुछ ऐसा लगा कि—वह गैर थे, सो बिल्कुल आत्मीय हो गये। आज उनसे बढ़कर मित्र हम लोगों का कोई नहीं है। रमण बाबू को दाम देकर उन्होंने यह घर खरीदकर माँ को लौटा दिया, नहीं तो कौन जाने, हम लोग कहाँ जाते?

लेकिन यह खबर राखाल को प्रसन्न नहीं कर सकी, उसका मन जैसे बैठ गया। बोला—विमल बाबू के पास बहुत रुपए हैं, वह दे सकते हैं। यह शायद उनके लेखे कुछ भी नहीं है, लेकिन नई-माँ ने इसे लिया कैसे? दूसरे से दान लेना तो उनका स्वभाव नहीं है।

शारदा बोली—शायद अब वह गैर नहीं हैं—शायद लेने की अपेक्षा न लेने में कहीं अधिक अन्याय होता।

राखाल ने कहा—इस भाव से समझना सीखने से सुविधा अवश्य होती है, किन्तु समझना मेरे लिए कठिन है।

इतना कहकर वह जबर्दस्ती की हँसी हँसते-हँसते उठ खड़ा हुआ। बोला—

रात हो गई, मैं जाता हूँ। तुम लोगों के लौट आने पर शायद फिर भेंट हो।

शारदा ने बिजली की तेजी से उठकर रास्ता रोक लिया। बोली—ना, मैं इस प्रकार आपको अचानक कभी न जाने दूंगी।

'तुम 'अचानक' किसे कहती हो ? रात हो गई है—जाऊँगा नहीं ?'

'जायँगे, जानती हूँ, लेकिन क्या माँ से मिलकर भी नहीं जायँगे ?'

'मेरी उन्हें क्या आवश्यता है ? भेंट करने की शर्त भी तो नहीं थी। चुपके-चुपके आकर चुपके-से चला जाऊँगा, यही तो तुमसे बात हुई थी।'

शारदा ने कहा—ना, वह शर्त अब मैं नहीं मानूंगी। मिलने की आवश्यकता नहीं है—आप कहते हैं ? माँ की अपनी आवश्यकता न हो, क्या आपकी भी नहीं है ?

राखाल ने कहा—मेरा जो प्रयोजन है वह हृदय के भीतर है—वह कभी न मिटेगा—किन्तु बाहर का प्रयोजन तो अब मैं कुछ देख नहीं पाता शारदा।

दबाने की चेष्टा करके भी राखाल अपनी गूढ़ वेदना को छिपा नहीं सका, कण्ठ-स्वर से वह प्रकट हो गई। उसके मुख पर दृष्टि टिका कर शारदा बड़ी देर तक मौन रही। उसके बाद धीरे-धीरे बोली—एक प्रार्थना करती हूँ देवता, क्षुद्रता और ईर्ष्या और चाहे जहां रहे, आपके मन में न रहें। देवता कह कर पुकारती हूँ, देवता ही आपको सदा मान सकूं। चलिए माँ के पास, आपके बिना कहे उनका जाना नहीं होगा।

'मेरे कहे बिना जाना न होगा ? इसका तत्पर्य ?'

'तात्पर्य मैंने भी पूछा था। उत्तर में माँ ने कहा—लड़का जब बड़ा हो जाता है तब उसकी राय लेनी होती है। मैं जानती हूँ कि राजू मना नहीं करेगा, लेकिन यदि वह आज्ञा न देगा तो न जा सकूंगी शारदा।'

यह सुनकर राखाल चुपचाप स्तब्ध हो रहा। हृदय के भीतर जो आग जल उठी थी, उसने बुझना नहीं चाहा, तथापि दोनों आँखों में आँसू भर आये।

उनके पास सहज भाव से जा सकूं, वह साहस आज मैं मन के भीतर ढूंढ़े नहीं पाता शारदा। किन्तु उनसे कहो, कल मैं चरणरज लेने आऊँगा।' कह कर वह चटपट बाहर निकल गया, उत्तर के लिए रुका नहीं।

१४

तारक ले जाने को आ गया है। आज शनिवार की रात को वह आया है और कल दोपहर की ट्रेन से नई मां को साथ लेकर यात्रा करेगा। साथ में दो दासियां और शारदा जायेंगी, अपने हरिनपुर वाले घर को तारक यथा सम्भव ठीक करके आया है। गांव में शहर की सब सुविधायें पाना कठिन है फिर भी तारक ने इस बात का ध्यान रखा है कि अतिथियों को किसी प्रकार की कोई कठिनाई न होने पाये, यहां आकर उन्हें अपने अभ्यस्त जीवन के विपरीत कुछ न करना पड़े। वह जब से आया है, बराबर यही आलोचना हो रही है। नई-मां बहुतेरा कहती हैं कि बेटा, मैं भी गृहस्थी के घर की कन्या हूं, गांव में ही जन्मी हूं, मेरे लिए तुम यों चिन्तित मत होओ। पर तारक सन्देह करके यही कहता है कि मां, मुझे विश्वास नहीं होता कि जो कष्ट साधारण आदमी सहन कर सकते हैं, उन्हें आप सहन कर लेंगी। मुझे भय है कि चाहे मुंह से कुछ न कहें लेकिन अन्दर-ही-अन्दर आपको कष्ट अवश्य होगा।

'नहीं तारक, नहीं। मैं बिलकुल ठीक रहूंगी।'

'ईश्वर करे ऐसा ही हो मां, लेकिन अगर आपको जरा भी कष्ट हुआ तो मैं आपको क्षमा नहीं करूंगा, यह मैं पहले बताये देता हूं।'

'यही सही। तुम देखना कि मैं वहां से मोटी होकर लौटूंगी।'

तब भी, गांव के जीवन की कितनी ही छोटी-छोटी असुविधाओं की बात तारक के मन में आती है। भांति-भांति की खाने-पीने की वस्तुएं एकत्रित करके रख आया है, लेकिन खाना-पीना ही तो सब कुछ नहीं है। कम-से-कम दो लालटेनों की जरूरत है। रात को आंगन में इधर-उधर चलते-फिरते कहीं पर भी अंधेरा न रहे। खाने-पीने के बर्तनों में भी कुछ परिवर्तन करना है। खिड़कियों के पर्दे उसने धोकर रख छोड़े हैं, फिर भी दो नये पर्दे खरीद लेना है। नई-मां चाय नहीं पीती हैं, लेकिन किसी दिन यदि पीने की इच्छा हुई तब क्या यही मैले कुचैले टूटे प्याले उनके सामने रखे जायेंगे, उसके लिए एक नया 'सैट' चाहिए। भजन-पूजा की चीजें तो खरीदनी ही पड़ेंगी। अच्छी 'धूप' गांव में नहीं मिलती, इसे भूलने से काम नहीं चलेगा, इसी प्रकार की कितनी

आवश्यक और अनावश्यक छोटी-मोटी चीजें इकट्ठी करने के लिए वह बाजार गया है, अभी तक लौटकर नहीं आया है ।

इधर बक्स और बिस्तर-बण्डल बांधे जा रहे थे, कोई काम कल के लिए रख छोड़ना शारदा को भाता नहीं था कि विमल बाबू आ पहुँचे । रोज जिस प्रकार आते उसी प्रकार आकर पूछा—'नई बहू, कितने दिन ठहरोगी ?'

'जितने दिन ठहरने को तुम कहो, उतने ही दिन, उससे एक मिनट भी अधिक नहीं ।' सविता ने कहा ।

'इस बात को कोई अन्य सुनेगा तो कुछ दूसरा ही अर्थ लगायेगा नई-बहू ।' विमल बाबू बोले ।

'अर्थात् नई-बहू के सिर पर एक नया कलंक लगायेगा, यही तुम्हें भय है न ?' कहकर सविता धीरे से हंसी ।

विमल बाबू भी हँस पड़े और बोले—'भय तो है ही, लेकिन मैं उसे होने ही किस प्रकार दे सकता हूं ?'

'नहीं होने दे सकते यह मैं जानती हूँ और यह मुझे भरोसा भी है । इतने दिनों तक अपने विचार और बुद्धि से काम लिया अब सोचती हूँ, इन दोनों को छुट्टी दूंगी, कि क्या मिलता है, भाग्य क्या दिखलाता है ? तुम सोचते होगे, मुझे यह बुद्धि किसने दी ? किसी ने नहीं । उस दिन जब तुम चले गये तो मैं ऊपर बरामदे में खड़ी होकर देखती रही, सड़क के नुक्कड़ पर जाकर तुम्हारी गाड़ी आंखों से ओझल हो गई, देखने के लिए कुछ न रहा, पर मन मेरा जैसे तुम्हारे पीछे हो लिया और तुम्हारे साथ-साथ वह कहां तक भागता चला गया, ठिकाना नहीं । फिर लौटकर कमरे में आ बैठी । अकेले बैठे-बैठे सहसा मन में बचपन से लेकर उस दिन तक की कितनी ही बातें आने-जाने लगीं और तब अचानक ही मेरा मन क्या बोल उठा, जानते हो ? बोला कि सविता ! यौवन तेरा ढल चुका, रूप फीका पड़ गया, फिर भी यदि वे तुमसे स्नेह करते हैं तो वह 'मोह' नहीं, सत्य स्नेह है । सत्य कभी धोखा नहीं देता, उससे तुझे कोई भय नहीं है । जो स्वयं असत्य रूप नहीं है, वह किसी भी तरह तेरे सिर पर आपत्ति नहीं आने देगा, इसका विश्वास रख ।'

'मैं तुम्हें सत्य स्नेह कर सकता हूँ, इस बात पर तुम्हें विश्वास है नई-

बहू ?' विमल बाबू बोले।

'हाँ, विश्वास है। नहीं तो तुम्हें मेरी आवश्यकता ही क्या थी? मुझमें तो रूप-यौवन कुछ नहीं है।'

'ऐसा भी हो सकता है कि मेरी दृष्टि से तुम्हारे रूप की सीमा न हो! और रूप भी मैंने दुनिया में कम नहीं देखा नई-बहू।' विमल बाबू ने हँस कर कहा।

सविता ने भी हँसकर उत्तर दिया—'तुम अनोखे आदमी हो, इसके अलावा और मैं क्या कहूँ ?'

'तुम स्वयं भी कम अनोखी नहीं हो नई-बहू! अभी उस दिन तो तुम इस तरह ठगी जा चुकी हो। इतना भारी आघात पा चुकी हो तब भी फिर कैसे इतनी जल्दी मेरा विश्वास कर लिया, मैं यही बार-बार सोचता हूँ।'

'चोट मेरे लगी, यह सच है, लेकिन ठगी नहीं गई हूँ। जीवन भर का कालापानी पाये हुए बन्दी का जीवन जैसे जेल में कटता है, और अचानक जैसे आँधी-तूफान उठा, बन्धन कट गया, जेल की चहारदीवारी खड़खड़ा कर गिर पड़ी। मैं जैसे किसी अनजाने पथ पर आ खड़ी हुई। उस समय जाने कहाँ से तुम आ गये! अपरिचित बन्धु ने आगे आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और बोले—'चलो!' क्या मैं इसी को ठगना कहूँ ? लेकिन यह तो बताओ कि मैं क्या कहकर तुम्हें पुकारा करूं ?' सविता बोली।

'मेरा नाम लेकर नहीं पुकार सकतीं ?'

'नहीं, मेरा मुंह नहीं खुलता।'

'बचपन में मेरी बहिन ने मेरा एक और नाम रख दिया था। उसकी भी एक कहानी है, लेकिन वह नाम चाहे तुम्हें पुकारते समय और भी अनोखा लगे।'

'क्या नाम है, बताओ तो, देखूं कह पाती हूं या नहीं।'

'मुहल्ले-टोले वाले 'दयामय' कहकर पुकारते थे।'

'इस 'नाम' की कहानी मैं नहीं सुनना चाहती, उसकी मैं स्वयं ही कल्पना कर लूंगी। परन्तु यह नाम मुझे बहुत पसन्द है, अब आज से मैं भी तुम्हें 'दयामय' नाम से ही पुकारूंगी।' सविता बोली।

'यही कहकर पुकारना, लेकिन मैं जो तुमसे पूछ रहा था, उसका उत्तर नहीं दिया ?'

'क्या पूछ रहे थे दयामय ?'

'तुम इतनी जल्दी मुझसे स्नेह कैसे करने लगी ?'

घड़ी भर सविता उनके मुंह की तरफ निहारती रही और फिर बोलीं—'स्नेह करती हूं, यह तो मैंने नहीं कहा। कहा था तुम मेरे बन्धु हो, मैं तुम्हारा विश्वास करती हूँ, कहा था—जो स्नेह करता है, उसके द्वारा कभी आपत्ति नहीं आ सकती।' क्षण भर दोनों मौन रहे, फिर सविता ने कुण्ठित स्वर से कहा—'मेरी बात सुनकर चुप कैसे हो गये आप ?'

प्रत्युत्तर में विमल बाबू सूखी हँसी हँसकर बोले—'कहने के लिए कोई बात नहीं है नई-बहू, तुमने सच ही कहा है। अपना स्नेह-पात्र कोई भी व्यक्ति अपने हाथों से अमंगल नहीं कर सकता। अपना कष्ट चाहे जितना हो, वह सहना ही पड़ेगा।'

'सहना ही पड़ेगा, इतना ही नहीं है, समझ लो, यदि तुम दुःख पाओ, तो मैं भी पाऊंगी।'

'दुःख पाना ही उचित है नई-बहू। फिर भी यदि दुःख पाओ तो उस वक्त तुम यह बात सोच लेना कि अकल्याण का दुःख इससे भी ज्यादा होता है।' विमल बाबू ने हँसकर कहा।

'यह बात तो तुम्हारे लिए भी लागू है दयामय।'

'नहीं, लागू नहीं है। इसका कारण, मेरे मन के अन्दर तुम कल्याण की मूर्ति हो लेकिन तुम्हारे लिए मैं ऐसा नहीं हूँ। हो भी नहीं सकता। लेकिन इसके लिए मैं तुमको दोष भी नहीं देता, अभिमान भी नहीं करता, जानता हूँ नाना प्रकार के कारणों से दुनिया ऐसी है। तुम्हारे आ जाने से पिछले दिनों की त्रुटि दूर हो जाती, भविष्य हो जाता उज्ज्वल, मधुर, शान्त, उसका कल्याण अनेक दिशाओं में फैल जाता—मुझको बड़ा बना देता···।'

'परन्तु मैं किस स्थान पर खड़ी होऊंगी ?'

'तुम स्वयं किस स्थान पर खड़ी होगी ?' कहकर विमल बाबू बिल्कुल ही मौन हो गये। कुछ देर चुप रहकर वे धीरे-धीरे बोले—'यह भी समझ सकता

हूँ नई-बहू कि तुम हो जाओगी दूसरों की निगाहों में छोटी, 'वे लोग लोभी कहेंगे तुमको, कहेंगे—और भी जो सब बातें, उनको सोचने में भी मुझे शर्म आती है, तो भी पूरे विश्वास से जानता हूँ कि एक बात भी उनकी सत्य नहीं है, उससे तुम बहुत ही दूर हो—बहुत ही ऊपर हो।'

सविता की आँखों में जल भर आया। ऐसे समय में भी जो मनुष्य झूठ न बोल सका उसके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता से परिपूर्ण होकर उन्होंने पूछा—'दयामय, मैं लाऊँगी तुम्हारे जीवन में परिपूर्ण कल्याण और तुम लाओगे मेरे लिए परिपूर्ण अकल्याण—ऐसी अनोखी घटना किस प्रकार सच होती है?'

'इसका उत्तर क्या है?'

विमल बाबू ने कहा—'इसका उत्तर मुझे देना नहीं है नई-बहू। मेरे लिए यही है मेरा विश्वास। तुम्हारे लिए भी अगर ऐसा ही विश्वास कभी सच होकर दिखाई पड़े तो उसी समय केवल मन का द्वन्द्व मिट जायगा, इसका उत्तर पाओगी—उसके पहले नहीं।'

सविता ने कहा—'उत्तर अगर कभी न मिले, सन्देह अगर न मिटे, तुम्हारा और मेरा विश्वास अगर चिर दिन ऐसे ही उल्टे रास्ते से चलता रहे, तो तुम मेरा भार ढोते फिरोगे?'

विमल बाबू ने कहा—'अगर उल्टे रास्ते से ही चलने लगे, तो भी तुमको मैं दोष न दूंगा। तुम्हारा भार आज मेरे ऐश्वर्य का देने वाला है, लेकिन यह ऐश्वर्य यदि किसी समय थकावट का बोझ बनकर दिखाई पड़े तो उस दिन मैं तुमसे छुट्टी माँगूंगा। आवेदन स्वीकार करो, मित्र की ही तरह बिदाई लेकर जाऊँगा—कहीं भी मालिन्य का चिह्न-मात्र भी रखकर न जाऊँगा। आज मैं यही शपथ ले रहा हूँ नई-बहू।

सविता उनके मुंह की ओर देखकर स्थिर होकर बैठी रहीं। दो-तीन मिनट के पश्चात् विमल बाबू ने हँसकर कहा—'क्या सोच रही हो बताओ न?'

'सोच रही हूँ कि संसार में ऐसी भयानक समस्या का उद्भव होता है क्यों? एक का प्रेम जहाँ असीम है, दूसरा उसको ग्रहण करने का रास्ता खोजने पर क्यों नहीं पाता?'

विमल बाबू ने हँसकर कहा—'खोज सच्ची होने पर ही मार्ग दृष्टि में पड़ता है, उसके पहले नहीं। वर्ना अन्धकार में सिर्फ टटोल-टटोलकर मरना पड़ता है। दुनिया में यह परीक्षा मुझे बहुत बार देनी पड़ी।'

'तुमको रास्ते का पता चल गया था?'

'हाँ, प्रार्थना में जहाँ कपटता नहीं थी, वहाँ ही मुझे पता चल गया था।'

'इसका क्या मतलब?'

'मतलब यह है कि जिस कामना में दुविधा है, दुर्बलता नहीं है उसे अस्वीकार करने की शक्ति कहीं भी नहीं है। इसका ही एक नाम है विश्वास! सच्चा विश्वास संसार में व्यर्थ नहीं होता नई-बहू।'

सविता ने कहा—'मैं जो कुछ भी क्यों न करूँ दयामय, तुम्हारी अपनी चाह में तो कपट नहीं है, तो फिर वह क्यों मेरे लिए व्यर्थ हो गया?'

विमल बाबू ने कहा—'व्यर्थ नहीं हुआ है नई-बहू। तुमको मैंने बड़ी मानकर माना था—यह मैं पा गया। तुमको पूर्णरूप से मैंने नहीं पाया यह मैं मानता हूँ परन्तु अपने जिस विश्वास को मैंने आज भी दृढ़ भाव से पकड़कर रखा है, लोभ के कारण, दुर्बलता के कारण उसको अगर छोटा न करूँ तो मेरी कामना एक दिन पूरी जरूर होगी। उस दिन तुमको परिपूर्ण रूप में ही मैं पाऊँगा। मुझे कोई भी वंचित न कर सकेगा—तुम भी नहीं।'

सविता चुपचाप देखती रहीं। जो असम्भव है वह किस तरह एक दिन सम्भव होगा इसको वे सोचकर समझ न सकीं। दयामय के पास झुककर, छाती टेककर, चलने का रास्ता है, लेकिन स्वच्छन्दता से सीधा होकर चलने का रास्ता नहीं है?

शारदा ने आकर कहा—'राखाल बाबू आ गये हैं माँ।'

'राजू? कहाँ है वह?'

'यहीं तो मैं हूँ।'—कहकर राखाल ने प्रवेश किया। उनके पैर की धूलि लेकर उसने प्रणाम किया, बाद को विमल बाबू को नमस्कार करके फर्श पर बिछे गलीचे पर जा बैठा।

सविता ने कहा—'तारक आया है मुझे ले जाने। कल जायंगी हम लोग हरिनपुर के मकान पर। तुमने सुना है राजू?'

राखाल ने कहा—शारदा के मुंह से मैंने सुन लिया है माँ।'

'नहीं बेटा ! उसको तो मैंने तुम्हारी राय लेने को कहा था।'

'क्या मेरी राय आपको शारदा ने बता दी है ?'

सविता ने कहा—'नहीं। परन्तु जानती हूँ वह तुम्हारा मित्र है, उसके पास तुमको जाने में कोई आपत्ति न होगी।'

राखाल पहले तो चुप हो रहा। उसके पश्चात् बोला—'मेरे मतामत की आवश्यकता नहीं माँ। वह आप लोगों से बढ़कर मेरा मित्र है।'

इस बात से सविता ने आश्चर्य में पड़कर पूछा—'इसका क्या अर्थ है राजू ?'

राखाल ने कहा—'सब बातों का अर्थ खोलकर बताना नहीं चाहिए। मुंह की भाषा से उसका अर्थ विकृत हो उठता है। उसे मैं बताऊंगा नहीं, लेकिन मेरे मतामत पर ही यदि आप लोगों का जाना या न जाना निर्भर करता हो तो आप लोगों का जाना न होगा। मेरी राय नहीं है।'

सविता ने अवाक् होकर कहा—'सब पक्का हो गया है राजू। मेरी बात पाकर तारक सामान खरीदने दूकान पर गया है, हम लोगों ही के लिए अपने गाँव में वह सारी व्यवस्था कर आया है—हम लोगों को जिससे कष्ट न होने पावे—अब तो बिना गये उपाय नहीं है बेटा ?'

राखाल ने सूखी हँस हँसकर कहा—'उपाय नहीं है, इसे मैं जानता हूँ। मेरा मत लेकर आप कर्त्तव्य निर्धारण करेंगी यह उचित भी नहीं है, जरूरी भी नहीं है। कल शारदा ने कहा था—आपने शायद उससे कहा है—लड़के के बड़ा हो जाने पर उसका मत लेकर काम करना पड़ता है। आपके मुंह की यह बात मैं सदैव कृतज्ञता के साथ याद रखूंगा, लेकिन जिस लड़के के केवल दूसरों की बेगारी करते-करते ही सब दिन कटते रहे हैं, उसकी आयु कभी बढ़ती नहीं। दूसरों के लिए भी नहीं, माँ के लिए भी नहीं। मैं आपका वही बेटा हूँ नई-माँ।'

सविता मुंह झुकाये चुपचाप बैठी रही। राखाल ने कहा—'मन में आप दुःख मत मानिएगा नई-माँ, लोगों की अवज्ञा के नीचे लोगों का बोझ ढोते फिरना मेरा भाग्य है। आपके चले जाने के बाद मुझे यदि कुछ करने का हो

तो आदेश दे जाइए। माँ की आज्ञा की मैं किसी भी कारण अवहेलना न करूँगा।'

शारदा मौन होकर सुन रही थी, एकाएक वह मानो और सह न सकी, बोल उठी—'आप बहुतों का बहुत कुछ ही करते हैं लेकिन इस प्रकार माँ को खटका देना ठीक नहीं है।'

सविता ने उसको आँख के इशारे से मना करके कहा—'शारदा, कहने दो, कहने दो राजू को, ऐसी बात मेरे मुँह से कभी न निकलेगी।'

राखाल ने कहा—'इसका अर्थ है आप तो शारदा नहीं हैं माँ। शारदाएँ मैंने बहुत देखी हैं। वे लोग कड़ी बात का अवसर मिलने पर उसे छोड़ नहीं सकते, उनसे कृतज्ञता का उनका बोझ हल्का हो जाता है। सोचती हैं लेन-देन चुकता हो गया।'

सविता ने सिर हिला कर कहा—'नहीं बेटा, उसके प्रति तुमने बहुत ही अविचार कर दिया। संसार में शारदा एक ही है, अनेक नहीं हैं राजू।'

शारदा माथा झुकाये बैठी थी, चुपचाप उठकर चली गई।

सविता ने मीठे स्वर में पूछा—'तारक के साथ क्या तुम्हारा झगड़ा हुआ है राजू?'

'नहीं माँ, उसके साथ मेरी भेंट ही नहीं हुई है।'

'हम लोगों को लिवा जाने की बात उसने तुमको नहीं बताई?'

'कभी नहीं। शारदा कहती है, मेरे मकान पर जाने का उसने समय ही नहीं पाया परन्तु अब नहीं माँ, मेरे जाने का समय हो गया, मैं अब चलता हूँ।' यह कहकर राखाल उठकर खड़ा हुआ। विमल बाबू ने उस समय तक एक भी बात नहीं कही थी, इस बार उन्होंने बात की। सविता को लक्ष्य करके उन्होंने कहा—'अपने लड़के के साथ मेरा परिचय करा दोगी नई-बहू? ऐसे ही अपरिचित हम दोनों बने रहेंगे?'

सविता ने कहा—'वह मेरा बेटा है यही उसका परिचय है। लेकिन तुम्हारा परिचय उससे मैं क्या दूँ दयामय, मैं स्वयं भी तो अभी तक नहीं जान पाई।'

'जब जान सकोगी तब दोगी?'

'दूंगी। उसके लिए मेरी छिपी बात कुछ भी नहीं है। अपने सब दोष गुणों को लेकर ही मैं उसकी नई-मां हूं।'

राखाल ने कहा—'बचपन में जब कोई भी मेरा अपना नहीं रहा, तब मुझे उन्होंने आश्रय दिया था, पाल-पोस कर आदमी बनाया था, मां कहना सिखाया था, तब से उन्हें मां कह कर ही जानता हूं। सदैव मां कहकर ही जानूंगा।' यह कहकर झुककर उसने फिर एक बार मां के चरणों की धलि ले ली।

विमल बाबू ने कहा—'तारक के यहां तुम्हारी नई-मां जाना चाहती हैं कुछ दिनों के लिए। यहां अच्छा नहीं लग रहा है। इसी कारण मैं कहता हूं जाना ही अच्छा है। सम्मति है?'

राखाल ने हंसकर कहा—'है।'

'सच कहो राजू! क्योंकि तुम्हारी असम्मति से उसका जाना न होगा, मैं मना करूंगा।'

'आपकी मनाही वे सुनेंगी?'

'कम-से-कम अपने आपसे नई-बहू ने यही प्रतिज्ञा की है।' यह कह कर विमल बाबू जरा हंस पड़े।

सविता ने उसी समय स्वीकार करके कहा—'हां, यही प्रतिज्ञा मैंने की है। तुम्हारा आदेश उल्लंघन न करूंगी।'

यह सुन कर राखाल की आंखों की दृष्टि कुछ देर के लिए रूखी हो गई। लेकिन उसी समय अपने को शान्त करके सहज स्वर से उसने कहा—'अच्छी बात है, आप लोगों की समझ में जो अच्छा जान पड़े कीजिए, मुझे आपत्ति नहीं है नई-मां।' यह कहकर वह किसी प्रश्न के पहले ही नीचे चला गया।

शारदा नीचे रास्ते में एक ओर खड़ी थी। उसने आकर कहा—'एक बार मेरे कमरे में चलना होगा देवता!'

'क्यों?'

'शारदाओं को बहुत देखा है, आप कह चुके हैं। आपसे उन लोगों का परिचय लूंगी।'

'लेकर क्या होगा?'

'स्त्रियों के प्रति आपके मन में भयानक घृणा है। कृतज्ञता का ऋण वे लोग किस वस्तु से चुकाती हैं आपके पास बैठकर उसकी कहानी सुनूंगी।'

राखाल ने कहा—'कहानी सुनाने का समय मेरे पास नहीं है, मुझे काम है।'

शारदा ने कहा—'मुझे भी काम है। लेकिन मेरे कमरे में अगर आज न चलिएगा, कल सुन लीजिएगा शारदाएँ आदि अनेक नहीं थीं, दुनिया में सिर्फ एक ही थी।'

उसके कण्ठस्वर के अचानक परिवर्तन से राखाल चुप हो गया। उसे याद आ गई वही प्रथम दिन की बात जिस दिन शारदा प्राण देने जा रही थी।

शारदा ने पूछा—'बतलाइए क्या कीजिएगा ?'

राखाल ने कहा—'रहने दो काम-काज। चलो तुम्हारे ही कमरे में चलें।'

१५

शारदा के कमरे में जाकर राखाल बिस्तर पर बैठ गया। उसने पूछा—'क्यों बुलाकर ले आई हो ?'

शारदा ने कहा—'जाने के पहले और एक बार आपके पैरों की धूलि लेनी पड़ेगी इसीलिए।'

'धूलि तो पड़ गई, अब तो उठूं ?'

'इतनी हड़बड़ी ? दो चार बातें कहने का भी समय न दीजिएगा ?'

'उन बातों को तो अनेक बार कह चुकी हो शारदा। तुम कहोगी—'देवता, आपने मेरी प्राण-रक्षा की, बीस-पचीस रुपये देकर चावल-दाल खाने को दिये हैं, नई-मां से कहकर शेष किराया छुड़वा दिया है, आपके प्रति मैं कृतज्ञ हूं। जितने दिन बचूंगी आपका ऋण मैं चुका न सकूंगी।' इसमें नया कुछ भी नहीं है। तो भी, यदि जाने के पहले फिर एक बार कहना चाहती हो तो कह डालो। लेकिन तनिक जल्दी करो। मेरे पास अधिक समय नहीं है।'

शारदा ने कहा—बातें नई भले ही न हों, बहुत मीठी हैं ! जितनी बार सुनी जाती हैं पुरानी नहीं होतीं—ठीक है न देवता ?'

'हाँ, ठीक है। मीठी बात तुम्हारे मुंह से और भी मीठी सुनाई पड़ती है, मैं यह अस्वीकार नहीं करता। समय रहने से बैठा-बैठा सुनता रहता। लेकिन समय अब नहीं है। इसी समय जाना पड़ेगा।'

'जाकर रसोई पकानी पड़ेगी?'

'हाँ।'

'उसके पश्चात् खाकर सो रहना पड़ेगा।'

'हाँ।'

'उसके बाद आँखों में नींद न आवेगी, बिस्तर पर पड़कर सारी रात छटपटाना पड़ेगा न देवता!'

'यह बात तुमसे किसने कही?'

'किसने कही जानते हैं? जो शारदा दुनिया में केवल एक ही है, अनेक नहीं है—उसी ने।'

राखाल ने कहा—'तो इस दशा में उस शारदा ने भी तुमसे गलत बताया है। मैंने ऐसा कोई भी अपराध नहीं किया है कि दुश्चिन्ता से बिस्तर पर पड़कर छटपटाना पड़ता है। मैं लेट जाता हूं और सो जाता हूँ। मेरे लिए तुमको सोचना न पड़ेगा।'

शारदा ने कहा—'अच्छी बात है, अब न सोचूंगी। आप की ही बात सुनूंगी. लेकिन मैंने ही क्या अपराध किया है जिसके कारण सो नहीं सकती। सारी रात जागकर काटती हूं।'

'यह तो तुम ही जानती हो।'

'आप नहीं जानते?'

'नहीं।' दुनिया में कहाँ किसको नींद में बाधा पड़ रही है, यह जानना सम्भव नहीं और इसके लिए मेरे पास समय भी नहीं है।

'समय नहीं है क्यों—?' यह कहकर शारदा क्षण भर चुप रही। फिर एकाएक हंस पड़ी। बोली—अच्छा देवता, आप इतने कायर क्यों हैं? क्यों नहीं कहते कि शारदा, हरिनपुर तुम्हारा जाना न होगा। नई माँ का जी चाहे तो वह चली जायं, लेकिन तुम नहीं जाओ। मेरा निषेध है। इतना सा कहना क्या इतना ही कठिन है।

राखाल को न सूझा कि इसके उत्तर में क्या कहना चाहिए। इसी से कुछ हतबुद्धि की तरह बोला—तुम लोगों ने जाना तय कर लिया है, तब मैं व्यर्थ किसलिए रोकने की चेष्टा करूं ?

शारदा ने कहा—केवल इसीलिए कि आपकी इच्छा नहीं है कि मैं जाऊं। यही तो सबसे बड़ा कारण है देवता।

'नहीं। किसी एक आदमी की इच्छा को ही 'कारण' नहीं कहते। तुम्हें मना करने का अधिकार मुझे नहीं है।'

शारदा ने कहा—भले ही ख्याल हो, किन्तु वही आपका अधिकार है। मुंह खोलकर कहिए कि शारदा, तुम हरिनपुर न जा ने पाओगी।

राखाल ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—ना। व्यर्थ अधिकार मैं किसी पर नहीं लादता।

'अप्रसन्नता से तो नहीं कह रहे हैं ?'

'नहीं। मैं सत्य ही कहता हूं।'

शारदा उसके मुंह की ओर ताकती रही। इसके बाद बोली—नहीं, यह सत्य नहीं है—किसी तरह सत्य नहीं है। मुझे मना कीजिए देवता, मैं माँ से जाकर कह आऊं कि मेरा हरिनपुर जाना नहीं होगा, देवता ने मना कर दिया है।

इसके भी प्रत्युत्तर में राखाल ने किंकर्त्तव्य-विमूढ़ की तरह उत्तर दिया—ना, तुम्हें मैं मना न कर सकूंगा। मुझे यह अधिकार नहीं है।

शारदा ने कहा—अधिकार तो है; लेकिन अब मैं कहूंगी कि हमेशा केवल परायी आज्ञा मानते-मानते आप स्वयं आज्ञा देने की शक्ति खो बैठे हैं। विश्वास नष्ट हो गया है, भरोसा नहीं रहा। जो आदमी दावा करते घबराता है, उसका सारा जीवन दूसरों का दावा पूरा करते-करते ही बीतता है। शुभाकांक्षिणी शारदा की यह बात याद रखिएगा।

'यह तुम किससे कहती हो ? मुझसे ?'

'हाँ, आपसे ही।'

'हो सका तो स्मरण रखूंगा। किन्तु मैं पूछता हूं कि तुम्हें रोकने या मना करने से मुझे लाभ क्या है ? यह यदि समझ सको तो शायद अब भी मैं सच-

मुच तुम्हें मना कर सकता हूं ?'

'क्या यह सत्य जानने को भी तुम्हारा जी नहीं चाहता कि अपनी इच्छा से तुम्हारी दासता स्वीकार करने वाला एक आदमी भी इस संसार में है ?'

'जानकर क्या होगा ?'

क्षणभर राखाल के मुख की ओर ताकते रहकर शारदा ने कहा—शायद कुछ भी न होगा। शायद मेरे भी समझने का समय आ गया है। तो भी एक बात कहती हूं देवता, अकारण निर्दय हो सकना ही पुरुष का पौरुष नहीं है।

राखाल ने उत्तर दिया—सो मैं भी जानता हूं। किन्तु अकारण अति कोमलता भी मेरी प्रकृति में नहीं है। यह कहकर, कुछ देर स्थिर रहकर, उसने पहले से भी अधिक रूखे स्वर में कहा—देखो शारदा, अस्पताल में जिस दिन तुम्हें चेत लौट आया था, तुम स्वस्थ हो गई थीं, उस दिन की बात तुम्हें कुछ याद आती है ? तुमने छल करके बताया कि तुम अल्पशिक्षित सहज सरल देहात की लड़की, गरीब भले घर की बहू हो। तुमने कहा कि मैं न बचाऊं तो तुम्हारे बचने का कोई उपाय नहीं है। मैंने तुम पर अविश्वास नहीं किया। उस दिन जितना या जो कुछ मैं कर सकता था उसे करना मैंने अस्वीकार भी नहीं किया। किन्तु आज वह सब तुम्हारे लिए हंसने की चीज है। उन सब बातों को तुमने अवहेलना में डाल दिया। आज आये हैं विमल बाबू—जिनके ऐश्वर्य की सीमा नहीं है—आया है तारक, आई हैं नई-मां। उस दिन का अब कुछ शेष नहीं है। इस छलना का क्या प्रयोजना था, बताओ तो सही ?

अभियोग को सुनकर शारदा विस्मय से अभिभूत हो गई। उसके बाद धीरे-धीरे बोली—मेरे कहने में झूठ था, किन्तु किसी प्रकार की छलना नहीं थी देवता। वह झूठ भी केवल इसलिए था कि मैं एक स्त्री हूं। उसकी लज्जा को ढकने के लिए। इसको जब मेरा चरित्र समझकर आपने भूल की, तब मैं और भिक्षा नहीं मांगूंगी। कल मां ने मुझे कुछ रुपये दिये हैं वस्तुएँ खरीदने के लिए। लेकिन मुझे उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो रुपये आपने मुझे दिये थे, वह क्या लौटा दूं ?

राखाल ने और भी कठिन होकर कहा—तुम्हारी इच्छा। किन्तु रुपये मिलने से मुझे सुविधा होगी। मैं बड़ा आदमी नहीं हूं शारदा, बहुत ही गरीब

हूँ—यह तुम जानती हो।

शारदा ने तकिये के नीचे से रूमाल में बँधे रुपये निकाल कर, गिनकर, राखाल के हाथ में देकर कहा—तो ये लीजिए। लेकिन मैं इतनी नासमझ नहीं हूँ कि रुपयों से आपका ऋण उतर जायगा। तो भी बिना दोष के आपने जो दण्ड मुझे दिया, उसका अन्याय और एक दिन आपको खटकेगा—किसी प्रकार उससे आपका परित्राण न होगा।

'और कुछ कहोगी ?'

'ना।'

'तो जाऊँ। रात हो गई है।'

प्रणाम करते समय शारदा राखाल के पैरों पर सिर रखकर रो पड़ी। इसके बाद आप ही आँखें पोंछकर उठ खड़ी हुई।

'जाता हूँ।'

'अच्छा।'

मार्ग में बाहर निकलकर राखाल सोच न पाया कि अभी-अभी वह जो पुरुष के अयोग्य सब मान अभिमान का तमाशा समाप्त करके आया है, सो काहे के लिए ? काहे के लिए यह सब नाराजी ? शारदा ने क्या किया है ? उसके अपराध को बताना जैसे कठिन है, वैसे ही उसके अपने हृदय में यह जलन किस जगह है, उसे उंगली से दिखाना भी कठिन है। राखाल का हृदय चोट करके उससे बार-बार कहने लगा कि शारदा भली है, शारदा बुद्धिमती है, शारदा जैसा रूप सहज ही नहीं दिखाई पड़ता। शारदा उसके निकट कितनी कृतज्ञ है, इस बात को बहुत बार वह बहुत तरह से जता चुकी है। आज भी पैरों पर सिर रखकर इस बात को ज़ताने में उसने त्रुटि नहीं की। और भी कुछ जैसे वह बारंबार आभास से जताती है; उसका अर्थ केवल कृतज्ञता ही नहीं है, शायद और भी गहरा, और भी बड़ा भाव है। शायद वह प्रेम है। राखाल का मन भीतर-ही-भीतर संशय से डोल उठा। वह बहुत दिन, बहुत-सी नारियों के संस्पर्श में, बहुत तरह से आया है; किन्तु किसी स्त्री ने किसी दिन उसे प्यार किया हो—यह बात ऐसी अचिंतित है कि वह आज प्रायः असम्भव ही जान पड़ती है। आज क्या वही वस्तु शारदा उसे देना

चाहती है। लेकिन वह किस लज्जा से उसे ग्रहण करेगा ? शारदा विधवा है, शारदा निन्दित कुल-त्यागिनी है। इस प्रेम में न गौरव है, न सम्मान। राखाल अपने को समझाकर कहने लगा—मैं गरीब हूं, इस कारण कंगाल की वृत्ति और प्रवृत्ति तो नहीं ग्रहण कर सकता। अन्न का अभाव है, इससे राह की जूठन उठाकर मुंह में डाल लूंगा ? यह नहीं हो सकता—यह असंभव है।

तब भी हृदय के भीतर न जाने कैसा हुआ करता है। वहां जैसे कोई निरंतर कहता है कि बाहर की घटना जरूर ऐसी है, किन्तु भीतर का जो परिचय उस पहले दिन से निरन्तर ही जो उसने पाया है, उसके विचार की धारा क्या उस आईन की किताब खोलने से उसमें मिलेगी ? जिन स्त्रियों के संसर्ग में अब तक उसके दिन बीते हैं, उनमें शारदा की तुलना कहां है ? निष्कपट नारीत्व की इतनी बड़ी महिमा कहां ढूंढ़े मिलेगी ? और उसी शारदा का आज वह किस बुरी तरह से अपमान कर आया !

घर पहुंचकर उसने देखा कि बुढ़िया दासी उपस्थित है। कुछ विस्मित होकर ही उसने पूछा—तुम अभी तक नहीं गई ?

दासी ने कहा—नहीं भैया, उस बेला तुमने कुछ खाया-पिया नहीं, इस बेला सब तैयारी कर रखी है। पाव-भर मांस भी खरीद लाई हूं—सब ठीक-ठाक करके जाऊंगी।

सवेरे सचमुच ही उसने कुछ नहीं खाया था। खाने में मक्खी पड़ जाने से विघ्न पड़ गया था; किन्तु राखाल को याद नहीं था। इसके पहले भी कितने ही दिन ऐसा हुआ है, तब इसी दासी ने सवेरे के स्वल्प आहार को रात के भोजन की तैयारी करके पूरा कर दिया है। यह कुछ नया नहीं है, तथापि उसकी बात सुनकर राखाल की आंखों में आंसू भर आये। उसने कहा—तुम बूढ़ी हुई हो नानी, मर जाओगी तो मेरी कैसी दुर्दशा होगी, बताओ ? संसार में और कोई नहीं जो तुम्हारे दादा बाबू की सुधि ले।

इस स्नेह के आवेदन सेदासी की आंखों में भी आंसू आ गये। उसने कहा—सच ही तो है। बूढ़ी हुई हूं, मरूंगी नहीं ? न जाने कितनी बार तुमसे कह चुकी हूं, पर तुम सुनते ही नहीं—हंसकर टाल देते हो। अब मैं कुछ नहीं सुनूंगी, ब्याह तुमको करना ही होगा। दो-चार दिन जीती हूं, अपनी आंखों

देख जाऊंगी। नहीं तो मरकर भी सुख नहीं पाऊंगी भैया।

राखाल ने हंसकर कहा—तब तो उस सुख की आशा नहीं है नानी। मेरे घर-द्वार नहीं है, बाप-मां या अपना कोई नहीं है, मोटे महीने की नौकरी नहीं है। मुझे कौन भला अपनी लड़की देगा?

'वाह! लड़की की चिन्ता? एक बार तुम अपने मुंह से कहो तो, कोड़ियों सम्बन्ध आकर हाजिर हो जायेंगे।'

'तो फिर एक सम्बन्ध कर न दो नानी!'

'समझते हो कि कर नहीं सकती? मेरे हाथ में एक आदमी है, कल ही उसको इस काम में लगा दे सकती हूं।'

राखाल हंसने लगा, बोला—'सो तुमने जैसे लगा दिया, लेकिन बहू आकर खायेगी क्या?—बताओ? गोते खायेगी क्या?'

दासी ने बिगड़कर उत्तर दिया—गोते किसलिए खायेगी दादा बाबू? गिरस्त-घरों में जो सब खाते हैं, वह भी वही खायेगी। तुमको चिन्ता न करनी होगी। जिन्होंने जीवन दिया है वही आहार भी देंगे।

राखाल ने कहा—यह व्यवस्था पहले के युग में थी नानी, अब नहीं है। यह कहकर राखाल ने फिर हंसकर रसोई में मन लगाया। वह कुकर में खाना पकाता है। शौकीन आदमी है—उसके पास छोटे-बड़े, मंझोले, अनेक आकार-प्रकार के कुकर हैं। आज खाना पकाया बड़े कुकर में। तीन-चार पात्रों में तरह-तरह की तरकारियां और मांस दासी ने पहले ही बनाकर रख दिया था। बहुत दिनों से इस काम में दासी पक्की हो गई है—उसे कुछ बताना नहीं पड़ता।

चौका लगाकर, थाली रखकर दासी जब घर जाने लगी तो पेट-भर खाने के लिए राखाल को अपने सिर की शपथ देती गई। बोली—सवेरे आकर अगर देखूंगी कि तुमने सब नहीं खाया, बचा पड़ा है, तो अप्रसन्न होऊंगी।

राखाल ने कहा—ऐसा ही होगा नानी, पेट भरकर खाऊंगा। और जो चाहे करूं, तुमको दुःखी नहीं करूंगा।

दासी के जाने पर राखाल इजी-चेयर पर लेट रहा। खाना तैयार होने में लगभग दो घंटे की देर थी। समय काटने के लिए राखाल ने एक पुस्तक उठा ली।

पर किसी प्रकार पढ़नेमें मन नहीं लगा सका—उसे बार-बार शारदा का ही ध्यान आने लगा। याद आने लगी, अपनी अकारण अधीरता। वह अपने को संभाल नहीं सका और भीतर के क्रोध और क्षोभ की ज्वाला रूढ़ भाव के साथ निरन्तर बाहर फूट निकली—बच्चों की तरह। बुद्धिमती शारदा के समझने को कुछ बाकी नहीं है। इस प्रकार अपने को पकड़ा देने की क्या आवश्यकता थी? अपने को शारदा की दृष्टि में छोटा बनाने की क्या आवश्यकता थी? मन-ही-मन उसकी लज्जा की सीमा नहीं रही। जी चाहा कि अगर किसी तरह आज की सारी घटना को पोंछ दे सके।

अपने जीवन की वह कहानी शारदा आज तक किसी से नहीं कह सकी, केवल उसी को सुनाई है। उस निश्छल विश्वास का प्रतिदान भला उसने क्या पाया? पाई केवल अश्रद्धा और अकारण लांछना। अथ च शारदा ने उसकी क्या क्षति की थी? शारदा ने उसकी एक भी बात का प्रतिवाद नहीं किया, केवल निरुत्तर रहकर सहती गई। निरुपाय रमणी के इस अपमान ने इतनी देर में लौटकर जैसे उसी का अपमान किया। उत्तेजना से चंचल होकर राखाल कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला—रहने दो खाना। इसी रात को जाकर उससे क्षमा-प्रार्थना कर आऊँ। उससे स्पष्ट करके कहूँगा कि कहाँ मेरे जलन है, कहाँ मेरे व्यथा है, यह मैं ठीक-ठीक नहीं जानता शारदा, किन्तु जो सब बातें मैं तुमसे कह गया हूँ, वे सब सच नहीं हैं, एकदम झूठ हैं।

कुकर में खाना पकता रहा, घर की रोशनी जलती रही। राखाल ने चादर उठाकर कंधे पर डाली, द्वार में ताला लगाया और बाहर निकल पड़ा।

उसे पहुँचने में अधिक देर नहीं लगी। सीधे शारदा की कोठरी के सामने आकर देखा, दरवाजे पर ताला लटक रहा है, वह घर में नहीं है। तब वह ऊपर पहुँचा। वहाँ सामने ही देख पड़ा, दो कुर्सियों पर आमने-सामने सविता और विमल बाबू बैठे हैं। बातें हो रही हैं। उसे देखकर कुछ विस्मित होकर सविता ने ही प्रश्न किया—तुम क्या अब तक यहीं थे राजू?

'नहीं माँ, डेरे पर चला गया था।'

'डेरे से फिर लौट आये? क्यों?'

राखाल चट से उत्तर न दे सका। फिर बोला—कुछ काम है माँ, सोचा,

तारक से बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई, जरा एक बार मिल आऊँ। कल तो फिर समय मिलेगा नहीं।

'नहीं। हम लोग सवेरे ही रवाना हो जायँगे।'

विमल बाबू ने पूछा—तारक क्या लौट आया है?

सविता ने कहा—नहीं। पर वह लड़का हमारे लिए इतना क्या-क्या खरीदेगा, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

इस बात का जवाब विमल बाबू ने दिया। बोले—वह जानता है कि उसके अतिथि कोई साधारण आदमी नहीं हैं। उसे उनकी मर्यादा के उपयुक्त आयोजन करना चाहिए।

सविता ने हँसकर कहा—उसे तुमसे सामान की लिस्ट लिखा लेनी चाहिए थी?

सुनकर विमल बाबू हँसे। बोले—मेरी लिस्ट उसके साथ कैसे मेल खायगी नई-बहू? वह तो पृथक-ही-पृथक हुआ करती है। तभी मन प्रसन्न होता है।

इस आलोचना में राखाल योग न दे सका। एकाएक उसका मन भीतर से जैसे जल उठा। दम-भर बाद अपने को कुछ शान्त करके उसने पूछा—शारदा को तो मैंने उसकी कोठरी में नहीं देखा नई-माँ?

सविता ने कहा—आज क्या वह घर में ठहर सकती है भैया! तारक भोजन करेगा। रसोई बनाने वाले महाराज को हटाकर वह दोपहर से ही एक प्रकार से भोजन में लग गई है। न जाने क्या-क्या प्रबन्ध किया है, कुछ ठिकाना नहीं।

विमल बाबू ने कहा—उसने मुझसे भी भोजन करने के लिए कहा है नई-बहू।

'तुम्हारा भी निमंत्रण है क्या?'

'हाँ। तुमने तो कभी खाने के लिए कहा नहीं। लेकिन उसने मुझे किसी प्रकार खाये बिना जाने नहीं दिया।'

'इसी से शायद आज अब तक बैठे हुए हो? मैं समझी थी, शायद मुझसे बातें करने के लोभ से बैठे हो।' यह कहकर सविता होठों में हँस दी।

विमल बाबू ने भी हँस कर कहा—झूठ बात पकड़ ली जाय तो खोंचा

नहीं देना चाहिए नई-बहू। बड़ा पाप होता है।

राखाल ने मुंह फेर लिया। इस हास-परिहास से फिर एक वार उसका जी जल उठा।

सविता ने पूछा—शारदा ने तुमसे भोजन करने के लिए नहीं कहा राजू ?

'नहीं मां।' सविता ने अप्रतिभ होकर कहा—तो जान पड़ता है, वह भूल गई। यह कहकर वह स्वयं ही शारदा को पुकारने लगी। उसके आने पर पूछा—मेरे राजू से खाने के लिए नहीं कहा शारदा ?

'नहीं मां, नहीं कहा।'

'क्यों नहीं कहा ? स्मरण नहीं रहा शारदा ?'

शारदा चुप हो रही।

सविता ने कहा—याद ही नहीं था राजू। किन्तु यह भूलना भी अन्याय है।

राखाल ने कहा—याद न रहना दुर्भाग्य हो सकता है नई-मां किन्तु उसे अन्याय नहीं कहा जा सकता। शारदा ने मुझसे पूछा था कि घर पर जाकर अब शायद आपको रसोई बनानी पड़ेगी ? मैंने कहा—हां। फिर प्रश्न किया—उसके बाद खाना होगा ? कहा—हां। किन्तु इसके बाद भी मुझसे खाने को कहने की बात उसे याद नहीं आई। मगर यह जान रखिएगा नई-मां कि याद न रहना न्याय-अन्याय के अन्तर्गत नहीं है, चिकित्सा के अन्तर्गत है। इतना कहकर राखाल नीरव हंसी में तीक्ष्ण विद्रूप मिलाकर बरबस हंसने लगा।

सविता सोच न पाई कि क्या कहे। शारदा वैसी ही चुपचाप खड़ी रही।

राखाल ने मन-ही-मन समझा कि अन्याय हो रहा है, उसकी बात मिथ्या न होकर मिथ्या से बढ़कर हो रही है, तो भी रुक न सका। बोला—तारक यहां आने पर भी मुझसे मिल नहीं पाता। शारदा कहती है कि उनके पास समय नहीं है। यह सच भी हो सकता है, इसी से समय निकाल कर मैं ही उससे मिलने आया हूं—खाने नहीं आया नई-मां।

जरा रुककर कहा—शारदा को शायद सन्देह है कि तारक मुझे प्रेम नहीं करता, मेरे साथ खाने के लिए बैठना उसे अच्छा नहीं लगेगा। मैं उसे दोष नहीं दे सकता मां। तारक यहां अतिथि है; उसकी सुख-सुविधा को ही पहले देखना आवश्यक है।

शारदा वैसी ही मौन रही। सविता ने व्याकुल होकर कहा—तारक अतिथि है, किन्तु तुम तो भैया मेरे घर के लड़के हो राजू। मैं असुविधा में किसी को डालना नहीं चाहती, जिसकी जो इच्छा हो वह करे; किन्तु मेरे घर में मेरे पास बैठकर आज तुमको खाना होगा।

राखाल ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया। बोला—ना, यह नहीं हो सकता। फिर कहा—मुरी बूढ़ी नानी जीती रहे, मेरा कुकर बना रहे, उसका पका भोजन ही मेरे लिए अमृत है। बड़े घर के बढ़िया भोजन का मुझे लोभ नहीं है नई-माँ।

सविता ने कहा—लोभ के लिए नहीं कहती राजू। किन्तु यदि बिना खाये आज तुम चले जाओगे तो मुझे असीम दुःख होगा। यह मैं तुमसे कहे देती हूँ।

मगर अपराध अधिक बढ़ गया। राखाल ने निर्मम होकर कहा—विश्वास नहीं होता नई-माँ। जान पड़ता है, यह केवल बात-की-बात है; कहना चाहिए, इसीलिए कही गई। मैं कौन हूँ जो मेरे बिना खाये चले जाने से आपको असीम दुःख होगा? आपको किसी के लिए भी दुःख बोध नहीं होता। यही आपका स्वभाव है।

असह्य विस्मय से सविता के मुख से केवल इतना ही निकला कि कहते क्या हो राजू?

'कोई नहीं कहता, इसी से मैंने कह दिया नई-माँ। आपके सौजन्य की, सहृदयता की, आपकी विचार-बुद्धि की तुलना नहीं है। आप आर्त्त की परम हितैषिणी और बन्धु हैं; लेकिन आप दुःखी की माँ नहीं हैं। दुःख का अनुभव केवल आपका बाहर का ऐश्वर्य है, अन्तर का धन नहीं है। इसी से आप जैसे सहज ही किसी को ग्रहण करती हैं, वैसे ही अवहेलना के साथ छोड़ भी देती हैं। आपको हिचक नहीं होती।

विमल बाबू विस्मय से आँखें फाड़े स्तब्ध भाव से ताकते रहे।

राखाल ने कहा—आपने मेरे लिए बहुत किया है, नई-माँ, उसे मैं सदैव स्मरण रखूँगा। केवल जबानी बातों से नहीं, देह और मन की सारी शक्ति से। आपसे शायद अब फिर मेरी भेंट न होगी। हाँ, यह इच्छा भी मेरी नहीं है। किन्तु यदि मुझसे कुछ पुण्य बन पड़ा हो तो उसके बदले भगवान से प्रार्थना

करता हूं कि अबकी बार वह आप पर दया करें—'अनजाने' के बीच से 'जाने' के भीतर वह आपको स्थान दें। अन्तिम शब्द कहते समय एकाएक उसका गला भर आया।

सविता एकटक उसकी ओर ताक रही थी, बात सुन कर क्रोध नहीं किया, बल्कि गहरे स्नेह के स्वर में बोली—वही हो राजू, भगवान् तुम्हारी ही प्रार्थना स्वीकार करे—मेरे भाग्य में वही घटित हो।

'चलता हूं नई-मां।'

सविता ने उठकर उसका हाथ पकड़ कर कहा—राजू, क्या हो गया है बेटा?

'होगा क्या नई-मां?'

'ऐसा कुछ जिसने तुम्हें ऐसा अस्थिर कर दिया है। तुम तो निष्ठुर नहीं हो—कटु बात कहना तो तुम्हारा स्वभाव नहीं है!'

उत्तर में राखाल ने झुककर केवल सविता के पैरों की रज माथे से लगाई, कुछ मुंह से नहीं कहा। जब वह चलने को उद्यत हुआ, तब विमल बाबू ने कहा—राजू, हम दोनों का विशेष परिचय नहीं है, किन्तु मुझे तुम अपना हितैषी बन्धु ही समझो।

राखाल ने इसका भी उत्तर नहीं दिया, धीरे-धीरे नीचे उतर गया। कल की तरह आज भी सीढ़ियों के पास शारदा खड़ी थी। पास आते ही धीमी आवाज में उसने कहा—देवता?

'क्या चाहती हो तुम?'

'आपने कहा था कि अनेक शारदाओं में मैं भी एक हूं। शायद आपकी बात ही सच है।'

'सो मैं जानता हूं।'

'नाना प्रकार से दया करके आपने मुझे बचाया था, इसीसे मैं बच गई। आप अनेक आदमियों का बहुत कुछ करते हैं, मेरा भी उपकार किया, इससे आपकी कोई क्षति नहीं हुई। यदि जीती रही तो केवल इतना ही जान रखना चाहती हूं।'

राखाल ने इसका उत्तर नहीं दिया। चुपचाप बाहर निकल गया।

१६

दूसरे दिन सवेरे हरिनपुर जाने का प्रवन्ध जब सम्पूर्ण हो चुका, सविता ने शारदा को बुलाकर कहा—अपना बक्स-बिछौना ऊपर भेज दो शारदा, तारक सारे सामान की लिस्ट बना रहा है।

शारदा ने कुंठित भाव से कहा—मेरा बक्स-बिछौना नहीं जायगा माँ।

नीचे से स्टूल पर बैठा तारक नोट-बुक में जल्दी-जल्दी माल-असबाव की लिस्ट बना रहा था। शारदा का उत्तर उसके कानों में पहुँचा। झुके हुए सिर को ऊपर उठाकर वह विस्मित स्वर में बोला—बक्स-बिछौना न जायगा कैसे!

सविता भी शारदा की बात से विस्मित हुई थी। धीमे स्वर में बोली—क्या साथ ले जाने योग्य बक्स-बिछौना तुम्हारे पास नहीं है शारदा? तो पहले क्यों नहीं बताया—मैं उसका प्रवन्ध कर देती।

मलिन हँसी हँसकर शारदा ने कहा—बिछौना मेरा पुराना और फटा अवश्य है, तो भी उसे साथ ले जाने में मुझे कोई लज्जा न थी। पर हरिनपुर मेरा जाना न होगा माँ।

तारक और सविता प्रायः एक साथ ही कह उठे—यह क्या?

शारदा ने सूखी हँसी हँसकर कहा—मैं यहाँ से कहीं हिल नहीं सकती, लाचार हूँ। नहीं तो माँ की सेवा से अपने को वंचित करके इस शून्य पुरी में अकेले पड़े रहने का दण्ड मैं कभी न भोगती।

अवाक् हो रही सविता तीव्र दृष्टि से शारदा के मुंह की तरफ ताककर जैसे कुछ खोजने लगी।

तारक उत्तेजित होकर कह उठा—कैसे! कल तो नई-माँ के साथ हरिनपुर जाने के लिए आप तैयार थीं, और आज सवेरे ही यह घर छोड़कर हिल नहीं सकतीं, यह तय कर डाला! ना, ये सब व्यर्थ की बातें नहीं चलेंगी। कोई औरत-लड़का साथ न जाने से तुम्हें देहात में अकेली—नहीं यह नहीं हो सकता।

शारदा ने उदास स्वर से कहा—'मैं सच ही कह रही हूँ तारक बाबू। जाने का मुझे समय नहीं है। यह व्यर्थ का बहाना नहीं है।'

अविश्वास-भरे कण्ठ से तारक ने प्रश्न किया—'क्यों, सुनूँ तो? यहाँ आपको कौन-सा काम है?'

शारदा स्थिर दृष्टि से पाषाण-प्रतिमा के समान खड़ी रही। कुछ भी उत्तर उसने नहीं दिया।

कुछ देर चुप रहकर तारक ने कहा—'उत्तर क्यों नहीं देती?'

शारदा तो भी मौन रही।

हताश भाव से हाथ की नोटबुक को कमरे के फर्श पर फेंककर तारक ने कहा—'तो अब किसी प्रकार दोपहर की ट्रेन से आपका जाना होगा नई-माँ! साथ में कोई भी स्त्री-बच्चा न रहने से उस देहात में बन्धुहीन स्थान में अकेली आप कैसे रह सकेंगी?'

सविता ने इतनी देर तक कोई बात नहीं कही थी। मीठी हँसी हँसकर उन्होंने कहा—'तारक, देहात में मेरा जन्म हुआ था, जीवन का अधिकांश भाग देहात में ही बीता है, वहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं होगा।'

तारक ने व्यङ्ग के स्वर से कहा—'कौन है वह महान् व्यक्ति? क्या मैं जान सकता हूँ जिनकी आज्ञा के बिना आप नई-माँ के साथ इस घर को छोड़-कर जा न सकेंगी? राखाल बाबू हैं न?'

तारक की असंयत उक्ति से शारदा का मुख अपमान से लाल हो उठा। दूसरी दिशा की ओर स्थिर नेत्रों से देखते हुए शान्त स्वर से उसने कहा—'जो मुझको इस घर में रख गये हैं उनकी आज्ञा के बिना मेरा अन्यत्र जाना सम्भव नहीं है तारक बाबू। आप व्यर्थ ही क्रोध कर रहे हैं।'

शारदा के उत्तर से सविता चौंक पड़ीं। लेकिन तारक ने अपने कण्ठ-स्वर को बहुत कुछ नीचे उतार कर आश्चर्य युक्त स्वर में कहा—'परन्तु वे तो बहुत दिनों से लापता हैं।'

शारदा ने तारक की ओर दृष्टि न करके सविता के सामने जाकर झुक कर प्रणाम करके कहा—'माँ भले ही और सभी मुझे गलत तरीके से समझें पर आप गलत रूप में न समझेंगी यह मुझे विश्वास है।'

सविता ने कहा—'सोने को पीतल कहकर सदा कोई गलत नहीं कर सकता। आज चाहे न समझें, एक दिन सभी तुमको समझ लेंगे।'

शारदा के नेत्रों में आँसू आ गये थे, शायद कुछ कहने को तत्पर होकर भी वह कह न सकी। नीचा मुंह किये प्रबल चेष्टा से चुपचाप वह आँसू रोकने का प्रयत्न करने लगी।

सविता ने शारदा को अपने पास खींचकर कहा—'तुमको कुछ भी कहना न पड़ेगा शारदा। मेरे साथ तुम्हारा जाना नहीं हो सकता। इसके लिए तुमको कितना दुःख होगा यह मैं जानती हूँ।'

गाड़ी छूटने के डेढ़ घण्टा पहले तारक सविता को लेकर स्टेशन पर पहुँचा। बिस्तर-सामान गिनकर, कुली ठीक करके पुराने दरबान महादेव की निगरानी में दे दिये गये हैं। ब्रेक वाले असबाबों को वजन के बाद रेलवे कम्पनी को सौंप रसीद को यत्नपूर्वक जेब में रखकर तारक ने निश्चिन्त चित्त से सेकेण्ड क्लास लेडीज वेटिङ्ग रूम के सामने जाकर पुकारा—'नई-माँ !'

सविता कमरे के अन्दर से द्वार के सामने आकर खड़ी हो गई। तारक ने रूमाल से माथे का पसीना पोंछते-पोंछते कहा—'बिस्तर-असबाब वजन कराकर ब्रेक में रखवाकर रसीद ले आया हूँ। इस प्रकार का झंझट समाप्त हो गया। अब गाड़ी प्लेटफार्म पर आ जाने से ही काम हो जायगा। आपको बिस्तर बिछाकर बैठा देने पर निश्चिन्त हो जाऊँगा।'

सविता ने हँसकर कहा—'नई-माँ का पीछे कहीं हरिनपुर जाना रुक न जाय, इसलिए तुम्हारे भय और चिन्ता की सीमा ही नहीं है, ठीक है न तारक ?'

तारक ने हँसते हुए उत्तर दिया—'जब तक लड़के की मड़ैया में माँ की पद-धूलि नहीं पड़ती, तब तक मैं अपने भाग्य के ऊपर विश्वास न करता माँ !'

गाड़ी छूटने के समय से आधा घण्टा पहले प्लेटफार्म पर आ लगी।

घबराहट के साथ तारक ने वेटिङ्ग रूम के द्वार के पास जाकर ऊँचे स्वर से पुकारा—'नई-माँ, बाहर आ जाइए। गाड़ी आ गई है।'

महादेव दरबान वेटिंग रूम के बाहर कितने ही बक्स-बिस्तरों के गट्ठर पर

बैठकर तम्बाकू मल रहा था। झटपट तम्बाकू को मुंह में डालकर पगड़ी को ठीक करते-करते घबराहट के साथ उठ खड़ा हुआ।

सिल्क की चादर ओढ़े सविता ने शिबू की मां दासी के साथ गाड़ी की ओर तारक का अनुसरण करते-करते कहा—'मुझे तो तुम इण्टर क्लास में औरतों के डिब्बे में बैठा देना तारक। शिबू की मां भी मेरे साथ बैठेगी।'

तारक ने ठिठककर खड़े होकर कहा—'आपके लिए मैंने सेकेण्ड क्लास का टिकट ले लिया है नई-मां। इण्टर क्लास के जनाने डिब्बे में बड़ी गन्दगी है, उसमें आप कैसे बैठ सकेंगी ?'

सविता ने कहा—'जनाने डिब्बे में यात्रा करने की मेरी आदत थी।'

तारक ने जिद करके सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में सविता को बैठा दिया।

डिब्बा छोटा था। उस समय तक कोई भी दूसरा यात्री चढ़ा नहीं था। तारक ने व्यस्त-भाव से गाड़ी में चढ़कर अपनी धोती की कूंची से प्लेटफार्म की ओर की बेञ्च को झाड़कर साफ बिस्तर बिछा दिया। हावड़ा स्टेशन से जाना पड़ेगा। केवल बर्दवान तक। लेकिन तारक ने यात्रा-पथ का आयोजन किया है मानो दिल्ली या लाहौर तक जाना है।

सविता अन्यमनस्क चित्त से बिस्तर पर जाकर बैठ गई। तारक शायद मन-ही-मन आशा कर रहा था कि नई मां उसके इस सतर्कतापूर्ण उद्योग-सेवा बन्धन में विशेष कुछ सस्नेह अनुयोग करेंगी। लेकिन धुली हुई साफ धोती की कूंची बेंच की धूलि से लिप्त होकर मलिन वर्ण धारण कर देने पर भी नई-मां ने एक भी बात नहीं कही, इससे तारक का मन बहुत कुछ दुःखित हो उठा। तो भी बड़े उत्साह के साथ उसने ऊपर के पटरे पर सूटकेस, बक्स आदि सजा कर रख दिये। बेंच के नीचे फलों की टोकरी और दूसरी वस्तुओं को उसने सुरक्षित कर दिया। कुलियों को बिदा करके तारक ने सविता के सामने आकर धीमे कण्ठ से कहा—आप तनिक बैठ जाइए नई-मां, मैं आपके लिए एक गिलास लेमनेड बर्फ डालकर ले आऊं या एक प्लेट आइसक्रीम लेता आऊं, जो कहें!'

अब तक सविता बाहर प्लेटफार्म की ओर उद्देश्यहीन दृष्टि से देख रही थीं। तारक की बातों से जैसे उन्हें फिर चेत हुआ।

घबराहट भरे स्वरों में उन्होंने कहा—'नहीं तारक, कुछ भी लाना न पड़ेगा। मुझे प्यास नहीं लगी है।'

तारक ने उस निषेध को अनसुनी बात बनाकर सिर हिलाकर कहा—वाह ! ऐसा क्या होता है ? प्यास नहीं लगी है कहने से मैं मान जाऊँगा कैसे नई-माँ ? मुंह आपका कैसा सूख गया है यह तो मैं देख ही रहा हूँ।'

सविता ने मुस्कराकर कहा—'लेमनेड सोडा या आइसक्रीम यह सब मैं कभी नहीं पीती। गाड़ी में पानी तक भी जीवन में नहीं छुआ। तुम व्यर्थ उन सब चीजों को मत लाना बेटा।'

सभी विषयों का प्रतिवाद करना और अपनी इच्छा को दूसरे की इच्छा या अनिच्छा के विरुद्ध तर्कों और युक्तियों से ठीक सिद्ध कर देना ही तारक की प्रकृति थी। लेकिन नई-माँ के कण्ठ-स्वर ने उसको किसी पर भी तत्पर होने नहीं दिया। इसलिए वह मन-ही-मन दुःख की अपेक्षा अस्वस्ति ही बहुत अधिक अनुभव करने लगा।

प्लेटफार्म की कार्यव्यस्त जनता को देखकर सविता की दोनों आँखें अकस्मात् उज्ज्वल हो उठीं। दूर से विमल बाबू आते हुए दिखाई प । प्रशांत सौम्यमूर्ति है, पदक्षेप कुछ तेज है। गाड़ी के डिब्बों में अनुसन्धान-भरी दृष्टि रखते हुए अग्रसर होते चले आ रहे हैं। देखते-देखते सविता का चेहरा और नेत्र आनन्द की स्निग्ध किरणों से चमक उठे।

विमल बाबू सविता के डिब्बे के सामने आ खड़े हुए। तारक झटपट प्लेटफार्म पर कूद पड़ा और प्रसन्न कण्ठ से बोला—'हम लोगों को आशा थी कि भेंट करने अवश्य आइएगा।'

विमल बाबू ने सविता के चेहरे की ओर दृष्टि स्थापित करके शान्त कण्ठ से तारक से पूछा—'हम लोगों का क्या मतलब ?'

विमल बाबू के प्रश्न से तारक सविता के मुंह की तरफ देखकर एकाएक घबड़ा उठा। बात बहुवचन में न कहने से ही शायद अच्छी सुनाई पड़ती। छिः ! नई-माँ ने शायद क्या ध्यान किया हो।

लेकिन तारक को इस लज्जा से छुड़ा दिया नई-माँ ने ही। मधुर हँसी के साथ उन्होंने कहा—'तारक ने ठीक ही कहा है। आज प्रातःकाल वहाँ हम

लोगों ने तुम्हारा आना सम्भव समझ रखा था, शारदा ने भी कहा था तुम्हारे विषय में।'

विमल बाबू ने शारदा के लिए डिब्बे में एक बार अपनी दृष्टि घुमाकर कहा—'शारदा कहाँ है ?'

सविता का उत्तर मिलने के पहले ही तारक रूखे स्वर से बोल उठा—'हाँ, वे क्या शहर के पाइप का जल, बिजली बत्ती छोड़कर सड़े देहात में रहने जायेंगी ? लेकिन इस बात को कृपापूर्वक शुरू में ही कह देतीं तो अच्छा करतीं, हम लोग इतनी असुविधा में न पड़ते।'

विमल बाबू ने आश्चर्य में पड़ कर कहा—'शारदा क्या तुम्हारे साथ हरिनपुर नहीं जा रही है ?'

सविता ने उदास हँसी हँस कर चुपचाप सिर हिलाकर इशारे से बताया कि शारदा आ नहीं सकी है।

विवल बाबू डर गये। बायाँ हाथ उठाकर हाथ में बँधी सोने की रिस्ट-वाच की तरफ दृष्टि निबद्ध करके घबड़ाहट भरे स्वर से इन्होंने कहा—'बहुत समय है। अभी तुरन्त मोटर लेकर जाऊँ और शारदा को लिवा लाऊँ नई-बहू। मैं जाकर कहूँगा तो वह मना नहीं कर सकती।'

सविता ने रोककर कहा—'तुम्हारे अनुरोध करने पर भी वह आ न सकेगी। सिर्फ उसका दुःख ही बढ़ेगा।'

विमल बाबू ने ठिठककर खड़े होकर विस्मित कण्ठ से पूछा—'इसका क्या अर्थ ?'

सविता ने कहा—'किसी दूसरे दिन सुन लेना।'

विमल बाबू सविता के मुंह की ओर कुछ देर तक देखते रहे फिर बोले—'मामला क्या है नई बहू ?'

सविता ने कहा—'उसके आने का उपाय नहीं है दयामय। नहीं तो मेरे साथ आने से मैं स्वयं भी उसे रोक सकती थी या नहीं इसमें सन्देह है। जो हो, मेरा एक अनुरोध तुम्हारे ऊपर रहा। शारदा अकेली रही, बीच-बीच में तुम उसकी खोज-खबर लेना।'

शारदा के व्यवहार से तारक उस पर इतना असन्तुष्ट हो गया था कि

नई-माँ ने शारदा की अकृतज्ञता का उल्लेख-मात्र भी न करके वरन् विमल बाबू से उसकी देख-भाल करने का अनुरोध किया देखकर वह मन-ही-मन जल उठा। मन की विरक्ति पीछे कहीं इन लोगों के सामने खुल न जाय इसलिए वहाँ जाने की इच्छा से उसने कहा—'शिबू की माँ और दरबान गाड़ी पर अच्छी प्रकार चढ़ चुके हैं या नहीं, देख आऊँ!'

इतना कहकर वह अनावश्यक तेज चाल से दूसरी ओर चला गया।

विमल बाबू ने सविता की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि रखकर कहा—'क्या हो गया है बताओ तो? तारक कुछ उत्तेजित सा दिखाई पड़ रहा है?'

सविता ने हँसकर कहा—'शारदा के मेरे साथ न आने के कारण तारक उसके ऊपर बहुत ही अप्रसन्न हो गया है। उसका विचार है कि मैं देहात में तरह-तरह की असुविधाओं के बीच जा रही हूँ, शारदा साथ होती तो मुझे बहुत सुविधा होती।'

विमल बाबू ने कहा—'यह बात केवल तारक ही सोच रहा है ऐसा नहीं है, मैं भी ठीक वही बात सोच रहा हूँ नई बहू!'

सविता ने करुण हँसी के साथ कहा—'लेकिन मैं आज ठीक इसके विपरीत बात सोच रही हूँ।'

विमल बाबू ने सविता के चेहरे पर इतनी करुण हँसी पहले कभी नहीं देखी थी। उनकी छाती के अन्दर वेदना से मानो टीस होने लगी।

भर्राई हुई आवाज से सविता ने कहा—'सभी बातें ही तुमको एक दिन बताऊँगी यह मैंने सोच रक्खा है। और कोई भी तो मेरा दाह अन्तर्दाह समझ न सकेगा, शायद विश्वास न करना चाहेगा। मुझे बहुत जान लेने को शेष है। इन तेरह वर्षों से लगातार दिन पर दिन रात के बाद रात क्रमशः जो प्रश्न मेरे हृदय के अंदर पछाड़ खा रहा है, आज तक भी उसका उत्तर मुझे नहीं मिला है। भगवान् के चरणों में मैंने बार-बार कहा है, भगवान्! तुमसे छिपी बात तो कुछ भी नहीं है इतनी बड़ी निर्मल जिज्ञासा को मेरे हृदय में तुमने ही भेजा है। इसके लिए मैं तुम्हारी शिकायत न करूंगी। सिर्फ इसका ठीक उत्तर भी तुम मुझे इस जीवन में दे देना। इसके अलावा प्रार्थना के लिए कुछ भी तो तुमने नहीं छोड़ा है? जितना बड़ा दुःख ही क्यों न दो मैं उसको तुम्हारे हाथ

था दान मानकर सीधी होकर ही चल सकती थी लेकिन मेरे जीवन में तो तुमने दुःख भेजा नहीं है, भेजा है सिर्फ तीव्र परिहास। मनुष्य का परिहास सहना कठिन नहीं है, लेकिन तुम्हारा यह परिहास तो सहन नहीं होता था।'

विमल बाबू के आनन्द भरे सौम्य चेहरे पर एक कठिन वेदनानुभूति की छाया निविड हो उठी। उन्होंने एक बात भी नहीं कही। दूसरी ओर अपनी दृष्टि घुमाकर स्थिर भाव से वे खड़े रहे। वह दृष्टि मानो इस लोक से लोकान्तर को निरुदिष्ट थी।

बहुत समय बीत गया। सविता ने पुकारा—'दयामय!'

विमल बाबू ने भारी गले से उत्तर दिया—'नई बहू!'

सविता एकाएक चौंक पड़ी। चेहरे पर उद्वेग और वेदना का चिन्ह फूट उठा। विमल बाबू के चेहरे की ओर पूर्ण दृष्टि से देखकर विनयपूर्ण स्वर से उन्होंने कहा—'एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे?'

विमल बाबू एकाएक सविता की बातों का कुछ भी उत्तर न दे सके। थोड़ी देर तक चुप रहकर धीरे-धीरे उन्होंने कहा—'नई-बहू, मैं जानता नहीं था। लेकिन छोड़ो उस बात को। क्या कहना चाहती हो, कहो।' कुछ शर्मा कर सविता ने कहा—'तुम मुझे नई-बहू कह कर मत पुकारना।'

विमल बाबू ने शान्त स्वर से कहा—'ऐसा ही होगा।'

इस बार मुंह ऊपर उठाकर विमल बाबू की ओर देखने पर दिखाई पड़ा कि सविता के दोनों सुन्दर नयन शिशिर-सिक्त कमल की पङ्खड़ियों के समान आंसू के भार से झलक रहे हैं।

विमल बाबू को कोई बात कहना चाहती थीं पर कह न सकीं। रुकावट पड़ गई। विमल बाबू ने इसे लक्ष्य किया।

प्लेटफार्म के ऊपर से डिब्बे के अन्दर जाकर वे सविता के सामने बेञ्च पर बैठ गये। उसके बाद उन्होंने कहा—मुझे तुम अपना नाम लेकर पुकारने का अधिकार दे सकोगी? सङ्कोच मत करो। यदि कोई बाधा हो, मैं जरा भी दुःखी न हूंगा, जान लो। केवल यह बता देना, क्या कहकर पुकारने से तुम्हारे मन में चोट न लगेगी, स्मृति का दाह जाग न उठेगा। मैं तो अधिक कुछ नहीं जानता। हो सकता है कि अनजान में तुमको आघात पहुँचा रहा हूँ।'

सविता इस बार उमड़ हुए आंसू को रोक न सकीं। झर-झर करके आंसू गिरने लगा। झटपट आंखें पोंछ कर उन्होने दूसरी तरफ मुंह फेर लिया। कौन-सी एक बात बार-बार कहने की चेष्टा करने पर भी लज्जा और दुःख से गला रुंध जाने लगा।

विमल बाबू ने फिर कहा—'लज्जित मत होना। बताओ क्या कहकर पुकारने से तुम सहज में उत्तर दे सकोगी?'

सविता फिर भी निरुत्तर हो रहीं। उसके बाद सङ्कोच को जी जान से हटाकर मृदु स्वर से उन्होंने कहा—'मुझको तुम रेणुका की मां कह कर पुकारो।'

विमल बाबू के चेहरे पर कोमल सहानुभूति की करुणा खिल उठी। उन्होंने स्निग्ध कण्ठ से कहा—'सच है! बहुत सुन्दर है! मैं अवाक् हो जा रहा हूँ यह सोचकर कि तुम्हारा इतना बड़ा परिचय इतने दिनों तक मेरे मन में आया क्यों नहीं बोलो तो?'

सविता चुप हो रहीं।

विमल बाबू ने मधुर स्वर से कहा—'यह जो तुमने कितना बड़ा दान आज मुझे दे दिया, इसे तुम शायद स्वयं भी नहीं जानती रेणुका की मां! तुम्हारे दिये हुए इस सम्मान की मर्यादा रख सकूं यही कामना है। मेरी और कोई भी कामना नहीं है।'

शायद विमल बाबू और भी कुछ कहते लेकिन गाड़ी छूटने की संकेत सूचक घण्टी बज गई। हाथ घड़ी की ओर देखकर वे उठ खड़े हुए। बोले—अब जाता हूं। हरिनपुर में रहना यदि अच्छा न लगे तो लौट आने में कोई दुविधा मत करना। तारक को अगर पहुँचा जाने के लिए छुट्टी न मिले तो मेरे पास सूचना भेजना। राजू जाकर लिवा लावेगा। आवश्यकता पड़ने पर मैं भी आ सकूंगा।'

विमल बाबू गाड़ी से उतर पड़े। तारक धीरे-धीरे आ रहा था। उसके हाथ में एक गिलास बर्फ के टुकड़े से भरा शर्बत था। उसने विमल बाबू के हाथ में गिलास देकर कहा—'नई-मां के मुंह में तो एक बूंद पानी भी न दे सका। आप ही स्वीकार कीजिए।'

विमल बाबू ने हंसकर कहा—'लाओ।'

गिलास को विमल बाबू के हाथ में देकर तारक ने जेब से पत्ती से लिपटा हुआ पान का बीड़ा निकाल लिया।

अन्तिम घण्टी बज गई और गार्ड की सीटी सुनाई पड़ी। सविता बोल उठीं—'गाड़ी तो अभी छूटेगी तारक। चढ़ जाओ अब, तुम्हारी इस अतिथि सेवा के बीच मैं किस प्रकार समय बिताऊंगी यही सोच रही हूं।'

विमल बाबू तब भी अपने शर्बत को समाप्त न कर सके थे। हंसने लगे तो हुचकी आ गई।

सविता व्यग्र भाव से बोल उठीं—'ओह !'

विमल बाबू मुंह से गिलास हटाकर सविता की ओर देखकर इस बार ठहाका मार कर हंस पड़े।

उस समय गाड़ी का चलाना शुरू हो गया था।

'नमस्कार !' कहकर तारक चलती गाड़ी पर चढ़ गया।

१७

ब्रज बाबू के भतीजे और चचेरे भाई नवीन बाबू बारह-तेरह साल से गांव के घर द्वार, जगह-जमीन पर दखल किये हुए थे। इतने दिनों के बाद बेटी सहित ब्रजबाबू के गांव लौट जाने को वे लोग बिलकुल ही प्रसन्नचित से ग्रहण न कर सके।

देहात में ब्रजबाबू का अपना दुमंजिला घर था, बगीचा था, पोखली थी और खेत-जमीन थी। इन सभी पर इतने दिनों से अधिकार करके ये ही लोग रह रहे थे। जो प्रधान हिस्सेदार हैं, कहना चाहिए कि वास्तविक स्वामी हैं, वे ही आज सहसा आकर उपस्थित हो गये, इस कारण विचलित होने की तो बात ही है। लेकिन तो भी ब्रज बाबू के भतीजों को और चचेरे भाई नवीन बाबू को ब्रज बाबू के गांव आने का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। क्यों कि अभी कुछ ही महीने पहले ब्रज बाबू ने ही उन लोगों को एक मूल्यवान इलाका लिख पढ़कर दान किया था, जिसकी सालाना आमदनी करीब एक हजार रुपये की है। लेकिन इसीलिए वे लोग अपनी गृहस्थी में, घर के भीतर

तो व्रज बाबू और रेणुका को जगह नहीं दे सकते। इस कारण बहुत सोच-विचार करके युक्त-परामर्श करके उन लोगों ने बैठकखाना खाली कर दिया था।

बैठकखाना एक तल्ला बना था। उसमें दो बड़े-बड़े कमरे थे। कमरे के साथ अन्दर की तरफ बरामदा था और बाहर की ओर खुला हुआ था। बरामदे के दोनों छोरों पर एक-एक छोटी-छोटी कोठरियां थीं। एक थी नौकरों को तमाखू हुक्का पीने के लिए और दूसरी थी बत्ती लालटेन रखने के लिए। यही था बैठकखाना।

मकान के कमरों में झाड़ू लगवाकर, धुलवा कर, दो चौकियां बिछवाकर, मिट्टी के नये घड़े में पीने का जल भरवा कर भतीजों ने इलाका देने वाले चाचा के प्रति अपना कर्तव्य-पालन किया था।

गांव में आ जाने पर उस दिन व्रज बाबू और रेणुका के भोजन आदि की एक समय की व्यवस्था भी उन्हीं लोगों के यहाँ हुई थी। लेकिन यह घर के अन्दर नहीं हुई। खाद्य सामग्री बाहरी घर में ही भेजी गई थी।

व्रज बाबू के विशेष लक्ष्य न करने पर भी इस व्यवस्था का अर्थ समझने में बुद्धिमती रेणुका को देर नहीं लगी। लेकिन वह जन्म के समय से ही अल्प-भाषिणी और सहनशील थी। किसी बात से मन में आघात लगने अथवा अपमानित होने पर भी उसको लेकर चञ्चलता प्रकट करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध बात थी।

चाचा जी के मकान पर पहुँचते ही भतीजों ने प्रणाम और कुशल प्रश्नादि के बाद पहले ही जान लेना चाहा कि किस कारण वे इतने दिनों के बाद घर वापस आये हैं। बातचीत के बाद जब यह मालूम हो गया कि विशिष्ट धनवान् चाचा व्रज बाबू आज सर्वस्व खोकर और गृहहीन होकर अविवाहिता सयानी बेटी के साथ गांव को लौट आये हैं, शेष जीवन काल यहीं बिताने के लिए— तब वे लोग विधिवत शङ्कित हो गये। व्रज बाबू के शरीर की जैसी दशा है, अन्त तक वह सयानी अविवाहिता बेटी उसके ही कन्धे पर पड़ जा सकती है। इलाका दान करके अन्त में क्या चाचा जी अपनी सयानी बेटी का भी भार भतीजों को ही दान कर जायेंगे ? ऐसा हो जाने से भी हो सकता है, लेकिन कुल त्यागनी जननी की इस अनूढ़ा बेटी को गृहस्थी में आश्रय देकर कौन

दुःख भोगेगा ।

व्रज बाबू अपने गृह-देवता गोविन्द जी को साथ ही ले आये थे। पारिवारिक पूजा-घर में गोविन्द जी को ले जाने का प्रबन्ध होने पर चचेरा भाई नवीन, भतीजों के मुखपात्र रूप में सामने आकर हाथ जोड़कर व्रज बाबू से बोला—'मझले भैया, एक बात आपको न बताने से काम न चलेगा। मुंह से निकालने में यद्यपि छाती फटती जा रही है, तो भी बिना बताये उपाय ही नहीं है। आप ढाढ़स दें तो हम लोग खोल कर कह सकते हैं!'

व्रज बाबू भाई की इस विनय से घबरा उठे। बोले—'यह क्या कहते हो नवीन, भरोसा देने की क्या बात है। कहो और अभी कह डालो—तुम लोगों को क्या सुविधा-असुविधा हो रही है? वही तो—कैसी कठिनाई है—तुम लोग अन्त को—

व्रज बाबू के पूरी बात भाषा में व्यक्त न कर पाने पर भी तीक्ष्णबुद्धि नवीनचन्द्र और भतीजों ने उनका मनोभाव समझ लिया। उत्साहित होकर नवीन बाबू ने और भी आडंबर के साथ लम्बी भूमिका बांध दी। बहुत-सी व्यर्थ बातें और अपनी निर्दोषिता के बहुत से प्रमाण पेश करते हुए उन्होंने जो कुछ जताया उसका सारांश यह है कि व्रज बाबू और रेणु को यदि नवीन बाबू और भतीजे अपने परिवार में—अपने घर में स्थान देते हैं तो गांव में उन्हें पतित होना पड़ेगा। गांव भर के सभी लोग जानते हैं कि इस रेणु को ही तीन वर्ष की अवस्था में छोड़कर उसकी माता एक दूर के नाते के ननदोई रमण बाबू के साथ प्रकट रूप से कुल त्याग कर गई थी। सिर्फ बारह-तेरह वर्ष पहले की घटना है। गांव का कोई भी मनुष्य इस बात को नहीं भूला है।

व्रज बाबू विवर्ण मुख सिर झुकाये बैठे रहे। उनके मुख का वह असहाय भाव देखकर बहुत बड़ा कठिन हृदय व्यक्ति भी व्यथित हुए बिना नहीं रह सकता। नवीनचन्द्र के हृदय को भी चोट पहुँची। किन्तु वह क्या कर सकते हैं! एक-मात्र आशा यह थी कि व्रज बाबू बहुत बड़े धनी हैं—गांव में धन खर्च कर सकने पर बहुतों का मुंह बन्द किया जा सकता है। किन्तु व्रज बाबू आज कंगाल हैं, धनहीन हैं। अतएव सयानी लड़की को इतने दिन अविवाहित रखने का अपराध गांव में कोई भी क्षमा नहीं करेगा—खास कर जिस कन्या

की लगन चढ़ जाने पर भी ब्याह नहीं हुआ और जिसकी माता कलंकिनी है !

नई-बहू के गृह-त्याग करने पर गांव के निन्दा-आन्दोलन के मारे ही ब्रज बाबू को गांव का घर छोड़कर गोविन्दजी और शिशु कन्या के साथ कलकत्ते में जाकर रहने के लिए लाचार होना पड़ा था। उसी गांव में लौटकर आने के पहले इस बात का ध्यान क्यों नहीं आया, यह सोचकर ब्रज बाबू को सच-मुच बड़ा विस्मय हुआ।

देश के इस अप्रिय आन्दोलन की खबर रेणु को नहीं थी। होती, तो वह ब्रज बाबू को गाँव आने की सलाह कभी न देती। किन्तु इस अवस्था में यहाँ रहा भी तो नहीं जा सकता। अब जायें तो कहाँ ?

ब्रज बाबू के चिन्ता-जाल में बाधा देकर नवीन बाबू और कृतज्ञ भतीजे बार-बार दुःख प्रकट करके कहने लगे—वे सम्पूर्ण निरपराध हैं, कन्या सहित ब्रज बाबू को अपने बीच सम्मान के साथ ग्रहण करने का अत्यन्त आग्रह रहने पर भी कोई उपाय नहीं है—यह हम लोगों के दुर्भाग्य के सिवा और कुछ नहीं है !

कुंठित होकर ब्रज बाबू ने कहा—नवू, तुम लोग लज्जित न होना। मैं सब समझ गया हूँ। मुझे पहले ही यह सोच लेना चाहिए था भाई। चाहे जो हो, जान पड़ता है, यह भी गोविन्दजी की ही परीक्षा है। देखूं, उनकी इच्छा अब कहाँ ले जाती है !—

ब्रज बाबू के ज्येष्ठ भतीजे बोले—लेकिन मँझले काका, सबसे अधिक चिन्ता हम लोगों को रेणु के ब्याह के लिए है।

ब्रज बाबू ने धीर स्वर में जवाब दिया—इसकी कुछ चिन्ता न करो भैया, मैं उसे और अपने गोविन्दजी को लेकर वृन्दावन चला जाऊंगा। गोविन्दजी के राज्य में माता के अपराध के लिए लड़की को कोई दोषी नहीं ठहराता। जब तक वृन्दावन जाने की व्यवस्था न कर सकूंगा, तब तक यहीं, इस बैठक-खाने के कमरे में ही, पृथक् रहूंगा। किसी को कोई असुविधा न होने दूंगा।

जाति वालों की बातचीत से यह जाना गया कि भीतरी घर के ठाकुर-द्वारे में अपनी पहले की वेदी पर गोविन्दजी को स्थापित करने में कोई बाधा नहीं है। बाधा रेणु के ठाकुर-घर में प्रवेश करने और ठाकुरजी का भोग तैयार

करने में है।

× × ×

मुंह से कुछ भी क्यों न कहें, इस घटना से व्रज बाबू को यथार्थ ही मर्म-पीड़ा हुई। उनके सारे जीवन के प्रधान लक्ष्य, परम प्रियतम गोविन्दजी भी अपनी पूजा के मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सके, बैठकखाने के घर में पड़े रहे, इस क्षोभ और दुःख से व्रज बाबू आहत हो गये। संसार की अनेक उलट-फेर यहां तक कि सर्वस्व चले जाने और गृहहीन होने की अवस्था भी उनके हृदय को इस तरह व्याकुल नहीं कर सकी थी।

गांव में जबसे आई, रेणु को बिलकुल ही अवकाश नहीं रहा। गोविन्दजी की सेवा और पिता की देख-भाल सेवा-सुश्रूषा में ही उसे सर्वदा व्यस्त रहना पड़ता है। अन्य किसी भी बात या काम की ओर देखने का समय बहुत कम है, शायद और किसी ओर ध्यान देने की उसकी इच्छा भी नहीं होती।

सदर-मकान के दोनों कमरों में से एक स्थान गोविन्दजी के लिए और दूसरा पिता के लिए उसने ठीक कर लिया। पिता के शयनगृह के ही एक कम चौड़े तख्त पर ही उसने अपने सोने की व्यवस्था कर ली है। छोटी-छोटी दो कोठरियों में से एक में खाने-पीने की सामग्री का भण्डार है और दूसरी में रसोई बनती है। आंगन के एक कोने में थोड़ी-सी जगह बेड़े से घेरकर रेणु ने स्नान की जगह बना ली है।

व्रज बाबू व्याकुल चित्त से सोचते हैं—गोविन्द, अन्त को मैंने तुमको ही तुम्हारे अपने मन्दिर के बाहर लाकर असम्मान के बीच डाल दिया! यह क्या मुझसे उचित काम हुआ प्रभु? किन्तु मेरी रेणु का तुम्हारे सिवा और कोई जो नहीं है। उसे तुम्हारी सेवा से वंचित कर देता तो वह क्या लेकर जीवित रहती? पतित-पावन, अन्त को क्या तुम भी हम लोगों के साथ पतित बन गये?

संध्या-आरती के समय आरती करते-करते व्रज बाबू इसी प्रकार की चिन्ता से आत्म-विस्मृत हो पड़ते हैं। दाहिने हाथ का पंचदीप (आरती) और बाएं हाथ का घंटा निश्चल हो जाता है। गालों से आंसू ढुलक पड़ते हैं, उनका ध्यान ही नहीं रहता।

रेणु पुकारती है—बाबूजी !

ब्रज बाबू चौंक उठते हैं। सलज्ज त्रस्त हाथ से फिर आरती करने लगते हैं।

कभी संशय से उमड़ते हुए चित्त से सोचते हैं—गोविन्द, सन्तान के स्नेह से अंधे होकर तुम्हारे प्रति चूक करके अधर्म का—प्रत्यवाय का भागी तो मैं नहीं हुआ प्रभू !

इस प्रकार अत्यधिक मानसिक संघात से ब्रज बाबू का चित्त जब अस्त-व्यस्त हो रहा था, उसी समय एक दुर्घटना हो गई। एक दिन दोपहर को पूजा की कोठरी से बाहर निकलकर आते ही ब्रज बाबू के सिर में चक्कर आ गया। वह पृथ्वी पर गिरकर मूर्छित से हो गये। रेणु यद्यपि भय, आशंका और उद्वेग से कातर हो उठी, तथापि अपनी स्वाभाविक धीरता के साथ ही आधे बेहोश पिता से उसने पूछा—बाबूजी, नवू काका को या दादा को बुलाऊँ ?

ब्रज बाबू ने बड़े कष्ट से केवल राजू का नाम लिया।

रेणु ने उसी दिन राखाल को आने के लिए तार कर दिया।

गाँव के डाक्टर मेडिकल कालिज की छठे साल की एम० बी० परीक्षा फेल थे। गाँव में उनकी डाक्टरी कम नहीं चलती। ब्रज बाबू को देखकर, परीक्षा करके बोले—मस्तिष्क में रक्त का दबाव बहुत अधिक बढ़ जाने से ऐसा हुआ है। सावधानी के साथ सेवा और चिकित्सा की जाय तो अब की बच जायँगे। किन्तु भविष्य में फिर ऐसी घटना हुई तो फिर जीवन की आशा कम ही है। अब से विशेष सावधानी रहने की आवश्यकता है।

······राखाल अपने मित्र योगेश के मेस से उस दिन रात को साढ़े ग्यारह बजे के लगभग डेरे को लौटा। योगेश ने किसी प्रकार भोजन कराये बिना नहीं छोड़ा।

दिल्ली में कहीं एक स्थान पर विवाह के योग्य क्वांरी लड़कियाँ राखाल को, उसके आपत्ति करने पर भी, दिखाई गई थीं। उन्हीं में से एक लड़की के काका कलकत्ते के एक दफ्तर में नौकर हैं। दिल्ली से कन्या के पिता के कहने के अनुसार कन्या के काका ने आकर योगेश को पकड़ा है—राखालराज बाबू

के साथ उनकी भतीजी का ब्याह उसे करा ही देना होगा। उस भले आदमी ने इस तरह योगेश का पीछा पकड़ा है, वह इस तरह अनुनय-विनय कर रहा है कि योगेश स्वयं यदि विवाहित और दूसरी जाति का न होता तो शायद इस अरक्षणीया कन्या की रक्षा का भार ग्रहण करके उसके काका के इस अनुनय-विनय के उत्पात से आत्मरक्षा कर डालता।

कन्या का एक फोटो भी योगेश ने राखाल को दिखाया है। लड़की का चेहरा राखाल को कहीं ठीक याद न आ सके, इसलिए काका यह फोटो योगेश के पास छोड़ गये हैं।

राखाल ने इस प्रसंग को हँसकर ही उड़ा दिया था; किन्तु योगेशचन्द्र नाछोड़ बन्दा है। उसने प्राणपण से तर्क और युक्ति के द्वारा समझाना शुरू कर दिया कि यदि कन्या की अवस्था, चेहरा, शिक्षा और उसके पिता के कुल के सम्बन्ध में कोई बात नापसन्द न हो तो वह यह ब्याह क्यों नहीं करेगा ?

योगेश जानता है कि राखाल ब्याह में दहेज लेने की प्रथा को हृदय से घृणा करता है। संसार में राखाल की अपेक्षा कम आय वाले भी ब्याह करके स्त्री-पुत्र-कन्या आदि का पालन-पोषण करते हैं। स्वयं योगेशचन्द्र ही तो उन्हीं में से एक है। हाँ, मध्यवित्त विवाहित व्यक्ति की जीवन-यात्रा-प्रणाली बड़े आदमियों के अनुकरण पर शायद नहीं चल सकती जैसी कि उसकी अविवाहित अवस्था में चलती है। किसी मित्र के विवाह में या बांधवी के जन्म दिन पर न्यूमार्केट के फूलों के बास्केट अथवा मरक्को चमड़े की जिल्द वाले मूल्यवान् राजसंस्करण की रवीन्द्र ग्रन्थावली या शेली और ब्राउनिंग के ग्रन्थ भेंट देने में बाधा पड़ सकती है। विलायती सेलून में आठ आने देकर बाल काटने के बदले देशी नाई से दो आने में बाल काटने के लिए तब शायद लाचार होना पड़ सकता है। किन्तु विवाह की योग्यता से सम्पन्न पुरुष यदि ब्याह के योग्य अवस्था में केवल उत्तरदायित्व उठाने के भय से अथवा अपनी विलास और बाधाहीन स्वतन्त्रता में बाधा पड़ने की आशंका से ब्याह न करना चाहे, तो कहना होगा कि उससे बढ़कर कायर संसार में विरला ही होगा। हिसाब लगा कर देखा जाता है कि ब्याह के लिए अयोग्य व्यक्ति ब्याह करके जितना अपराध करते हैं उनसे अधिक दोषी और अश्रद्धा के पात्र वे हैं जो योग्यता रहने

पर भी अपनी स्वतन्त्रता में विघ्न या बन्धन की आशंका के और उत्तरदायित्व से बचने के लिए ही चिर-कुमार रहना चाहते हैं, इत्यादि।

राखाल निर्विकार भाव से हंसते हुए मुख से अपने बन्धु की भर्त्सना और सब युक्तियों को चुपचाप निगल गया। अन्त को भोजन आदि के लिए डेरे को लौटते समय योगेश के बार-बार जोर देने पर उत्तर में उसने कहा—मुझे जरा सोचकर देखने का समय दो भाई!

योगेश ने उत्साहित होकर कहा—अच्छा-अच्छा, यह तो अच्छी ही बात है। तो फिर अनुमानतः कब तक तुम्हारा उत्तर मिल जायगा, बता दो। अगले परसों? क्यों?

राखाल ने हँसकर कहा—इतना अधिक समय क्यों देते हो? कहो न अगले प्रातःकाल—

योगेश ने कुछ लज्जित होकर कहा—ना ना, यह बात नहीं है। लेकिन जानते हो, उन्हें कन्या के ब्याह की बड़ी चिन्ता है न! कुछ अधिक व्याकुल हो रहे हैं। तुम्हारा यह सोचकर देखने का थोड़ा समय भी उनके लिए वैसी ही दम घोटने वाली प्रतीक्षा होती है, जैसी खूनी अभियुक्त की जज की राय के लिए होती है। इसीसे कह रहा था।

राखाल ने कहा—तुम व्यस्त न होना। मैं कुछ दिनों में ही अपना निर्णय बता जाऊँगा।

योगेश को प्रसन्न करके राखाल उसके मेस से जब बाहर निकला तब रात के दस बज गये थे। मित्र के साग्रह अनुरोध की बात सोचते-सोचते वह मार्ग में चलने लगा।

विवाह की पात्री को वह दिल्ली में अपनी आंख से देख आया है। अवस्था यही अठारह-उन्नीस वर्ष की होगी। खूब मोटी-सोटी और गदबदी है। रंग गोरा न होने पर भी उसे काला नहीं कहा जा सकता। चेहरे पर स्वास्थ्य का लावण्य है। मोटे तौर पर लिखी पढ़ी भी है। सुई के शिल्प और रसोई बनाने आदि घर के कामों में अच्छी प्रकार निपुण कहकर कन्या के पिता ने उच्छ्वसित सर्टीफिकेट अपने मुख से बिना मांगे दे दिया था।

लड़की राखाल और योगेश को नमस्कार करके बहुत ही गम्भीर मुख से

श्रौर भी अधिक सिर झुकाये निश्चेष्ट जड़-सी बैठी थी। यही लड़की अगर विधाता के कुचक्र से—दैव-दुर्विपाक से—उसकी पत्नी होकर घर में आवे तो कैसी फबेगी? लड़की का वह अति गम्भीर मुख और ऊँचा करके बांधे गये टीले जैसे बड़े-जूड़े के साथ बहुत ही झुका हुआ सिर याद आ जाने से राखाल को अचानक ही बड़ी हंसी आई।

जीवन की सब अवस्थाओं में, सब प्रकार के सुख-दुःख में पास खड़े होकर हंसते हुए मुख से आश्वासन दे सके—धीरज बंधा सके, आनन्द और तृप्ति दे सके, क्या ऐसी आशा की जा सकती है इस लड़की से? क्या ऐसा भरोसा किया जा सकता है इस लड़की के ऊपर?—दूर-दूर?

दिल्ली में और भी जो कई लड़कियाँ राखाल को दिखाई गई थीं, वे भी कोई कम कोई अधिक ऐसी ही थीं। राखाल के मानस-पटल में सोचते-सोचते बहुत-सी बालिका, किशोरी तरुणी कन्याओं के रूप की तरह की छवि प्रकट होने लगी किन्तु उन सब में एक भी ऐसी लड़की वह स्मरण नहीं कर सका, जिसके ऊपर हमेशा के लिए अपने जीवन के सुख-दुःख का सारा भार डाल कर निश्चिन्त निर्भरता प्राप्त करना सम्भव हो।

सब चेहरों की आड़ में एक कोमल शान्त और बुद्धि से प्रदीप्त सुन्दर मुख बार-बार उसके मानस-पट पर उदय होने लगा। इसलिए विवाह की पात्री चुनने के मामले में वह मुख याद पड़ने का कोई अर्थ नहीं होता—इस बात को और किसी की अपेक्षा राखाल आप ही अच्छी तरह जानता है। किन्तु वह चाहे जो हो, राखाल के प्रति गहरे विश्वास और श्रद्धा से उस मुख की कान्ति ही और प्रकार की है, जिसकी आज और किसी के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

केवल विश्वास और श्रद्धा ही नहीं, बहुत ही निकट के आत्मीय जनकी-सी गहरी सहानुभूति का माधुर्य, जो उन दोनों नेत्रों की स्निग्ध दृष्टि और निर्दोष स्वच्छ हंसी के ढंग से आप ही आप बरस पड़ता था; उसके साथ संसार में और किसी की क्या तुलना की जा सकती है? राखाल उसी की एकान्त श्रद्धा से युक्त अकुंठ निर्भरता प्राप्त करके ही तो आज अपने को विवाह के दायित्व से सम्पन्न व्यक्ति, क्षण भर के लिए भी, सोचने में समर्थ हुआ है।

सोचते-सोचते चिन्तन के मूलसूत्र को भूल कर राखाल शारदा के ही विषय में सोचने लगा।

शारदा ने उस दिन रात को कहा था—आप अनेक लोगों का बहुत कुछ करते हैं, मेरा भी उपकार किया है, उससे आपकी हानि नहीं हुई। यदि मैं जीती रही तो केवल इतना ही जान रखना चाहती हूँ।

परन्तु सचमुच क्या यही बात है? राखाल बहुतों का ही बहुत कुछ करता है, यह बात शायद सत्य है; शारदा का भी कुछ साधारण उपकार या सहायता की है; किन्तु उससे क्या राखाल की कोई क्षति नहीं हुई? यदि क्षति न होती तो क्यों वह उस दिन रात को इस तरह अपने को रोकने में—आत्मसंवरण में—असमर्थ हो गया? उसने केवल शारदा का ही रूढ़ तिरस्कार नहीं किया, अपनी मातृस्वरूपिणी नई-माँ तक को कटु बात सुना दी, सो भी एक दूसरे आदमी के सामने ही!

शारदा यदि तारक का यत्न-आदर करती है, तो उसमें राखाल के क्षुब्ध होने की क्या बात है? शारदा के लिए राखाल भी जो है, तारक भी वही है। बल्कि राखाल की अपेक्षा तारक विद्वान् है, बुद्धिमान् है, विचक्षण है। उसके इन सब गुणों का ही शारदा ने उल्लेख किया था। इसमें उसने ऐसा क्या अपराध किया था जिसके लिए राखाल इस प्रकार जल उठा—आपे से बाहर हो गया? उसने क्यों अपने को अकस्मात् वंचित और क्षतिग्रस्त अनुभव किया?

सोचते-सोचते उसका मुख, आँखें और कान जलने लगे। पास ही एक पार्क के भीतर प्रवेश करके एकान्त कोने में पड़ी हुई एक सूनी बेंच पर राखाल लम्बा होकर लेट गया।

आँखें मूंदकर वह सोचने लगा—दो तीन दिन पहले एस्प्लनेड रोड के मोड़ पर वह ट्राम की प्रतीक्षा में खड़ा था। एक चलती हुई मोटर के भीतर से झुककर विमल बाबू ने हाथ हिलाकर उसकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित की। राखाल ने जब विमल बाबू की ओर ताका, तब उन्होंने मोटर रोककर हाथ के इशारे से उसे अपने पास बुलाया और वे उतरकर मार्ग में खड़े हो गये। राखाल के पास जाने पर विमल बाबू ने सबसे पहले पूछा था—अपने काका बाबू और रेणुका का क्या कोई पत्र तुमने पाया है राज?

बहुत ही विस्मित होकर राखाल ने कहा था—क्यों, बताइए तो ?

विमल बाबू ने कहा था—उनके साथ मेरा परिचय है। वहाँ गाँव में वे कैसे हैं, इसकी कोई सूचना नहीं मिली, इसलिए पूछता हूँ।

राखाल ने उत्तर दिया था—वे लोग कुशल से ही हैं।

विमल बाबू ने कहा था—चिट्ठी कब आयी ?

उसने उत्तर दिया था—यही कोई तीन चार दिन हुए।

इसके बाद मौखिक सौजन्य के रूप में उसने विमल बाबू से पूछा था कि आप कहाँ जा रहे हैं ?

विमल बाबू ने उत्तर दिया था—जरा शारदा बेटी के समाचार लेने जा रहा हूँ।

इससे अत्यन्त विस्मित होकर वह अकस्मात् पूछ बैठा था—कौन शारदा ?

विमल बाबू को कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने उत्तर दिया—शारदा को तो तुम जानते हो !

राखाल ने शुष्क कण्ठ से कहा था—वह तो यहाँ नहीं है। नई-माँ के साथ तारक के पास हरिनपुर गई है।

विमल बाबू ने कहा था—यह क्या ? तुम क्या नहीं जानते कि शारदा तुम्हारी नई-माँ के साथ हरिनपुर नहीं गई ?

राखाल ने उत्तर दिया था—जी नहीं। मैं उनके जाने के पहले दिन रात तक शारदा का वहाँ जाना पक्का सुन आया था।

विमल बाबू ने कहा था—पक्का जरूर था; लेकिन मैंने स्टेशन जाकर देखा, शारदा नहीं आई। तुम्हारी नई-माँ ने कहा—उसके जाने का उपाय नहीं है। मुझसे जाते समय कह गई, शारदा अकेली है, बीच-बीच में सुध लेते रहना। इसीसे बीच-बीच में मैं उसकी खबर लेने जाता हूँ।

राखाल फिर प्रश्न कर बैठा—आप जानते हैं कि शारदा हरिनपुर क्यों नहीं गई ?

विमल बाबू ने कहा—शारदा से पूछने पर सुना कि उसके लिए स्वामी की आज्ञा के बिना घर से हिल सकने का कोई उपाय नहीं है।

राखाल ने विमूढ़ भाव से कह डाला—कौन स्वामी ?

विमल बाबू ने उत्तर दिया था—यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। शायद उसका लापता स्वामी ही हो।

राखाल आँखें मूंदे पार्क की बेंच पर लेटे-लेटे एस्पलनेड पर विमल बाबू के साथ की मुलाकात और बातचीत को पंखानुपंखरूप से सोचने-विचारने लगा। शारदा हरिनपुर क्यों नहीं गई? उसने कहा है कि स्वामी की आज्ञा के बिना अन्यत्र जाने का उपाय नहीं। वह स्वामी कौन है? विमल बाबू या और कोई? शारदा के लापता स्वामी जीवन बाबू को वह व्यक्ति भले ही अनुमान करले, किन्तु एकमात्र राखाल स्वयं निश्चित रूप से जानता है कि और चाहे जिसको शारदा अपना स्वामी क्यों न बतलावे, पर भागे हुए विश्वासघाती जीवन चक्रवर्त्ती को उसने अपना स्वामी कभी नहीं कहा।

उसे समझने को कुछ शेष नहीं रहा। तो भी राखाल के मन के भीतर कहीं-पर जैसे कोई विरोध बाधा देने लगा।

ग्यारह बज जाने पर पार्क के चौकीदार ने आकर राखाल से चले जाने के लिए कहा। उठकर बोझिल मन से वह जब डेरे पर पहुँचा, तब साढ़े-ग्यारह बज चुके थे। बिस्तर पर लेटकर सोने के पहले उसने मनमें पक्का कर लिया कि कल सवेरे उठते ही वह एक बार शारदा से मिल आवेगा। चाय डेरे पर नहीं पियेगा। शारदा से ही चाय तैयार कर देने के लिए कहेगा।

इस सिद्धान्त पर पहुँचने के बाद राखाल मन-ही-मन बहुत ही स्वच्छन्दता का अनुभव करने लगा। इसके बाद अनेक संभव-असंभव कल्पनाएँ करते-करते वह सो गया।

१८

दूसरे दिन जब राखाल की नींद खुली, तब बहुत दिन चढ़ आया था। फेरी-वालों की ऊँची आवाजों से गली गूंज रही थी। दीवाल की घड़ी की ओर ताक-कर राखाल बहुत ही लज्जित भाव से उठ बैठा। मुंह-हाथ धो चुकने के बाद बाल बनाने का सामान निकालकर शेव बनायी। धुली धोती और कुर्ता निकालकर उसने कपड़े बदले। मन लगाकर बालों पर ब्रुश फेरते-फेरते उसे चाय

पीने का तगादा करती हुई जम्हाई बार-बार आने लगी। हँसकर स्टोव की ओर ताककर राखाल ने धीरे से कहा—तुम्हें इस समय छुट्टी है।

छोटे-मोटे काम यथासम्भव फुर्ती से वार्निश किये हुए चमचमाते जूतों को पुराने रद्दी मैले रूमाल से अच्छी प्रकार झाड़-पोंछकर पैरों में पहनने का उद्योग कर ही रहा था कि बाहर से डाक-पियून ने पुकारा—तार है।

राखाल ने जूते वहीं पड़े रहने दिये और उत्सुक आग्रह से दौड़ पड़ा। दस्तखत करके तार खोलकर पढ़ते-पढ़ते उसके चेहरे कर अँधेरा छा गया। व्रज-बाबू बहुत बीमार हैं, रेणु ने शीघ्र आने का अनुरोध किया है। तार हाथ में लिये, जरा देर वह द्विधाग्रस्त होकर कमरे में खड़ा रहा; सोचने लगा, अब शारदा से मिलने जाय या नहीं। टाइमटेबिल निकालकर ट्रेन का समय देख डाला। नौ बजे एक ट्रेन है, लेकिन वह पकड़ी न जा सकेगी साढ़े आठ हो चुके हैं। बेदाना, अंगूर, सन्तरे आदि फल और रोगी के लिए आवश्यक और और चीजें भी खरीदनी होंगी। अतएव नौ बजे की गाड़ी मिलनी असंभव है। अगली ट्रेन साढ़े बारह की है उसके लिए पर्याप्त समय है। दरवाजे पर ताला लगाकर राखाल चिन्तित मुख से शारदा से मिलने के लिए चल पड़ा। कलकत्ता छोड़कर बाहर जानेके पहले एक बार उसे यह बता जाना उचित है। सोचा कि वहाँ ही जल्दी से चाय पीकर लौटते समय आवश्यकता की चीजें खरीदकर साढ़े बारहकी गाड़ी से रवाना हो जाऊँगा।

शारदा के डेरे पर पहुँचकर राखाल ने देखा, दरवाजे के सामने के चबूतरे पर चटाई बिछाये शारदा चार-पाँच छोटे-छोटे लड़की-लड़कों को पढ़ा रही है। कोई स्लेट पर लिख रहा है, कोई हिज्जे सीख रहा है, कोई पद्य रट रहा है। राखाल को देखकर शारदा न तो व्यस्त हुई और न विस्मित। धीरे-धीरे उठकर खड़ी हो गई और पढ़ने वाले बच्चों से बोली—जाओ, अब तुम लोगों को छुट्टी है। आज दोपहर को पढ़ाई होगी।

बच्चों के चले जाने पर शारदा ने चबूतरे से आँगन में उतरकर राखाल को प्रणाम किया और कहा—खड़े क्यों हैं, भीतर चलकर बैठिए।

राखाल ने सूखे गले से कहा—'नहीं, बैठने का अब समय नहीं है, दो एक बात पूछकर ही चला जाऊँगा।'

राखाल ने शायद मन-ही-मन आशा की थी कि शारदा मुझे देखकर आश्चर्य और आनन्द से अभिभूत हो जायगी। लेकिन शारदा के व्यवहार से मालूम हुआ कि राखाल आज इस समय आयेगा यह बात वह मानो पहले से ही जानती थी।

पहले तो रेणुका का तार पाकर उसका मन था उद्विग्न, चंचल, उस पर से शारदा की सहज शान्त अभ्यर्थना ने राखाल के मन को फीका बना दिया। मन के अन्दर एक ऐसा अकारण अभिमान घूमने लगा जिसका कारण स्पष्ट रूप से बताना कठिन है।

राखाल ने कहा—'सुना है तुम नई-माँ के साथ हरिनपुर नहीं गई।'

शारदा चुप हो रही।

उत्तर न पाकर राखाल ने फिर कहा—'क्यों नहीं गई क्या मैं जान सकता हूँ?'

शारदा को कोई भी उत्तर न देते देखकर राखाल के मन में उत्तरोत्तर उत्ताप बढ़ता जा रहा था। उसकी मौनता तोड़ देने के लिए शायद वह इस बार बोल उठा—'मेरा कर्ज तो उस दिन कौड़ी पाई तक तुमने चुका दिया। इसलिए बात का उत्तर न देने से भी काम चलेगा, लेकिन नई-माँ का कर्ज भी इसी समय के बीच क्या तुमने चुका दिया है शारदा?

शारदा के चेहरे पर वेदना का चिह्न स्पष्ट हो उठा। तो भी उसने कठिन उपहास का उत्तर नहीं दिया। मृदु कण्ठ से उसने कहा—'आपको जो कुछ कहना हो कमरे में चलकर कहिए। यहाँ खड़े रहकर बीच बाजार में मत कहिए। कमरे में चलकर बैठिए। तुरन्त ही आ रही हूँ। चले मत जाइएगा।'

इतना कहते-कहते शारदा एक ही क्षण में चबूतरे के दूसरी ओर घेरा डाले हुए दूसरे किरायेदारों के हिस्से में अन्तर्हित हो गई। विरक्त राखाल उसको लक्ष्य करके घबराहट भरी आवाज से कहने लगा—'नहीं, नहीं, मुझे बैठने का समय बिलकुल नहीं है। अभी तुरन्त मुझे जाना पड़ेगा, जो कहने आया हूँ—सुनकर जाओ···।'

लेकिन शारदा तब तक चली गई थी। राखाल थोड़ी देर तक आँगन में खड़ा रहकर चला जाय या और थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करे इसी दुविधा में

पड़ गया। अन्त में खिन्न मन से शारदा के कमरे में जाकर बैठ ही गया। पाँच आदमियों के घर में चिल्लाकर शारदा को बार-बार पुकारा भी नहीं जा सकता, खड़ा रहना और भी भद्दा लगता है। राखाल के कमरे में बैठ जाने के एक मिनट के अन्दर ही शारदा एक छोटी एल्युमिनियम की केटली की डण्डी पर धोती का आँचल लपेटकर उसे मुट्ठी में पकड़कर कमरे में आ गई। ढक्कन से दबाई हुई केटली से थोड़ी गरम भाप निकल रही थी। कमरे के कोने में केटली रख देने के बाद खिड़की के ऊपर के ताखे से एक सफेद चमकाहट भरा काँच का प्याला, प्लेट और एक नया चम्मच उतार लिया। चाय का टीन बिल्कुल ही नया है, पैकिंग खोला नहीं गया है। शारदा ने लेबिल फाड़ कर तेज हाथ से टीन खोलकर केटली के जल में चाय की पत्ती डालकर ढक्कन से दबा दिया। उसके बाद प्याला, प्लेट और चम्मच को बाहर से धोकर ले आई। उसके साथ ही ले आई कागज की पुड़िया में चीनी और छोटे से काँच के गिलास में दूध।

कुर्सी पर बैठकर राखाल मौन हो शारदा का काम करना देख रहा था। दिन काफी चढ़ आया है लेकिन चाय पीना नहीं हुआ है। सिर में दर्द है, उठने की नौबत आ रही है। इसलिए शारदा का चाय का आयोजन देखकर उसकी विरक्ति और अभिमान बहुत कुछ ही घट गया था। तथापि भ्रम मिटाने के लिए उसने कहा—'इतना ठाट करके चाय किसके लिए बन रही है?'

शारदा ने चाय छानते-छानते मुस्करा कर गर्दन घुमाकर एक बार राखाल की ओर देखा। उसके बाद वह फिर अपने काम में जुट गई।

मन ही मन लज्जित होने पर भी राखाल तब यह न कह सका—मैं न पीऊँगा। तब तक शारदा दूध-चीनी मिली सुनहरे रंग की गरम चाय में चम्मच हिलाते-हिलाते प्लेट को राखाल के सामने रख चुकी।

चाय लेने में कुछ हिचक दिखाकर राखाल ने कहा—'इसके लिए इतनी देर तक मुझे रोक रखना तुम्हारे लिए ठीक नहीं हुआ शारदा, कुछ भी इसकी आवश्यकता नहीं थी।'

शारदा ने अज्ञान की तरह मुंह बनाकर कहा—'मैं यह जानती नहीं थी। इच्छा न हो तो रहने दें, वापस ले जाऊँ।'

ओठों के छोर पर दबी हुई दुष्ट हँसी छिपी थी। राखाल उस हँसी को पहचानता है। उसका हृदय कांप उठा, हाथ बढ़ाकर बोला—'जब बना ही चुकी हो मेरे लिए तो वापस ले जाना ठीक न होगा।'

शारदा ने इस बार ओंठ दबाकर हँसते-हँसते चाय का प्याला हाथ में उठा लिया और राखाल को देकर चुपचाप बाहर चली गई। थोड़ी ही देर में सफ़ेद कांच के एक प्लेट में कई गरम सिंघाड़े और दो ताजे राजभोग रसगुल्ले लेकर लौट आई। राखाल ने प्लेट की तरफ देखकर कहा—'यह सब फिर क्यों ले आई ?'

शारदा ने गम्भीर मुंह के कहा—'चाय के साथ जल-पान के लिए। लेकिन चाय के प्याले को तो खाली कर देना पड़ेगा, इस बार और एक प्याला चाय आपको छान कर दूंगी। मेरे यहाँ दूसरा प्याला नहीं है।'

इस बार राखाल ने फिर आपत्ति नहीं की। एक ही सांस में बाकी चाय पीकर प्याले को फर्श पर रख दिया। उसके बाद निर्विवाद ही जल-पान के प्लेट को उठा लिया।

शारदा चाय की दूसरी प्याली ले आकर सामने खड़ी हो गई तो राखाल ने खाते-खाते मुंह ऊपर न उठाकर ही प्रश्न किया—'अच्छा शारदा, तुम स्वयं तो चाय पीती नहीं हो लेकिन मकान में चाय का सामान किसके लिए रखा है ?'

शारदा ने कहा—'यही मान लीजिए, तारक बाबू···!'

राखाल ने कहा—'अच्छा समझ गया !' हाथ के अर्ध समाप्त सिंघाड़े को समाप्त करके जल-पान समेत प्लेट को राखाल ने नीचे उतार कर रख दिया।

शारदा घबराकर झुक पड़ी और अकृत्रिम व्यग्रता से बोल उठी—'यह क्या रसगुल्ला तो आपने बिल्कुल छूआ ही नहीं। नहीं-नहीं, यह नहीं होगा देवता ! प्लेट उठा लीजिए। सब ही न खाने से मैं सिर पटक कर मर जाऊंगी कहे देती हूँ।'

अचानक शारदा की इस आन्तरिक चंचलता से राखाल अवाक् विमूढ़ की तरह बोला—'लेकिन मुझे तो सचमुच ही खाने की रुचि नहीं है शारदा ! सब जल पान न खाने से सचमुच ही क्या तुमको कष्ट होगा ?' शारदा ने अप्रसन्नता

के साथ कहा—'हां, हां, होगा। कहती हूँ आप खाइए। रसगुल्ला आप कितना पसन्द करते हैं क्या मैं नहीं जानती ? सवेरे रोज ही तो आप चाय के साथ गरम सिंघाड़े मंगाकर खाते हैं। बताइए, खाते नहीं ?'

राखाल ने विस्मित होकर कहा—'लेकिन तुम इन सब गुप्त बातों को जान कैसे गईं ?'

शारदा ने शान्त भाव से कहा—'मैं जानती हूं।' उसके बाद वह हँसते-हँसते बोली—'अच्छा, शपथ करके बताइए तो, एक प्याला चाय पीने से आप-की प्यास किसी दिन बुझती है ! दो प्याला चाय न मिलने से मन खट-खट करता है या नहीं ?'

राखाल ने रसगुल्ले से भरे हुए गाल से भारी स्वर में कहा—'हूं, समझ गया। लेकिन मैं जो अपने घर पर चाय पीता हूँ ठीक इसी प्रकार के बड़े प्याले में, तारक यह सूचना भी तुमको दे गया है ?'

शारदा ने उत्तर नहीं दिया। राखाल का चाय पीना और जलपान हो जाने पर मुंह धोने का जल और सुपारी इलायची लाकर दे दिया।

हाथ मुंह धोने के लिए एक साफ अंगोछा हाथ में देकर शारदा बोली—'आंगन के बीच में खड़े होकर ऊंची आवज से जो बात कहना चाहते थे, अब वह कहिए।'

राखाल ने लज्जित होकर कहा—'शारदा मैं देखता हूं कि तुम आजकल प्रत्येक बात में मेरा मजाक करती हो।'

जीभ दबाकर शारदा ने कहा—'बाप रे ? क्या कहते हैं, देवता ? इतना बड़ा दुस्साहस मुझमें नहीं है। ब्रह्मतेज से क्या मैं भस्म न हो जाऊंगी ?'

राखाल ने गम्भीर मुंह से कहा—'मैं जानने आया था, तुम नई मां को अकेली हरिनपुर भेजकर किस आवश्यक काम से कलकत्ते में रह गईं ? तुमको इसका सही उत्तर देना होगा।'

शारदा थोड़ी देर तक चुप हो रही। बाद को बोली—'पहले आप एक बात का सही उत्तर देंगे, बताइए ?'

'दूंगा।'

'जो प्रश्न आपने मुझसे पूछा है, स्वयं ही क्या सचमुच उसका उत्तर आप

नहीं जानते ?'

राखाल कठिनाई में पड़ गया। हुटक-हुटक कर बोला—'मैंने जो अनुमान किया है वह ठीक है या नहीं जान लेने के लिए तो तुमसे पूछ रहा हूं शारदा !'

शारदा ने कहा—'तो आप जान रखिए, अपने मन से जो उत्तर आपको मिला है, वही सही है। अपना हृदय कभी मनुष्य को धोखा नहीं देता।'

राखाल चुप होकर बैठा रहा। शारदा जूठा प्याला और प्लेट वगैरह उठाने की तैयारी कर रही थी उसी तरफ देखकर राखाल ने कहा—तो भी अपने मुह से तुम साफ बतला नहीं सकी, गई क्यों नहीं ?'

शारदा ने हंसकर हाथ का जूठा प्याला और प्लेटों को इशारे से दिखाकर कहा—'इसी के लिए नहीं गई। अब स्पष्ट उत्तर मिला तो''''।' यह कहकर वह बाहर चली गई।

राखाल चुपचाप बैठा रहा। सोचने लगा कि कुछ दिन पहले मैंने कहा था—'संसार में शारदाओं को बहुत देख चुका हूं ! लेकिन सचमुच ही क्या बात है ? इस शारदा की बराबरी की क्या एक भी स्त्री से जीवन में भेंट हुई है। जीवन-दान के मूल्य में इस तरह निःशब्द जीवन उत्सर्ग और कौन कर सकती है !

साफ बर्तनों को लाकर ताखे पर सजाकर रखते-रखते शारदा ने कहा—'पहले जिस दिन मेरे घर मे आपके पैरों की धूलि पड़ी थी देवता आपको चाय बनाकर मैंने पिलाना चाहा था। आपने कहा था—असमय में चाय पीना मुझसे सहा नहीं जाता। जलखावा लाकर देना चाहा था, मेरा आग्रह देखकर आपको दया आ गई थी। आपने कहा था—फिर जिस दिन समय पाऊंगा, मैं स्वयं ही मांगकर तुम्हारी चाय, तुम्हारा जलखावा खा जाऊंगा, तभी मैंने चाय का सामान जुटाकर घर में रख छोड़ा है। जानती थी एक न एक दिन आप मकान में बैठकर मेरे हाथ की चाय और जलखावा ग्रहण करेंगे ही। लेकिन आपने कहा था कि स्वयं ही मांगकर खाऊंगा। मेरे भाग्य में वह अब नहीं हुआ।'

राखाल मौन होकर बैठा रहा। उसे याद पड़ गया वह आज घर से बाहर निकला था चाय-जलखावा मांगकर खाने के ही विचार से।

बहुत समय चुप रहने में बीत गया। राखाल को एकाएक याद पड़ गया बाजार करके जल्दी घर लौट जाना आवश्यक है। चौंक के साथ उठकर खड़ा होकर बोला—'आज मैं जा रहा हूँ शारदा! साढ़े बारह बजे मुझे गाड़ी पकड़नी है।'

शारदा ने आश्चर्य में पड़कर पूछा—'कहाँ जाइएगा?'

'चाचा जी बहुत बीमार हैं। रेणुका ने वहाँ जाने के लिए तार भेजा है।'

शारदा ने चिन्तित चेहरे से कहा—'नई-माँ के पास आपने सूचना भेज दी है?'

'नहीं, नई-माँ तो हरिनपुर में हैं? तुम उनकी चिट्ठी-पत्री पाती हो कभी?'

'हाँ। वे हर एक चिट्ठी में चाचा जी और रेणुका का समाचार जानना चाहती हैं। आपका कुशल समाचार प्रत्येक पत्र में पूछती हैं।'

राखाल ने कहा—'तो तुम उनके पास यह सूचना भेज देना। मुझे उन्होंने चिट्ठी-पत्री नहीं लिखी।'

शारदा ने कहा—'लिख दूंगी। जरा ठहरिए देवता। मुझे लौटने में देर न लगेगी।'

शारदा टीन का बक्स खोल कर कुछ कपड़े लेकर कमरे से बाहर चली गई।

राखाल को अधिक देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कुछ मिनटों में ही शारदा मिल की साफ धोती और एक छोटी-सी पोटली हाथ में लेकर कमरे में आई।

आश्चर्य में पड़ा हुआ राखाल शारदा के मुंह की तरफ देखने लगा तो शारदा ने कहा—'मुझे भी तो आपके साथ चलना पड़ेगा?'

राखाल ने आश्चर्य में पड़कर कहा—'तुम कहाँ जाओगी मेरे साथ?'

'चाचा जी बीमार हैं। रेणुका अकेली है। मैं वहाँ जाने पर बहुत से कामों में लग सकूंगी।'

राखाल ने भौंहें टेढ़ी करके कहा—'लेकिन…!'

बीच ही में रोककर शारदा ने कहा—'ऐसा मत कीजिए देवता! दोनों पैरों पर गिरती हूँ। चाचा जी मुझे पहिचानते हैं, रेणुका भी मुझे जानती है,

मेरे जाने से वे लोग अप्रसन्न नहीं होंगे।'

राखाल खड़ा होकर सोचने लगा। सोचकर उसने देख लिया शारदा को साथ ले जाने से लाभ के अलावा कोई हानि न होगी। उसने कहा—'अच्छा तो चलो। लेकिन तुम्हारा खाना-पीना तो हुआ नहीं। मैं बाजार से लौट आता हूँ। तुम ग्यारह बजने के पहले स्नान-भोजन करके तैयार हो जाओ।'

शारदा ने पूछा—'आपके भोजन का क्या होगा ?'

'मैं स्टेशन पर होटल में खा लूंगा।'

'मेरी रसोई चढ़ी हुई है। आप साढ़े दस बजने के पहले खाना तैयार पाइएगा। यहीं आज थोड़ा-सा खा लीजिए न देवता।'

'नहीं, नहीं! मेरे खाने के लिए तुमको झंझट करना न पड़ेगा। मैं दुकान से खाने की चीज खरीद सकूंगा।'

'आपको भात खाना न पड़ेगा। गरम पूड़ी बना दूंगी। पूड़ी खाने में आपको आपत्ति क्या है ?'

'आपत्ति कुछ भी नहीं है। अभी उस दिन तो रात को खाया था तुम्हारे पास। अभी पेट के अन्दर चाय-जलखावा हजम नहीं हुआ है।'

'तो इस दशा में दो-चार पूड़ियाँ ही बना दूं ?'

'अगर खाऊँगा तो भात खाऊँगा, पूड़ी नहीं। जात का भय मुझे नहीं है। अभी तक मैं तारक बाबू नहीं बन सका हूँ।'

शारदा ने हँसकर कहा—'तारक बाबू पर इतने अप्रसन्न क्यों हैं देवता?'

राखाल ने हँसकर कहा—'तुम जानती हो कि तारक जिसके-तिसके हाथ का अन्न ग्रहण नहीं करता।'

शारदा हँसने लगी—उसने उत्तर नहीं दिया।

राखाल ने कहा—'तो मैं जा रहा हूँ। सब चीज सामान खरीद कर एक बार घर पर स्नान करके बक्स बिस्तर लेकर लौटूंगा। तुम तैयार रहना।'

राखाल बाहर चला गया। प्रायः पौने बारह बजे लौट आया। एक फल की टोकरी में नारंगी, बेदाना, अंगूर आदि तालमिश्री, बार्ली, साबूदाना, एक टीन उत्कृष्ट मक्खन, एक टीन रोगी के लिए पथ्य, हल्का बिस्कुट आदि खरीद लाये हैं। इसके अलावा हॉट वाटर बैग, आइस बैग, आयल क्लाथ आदि रोगी

के लिए आवश्यक कुछ सामान भी उसने खरीद लिये हैं। साथ में है उसका अपना बिस्तर और बक्स।

राखाल ने लौट आने के साथ ही भात माँगा। शारदा ने अपने कमरे की फर्श पर आसन बिछाकर चौका लगा दिया।

राखाल ने पूछा—'तुम तैयार हो न शारदा ?

शारदा ने उत्तर दिया—'मैं तो बहुत देर से ही तैयार हूँ।'

राखाल ने आसन पर बैठकर चुपचाप भोजन करने में मन लगाया। भोजन का आयोजन अत्यन्त साधारण ही था। लेकिन उसके पीछे जो आन्तरिकता और सयत्न आग्रह विद्यमान था, उसका परिचय राखाल के हृदय को अज्ञात नहीं रहा, तृप्तिपूर्वक भोजन कर उठने पर शारदा ने लोटे का पानी हाथ पर डाल दिया। राखाल जीवन में किसी दिन ऐसी सेवा लेने का आदि नहीं है। इसलिए उसे हिचक-सी मालूम हो रही थी, लेकिन शारदा के इस ऐकान्तिक आग्रहपूर्ण सेवा यत्न में बाधा देने की प्रवृत्ति उसे नहीं हुई। आचमन का जल हाथ पर डालकर दाँत साफ करने की सींक उसने दी। उसके बाद अँगोछे को राखाल के हाथ पर रखकर शारदा ने कई पान के सजे बीड़े लाकर सामने धर दिये।

राखाल ने कहा—'इसे ही विधाता की दया कहते हैं। कहाँ स्टेशन पर खरीदा हुआ खाना और कहाँ शारदा के हाथ का बना अन्न व्यंजन! साथ ही आचमन का जल, दाँत साफ करने का सींक, हाथ पोंछने का अँगोछा, कमरे में सजा हुआ पान, आज मैंने उठकर किसका मुंह देखा था ?'

शारदा मुस्कराने लगी, कुछ भी नहीं बोली। राखाल की जूठी थाली कटोरी बाहर ले जाते-जाते कह गई—आप तनिक बैठिए। मैं दस मिनट में आती हूँ।'

राखाल एक सिगरेट जलाकर खाली चौकी के एक कोने में बैठकर तृप्ति के साथ पीने लगा। उसने देखा, शारदा एक मैली छोटी दरी से लपेटे हुए बिस्तर का छोटा बण्डल चौकी पर रख गई है। चारों ओर निगाह करके देखा तो कपड़े लत्ते की गठरी या बक्स नहीं मिला।

शारदा सचमुच ही दस मिनट के अन्दर लौट आई। राखाल ने पूछा—

'तुम्हारा भोजन हो चुका शारदा ?'

शारदा ने कहा—'भोजन करने ही तो गई थी।'

'यह क्या ? इतने ही समय में भोजन हो गया। जान पड़ता है तुमने अच्छी प्रकार भोजन नहीं किया।'

शारदा ने हँसकर कहा—'आज मैंने सबसे अधिक अच्छी तरह भोजन किया है। देवता का प्रसाद क्या हीन बनाया जाता है ? अब लीजिए, उठिए। सब तैयार है, आपको तो देखती हूँ सामान अधिक है। एक है सूटकेस, एक बिस्तर, एक फल की टोकरी।'

राखाल ने शारदा के परिहास का उत्तर न देकर कहा—'तुम्हारा बिस्तर तैयार है देखता हूँ। कपड़े-लत्ते का बक्स कहाँ है ?'

शारदा ने कहा—'तीन साड़ियों को भी उस बिस्तर के साथ ही मैंने बाँध दिया है।'

राखाल ने आश्चर्य में पड़कर कहा—'उससे काम कैसे चलेगा ?'

शारदा ने मुस्कराकर कहा—'काफी है। गन्दा हो जाने पर साबुन से साफ कर दूंगी। ऐसा तो रोज ही यहाँ करती हूँ।'

राखाल कुछ चुप हो रहा, बार-बार उसे यह ध्यान आने लगा—कपड़ों का तुमको इतना अभाव है, यह क्या मुझसे बता देने से तुम्हारा अपमान होता शारदा ? लेकिन मुंह खोलकर वह कुछ भी न कह सका। क्रोध के झोंक में रुपया वापस लेने की बात याद पड़ जाने से वह अपने को अपराधी सोचने लगा। राखाल ने उदास कण्ठ से कहा—'कहो तो अब टैक्सी ले आऊं !'

शारदा चौंक पड़ी—'अरे मैया, बतलाना ही भूल गई देवता—आपके बाजार करने के लिए बाहर चले जाने के थोड़ी देर बाद ही बिमल बाबू आये थे। वे कह गये हैं कि एक आवश्यक काम से जा रहे हैं, अभी तुरन्त ही लौट आवेंगे। आपसे उन्हें कुछ आवश्यक काम है। वे अपनी मोटर से हम लोगों को स्टेशन तक पहुँचाने को कह गये हैं।'

राखाल के मुंह के भाव की कोमलता उड़ गई। उसने रूखे स्वर से कहा—'आज अब उनसे मुलाकात करने का समय नहीं है शारदा। लौट आने पर भेंट होगी, देर करने से काम नहीं चलेगा। मैं टैक्सी लाने जा रहा हूँ।'

राखाल की बात समाप्त होने के पहले ही सदर दरवाजे के सामने मोटर का हार्न सुनाई दिया और बाहरी आंगन से विमल बाबू का स्वर भी सुनाई पड़ा—'शारदा बेटी !'

शारदा ने बाहर निकलकर कहा—'आइए !'

विमल बाबू ने कमरे में प्रवेश करके कहा—'लो राजू आ गया ! भाग्य अच्छा था कि आज इस ओर आवश्यक काम से आया था। सोचा कि निकट ही जब आ गया हूँ, शारदा बेटी को एक बार देख जाऊँ। यहाँ आकर मैंने सुना कि ब्रज बाबू की बीमारी का तार पाकर तुम लोग आज ही रवाना हो रहे हो। चलो, तुम लोगों को स्टेशन पहुँचा आऊँ। आज बड़ी मोटर लेकर बाहर निकल पड़ा हूँ। सामान ले जाने में दिक्कत न होगी।'

इच्छा न रहने पर भी राखाल आपत्ति न कर सका। सब सामान गाड़ी पर रखे जाने पर विमल बाबू ने राखाल का हाथ पकड़कर कहा—'राजू, मेरा एक अनुरोध मान लो, ब्रज बाबू की बीमारी में यदि किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता तुम समझो, मुझे तार भेजना, भूल मत जाना। बीमारी में अर्थ-बल और जन-बल दोनों ही आवश्यक हैं। तुम सूचना दोगे तो उसी क्षण बड़े डाक्टर को लेकर रवाना हो सकूंगा। मैं ब्रज बाबू और रेणुका का अकृत्रिम हितैषी हूँ, विश्वास करने में शंका मत करना।'

विमल बाबू के स्वर की दृढ़ता से राखाल शायद कुछ अभिभूत हो गया था इसीलिए कुछ आश्चर्य भाव से ही उसने उनके मुंह की तरफ ताका।

विमल बाबू ने कहा—'मैं जानता हूँ राजू, तुमसे बढ़कर दूसरा मित्र आज उन लोगों का कोई नहीं है। तो भी मेरे द्वारा यदि उन लोगों का किसी ओर से कोई भी उपकार तिल मात्र भी सम्भव समझो, मुझे सूचना देने में मत भूल जाना। इतनी ही बात तुमको बताये देता हूँ।'

मानो राखाल कुछ कहने जा रहा था। विमल बाबू ने कहा—'रेणुका और ब्रज बाबू आज कितने अधिक असहाय हैं, मैं यह जानता हूँ राजू !'

राखाल के दोनों नेत्र सजल हो उठे। उसने कहा—'यदि आपके प्रति मैंने अविचार किया हो, मुझे क्षमा करें। चाचा जी की बीमारी में यदि किसी सहायता की आवश्यकता होगी, आपको मैं सूचना भेज दूंगा।'

१६

तारक की सेवा, देख-भाल और अच्छे व्यवहार से सविता का थका हुआ मन बहुत कुछ स्निग्ध हो गया था। उच्छ्वसित वात्सल्य-रस से अभिषिक्त हृदय लेकर सविता तारक के प्रत्येक व्यवहार, प्रत्येक कर्म, प्रत्येक बातचीत में आश्चर्यजनक विशेषता लक्ष्य करके मुग्ध हो रही थी। तारक ने भी सविता को केवल अपनी माँ के ही समान नहीं, बल्कि भक्त जैसे देवता की त्रुटिहीन सेवा करता है उसी प्रकार सेवा टहल करता है।

बातचीत में सविता ने एक दिन तारक से पूछा—'तारक, तुम तो मुझे हरिनपुर में ले आये बेटा, राजू को क्या तुमने वह बात नहीं बताई?'

कुछ दुःखित भाव से तारक ने उत्तर दिया—'नहीं माँ।'

आश्चर्य में पड़कर सविता ने कहा—'लेकिन उसको ही तो अपनी सेवा के पहले सूचना हमें देना उचित था तारक।'

तारक ने कहा—'उसे मैंने सूचना क्यों नहीं दी। उस बात को मैं किसी दूसरे दिन आपको बता दूंगा माँ!'

सविता ने विस्मित होकर कहा—'दोनों मित्रों के बीच तुम लोगों में इसी बीच कौन-सी ऐसी बात हो गई, जिसमें माँ को भी बताने में शर्म लग रही है बेटा!'

मुंह नीचा करके तारक ने कहा—'राखाल शायद वह अभियोग आपसे बता चुका है, यदि उसने न बताया होगा तो जल्दी ही एक दिन बतायेगा ही। इसलिए मैं भी आपको सब बताऊंगा।'

तारक के कुंठित मुख की ओर क्षण भर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते रहकर सविता ने कहा—सुना है, राजू के तुम अभिन्न मित्र हो। मैं जानती थी, तुम उसे पहचानते हो। लेकिन अब समझ में आ रहा है कि तुम मेरे राजू को नहीं पहचान पाये भैया!

तारक ने चंचल होकर कहा—क्यों माँ?

सविता ने कहा—किसी ने उसके साथ चाहे जितना बड़ा अन्याय क्यों न किया हो, राजू ने दुनिया में किसी के पास किसी के नाम पर कभी शिकायत नहीं

की ग्रोर कभी करेगा भी नहीं। शिकायत करने की शिक्षा जीवन में उसने नहीं पाई तारक, सहन करने की ही शिक्षा पाई है।

तारक ग्रोर भी कुंठित हो पड़ा। बोला—मुझे क्षमा कीजिए माँ, कहने के दोष से कुछ गलत न समझिएगा। मैंने कहना चाहा था—मेरा मतलब था कि राखाल से ग्रापने मेरे संबंध में जो घटना सुनी है या सुनेंगी, वह बाहर से सत्य होने पर भी सम्पूर्ण सत्य नहीं है।

सविता ने हंसकर कहा—मैंने राजू से कुछ भी नहीं सुना भैया, किसी दिन सुन भी न पाऊंगी; इस संबंध में तुम निश्चिन्त रह सकते हो।

तारक ग्रकस्मात् कुछ उत्तेजित होकर वक्तृता देने की मुद्रा से हाथ-मुंह हिलाकर कहने लगा—किन्तु यह मैं किसी प्रकार न मान सकूंगा माँ, कि ग्रापसे भी हम लोगों के विच्छेद का कारण छिपाना उसके लिए उचित हुग्रा है। ग्रापने उसे केवल स्नेह के रस ग्रोर ग्रन्न के रस से ही नहीं पुष्ट किया है, ग्रापही के निकट उसने ग्रपनी सारी शिक्षा दीक्षा जो कुछ है, सब पाई है। वह जो पृथ्वी पर ग्रब भी जी रहा है ग्रोर भले ग्रादमियों के समान रहकर जी रहा है, इसके लिए वह किसका भारी ऋणी है? किसके ग्राश्चर्य ग्रसाधारण मन ग्रोर ग्रसा धारण जीवनने राखाल की दृष्टि को ग्रोर मन को इतना प्रसारित कर दिया है? किसका ग्रपार स्नेह, ग्राड़से विधाता की करुणा की तरह ही, उसके जीवन की रक्षा सतर्क रहकर करता ग्रा रहा है? उसी माँ से सत्य को छिपाना न्याय न मान सकूंगा माँ, ग्रापके कहने से भी नहीं।

एक सांस में इतनी वक्तृता करके तारक सांस लेने लगा।

सविता स्थिर दृष्टि से तारक की ग्रोर ताकती हुई सुन रही थी। धीर कण्ठ से बोली—तारक, तुम दोनों में क्या बात हुई है भैया?

'तो फिर कहता हूं, सुनो माँ। राखाल ने मुझे ग्रापका जो परिचय दिया था, सो यदि वह ग्रापको सत्य ही ग्रपनी माँ मानता होता तो वैसा परिचय कभी न दे सकता।'

सविता ने कुछ नहीं कहा। उसके मुसकाते हुए चेहरे के भाव में भी कुछ परिवर्तन नहीं देखा गया।

तारक फिर उत्साह के साथ कहने लगा—ग्रापने कहा था माँ किसी के

सम्बन्ध में बिना पूछे, उपयाचक होकर, कोई बात कहना उसका स्वभाव नहीं है। लेकिन मैंने तो इसके विपरीत ही प्रमाण पाया है। उसने उपयाचक होकर ही मुझको अपनी नई-माँ का ऐसा परिचय दिया था, जिसके जानने का मुझे कोई प्रयोजन नहीं था। लेकिन यह मूर्ख यह नहीं समझा कि आग को राख बताने से पहले शायद सुनने वाला भूल कर सकता है, लेकिन भूल अधिक देर तक नहीं टिकती। अग्नि अपना परिचय आप दे देती है।

सविता ने अब भी उत्तर नहीं दिया। पहले ही की तरह प्रश्न की दृष्टि से देखती हुई मौन रही।

तारक कहने लगा—अवश्य मैं यह स्वीकार करता हूँ माँ कि उसने जब बहुत कुछ अतिरंजित कहानी सुनाकर मुझसे प्रश्न किया था कि यह सब सुनकर मुझे घृणा होती है कि नहीं, तब मैंने उत्तर दिया था कि घृणा होना ही तो स्वाभाविक है राखाल। तब तो मैं जानता न था कि उसका अर्थ ही आपके ऊपर अश्रद्धा उत्पन्न कर देना था। यह बात न होती तो सब बातें कहने की तो उसे आवश्यकता न थी।

अबकी सविता बोली। उसने शान्त स्वर से ही कहा—राजू झूठ नहीं बोलता तारक। उसने जो कुछ तुमसे कहा है, सब सत्य है।

तारक का मुंह उतर गया। सकुचाते हुए अस्पष्ट स्वर में सूखे गले से उसने कहा—आप जानतीं नहीं माँ कि वह कैसी भयानक बात है—

सविता ने कहा—जानती हूँ। तुमने चाहे जो कुछ क्यों न सुना हो तारक, राजू के मुख की कोई भी बात मिथ्या नहीं है।

तारक के गले की नली को जैसे किसी ने सख्त मुट्ठी में दबाकर स्वर रोध कर दिया। चेष्टा करने पर भी उसके कण्ठ से एक शब्द भी नहीं निकला।

सविता धीरे-धीरे कहने लगी—तुमने राजू के सम्बन्ध में केवल गलती ही नहीं की, अविचार भी किया है। उसने तुम्हें कुछ गलत समझाना नहीं चाहा, बल्कि तुम्हीं कुछ गलत न समझ लो, इसी भय से शुरू से ही सब घटना खुलासा करके तुमसे कह दी है। यदि तुमने समझा हो कि उसकी बात झूठ है, तो तुमने बड़ी गलती की है।

तारक ने सूखे स्वर में कहा—लेकिन माँ, मैंने तो कुछ जानना नहीं चाहा

था। फिर उसने उपयाचक होकर क्यों—

सविता ने मलिन हंसी हंसकर कहा—तुम उच्चशिक्षित और बुद्धिमान् हो। सब ओर मन लगाकर सोचकर भले-बुरे का विचार करने की शक्ति ही तुममें रहना संभव है। संसार में ऊपर से देखने में अनेक वस्तुओं को शायद हम एक ही प्रकार की देख पाते हैं; किन्तु सादृश्य रहने पर भी वे सभी वास्तव में एक नहीं होतीं। इसके सिवा, यह तो जानते हो कि बाहर की ओर से भीतर का विचार करना कभी ठीक नहीं होता। ऐसे मामलों में यह बात साधारण लोग नहीं समझ पाते और समझना भी नहीं चाहते। किन्तु तुम तो उन लोगों में नहीं हो। राजू इस बात को जानता है, इसी से उसने अपनी नई-मां के दुर्भाग्य की कहानी तुम्हारे आगे खोलकर कह दी।

तारक बहुत देर तक सिर झुकाये चुप बैठा रहा। फिर सिर उठाकर बोला—राखाल ने एक दिन मुझसे कहा था मां कि संसार में हजार में से नव सौ निन्नानवे स्त्रियां साधारण हैं, कहीं कभी एक आध असाधारण स्त्री देखने को मिलती है। नई-मां वही ९९९ के बाद कभी कहीं मिल जाने वाली एक स्त्री हैं। इच्छा करने पर भी कोई उनका अनादर या अवहेलना नहीं कर सकता। उसने सत्य ही कहा था।

सविता कुछ बोली नहीं, अन्यमनस्क भाव से दूसरी ओर ताकती रही। तारक जरा हिल-डुलकर बैठकर, कण्ठस्वर में बहुत-सा जोश लाकर कहने लगा—ज्ञान होने के पहले ही शिशु अवस्था में मेरी माता नहीं रही थी—पहचानता था केवल पिता को। पिता ने ही अपने हाथ से पाल-पोश कर मुझे बड़ा किया है। वही पिता जब अपने सुख के लोभ से मातृहीन सन्तान के लिए एक सौतेली मां ले आये, तब दुःख, अभिमान और घृणा के मारे मैं घर छोड़कर चला आया। पिता का मुख फिर नहीं देखा, घर का भी नहीं। आपको पाकर मां, जीवन में फिर नये सिरे से पिता-माता के स्नेह का स्वाद पाया। मेरे लिए आप मां के सिवा और कुछ नहीं हैं। आपके जीवन में चाहे जो आंधी तूफान, चाहे जो आघात, चाहे जो गुरुतर परीक्षा ही आई हो, आपके हृदय के अपरिमेय मातृ-स्नेह को वह बूंद भर भी नहीं सुखा सकी। सन्तान के लिए यही सब से बढ़कर 'पाना' है।

सविता ने कहा—तुम्हारे पिता अभी जीवित हैं ?—मगर तुमने तो एक दिन मुझसे अपने को पितृ-मातृ-हीन कहा था।

तारक ने हँसकर कहा—ठीक ही कहा था माँ ? मेरे जन्मदाता शायद अब भी जीवित रह सकते हैं, लेकिन मेरे पिता जीवित नहीं हैं। पिता की मृत्यु हुए बिना मातृहीन अभागी सन्तान के जीवन में विमाता का आविर्भाव नहीं होता—मेरा यही विश्वास है।

सविता विस्मित नयनों से तारक की ओर देखती रही।

तारक कहने लगा—जीवन में मेरी बड़ी-बड़ी आशायें और अनेक उच्च आकांक्षाएँ हैं। केवल खा-पीकर पहनकर किसी तरह जीवन धारण करके जीते रहना मैं नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ—हर चीज की बहुतायत के बीच, ऐश्वर्य के बीच सार्थक सुन्दर जीवन लेकर जीना। हजार आदमियों के बीच मेरे ही ऊपर सब की दृष्टि पड़े, हजार नामों के बीच मेरे ही नाम को लोग जानें। कर्म जीवन की सार्थकता से, यश-गौरव के सम्मान से, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि से उन्नत अधिक जीवन लेकर जियूं—यह मैं चाहता हूँ। केवल धन कमाना ही मेरे जीवन की एकान्त कामना नहीं है, केवल स्वच्छन्द जीविका-निर्वाह ही मेरा चरम लक्ष्य नहीं है।

सविता ने प्रेम भरे स्वर में कहा—यह तो बहुत अच्छा है भैया। मर्द के जीवन में ऐसी ही ऊँची आकांक्षा होनी चाहिए। लक्ष्य जितना उच्च और विस्तृत रहेगा—जीवन भी उतना ही प्रसारित होगा।

तारक ने उत्साहित होकर कहा—आपको तो मैंने बता दिया है माँ कि कितने दुःख और कष्ट से कितनी बाधाओं के बीच, अपने ऊपर ही निर्भर रह कर—अपने ही भरोसे विश्वविद्यालय की सीढ़ियों पर चढ़ा हूँ—परीक्षाएँ पास की हैं। मैं बड़ा जिद्दी हूँ माँ। जो काम करने का मन में विचार करता हूँ, वह जब तक पूर्ण या सिद्ध नहीं होता तब तक चैन नहीं लेता।

सविता मुसकराते मुख से तारक के यौवनोचित आशा, आकांक्षा और उत्साह से दमक रहे मुख की ओर ताककर अन्यमनस्क भाव से जैसे कुछ सोचने लगी।

तारक कहने लगा—अपने जीवन की सारी कहानी केवल आप ही से खोल

कर कही है माँ। क्या जाने क्यों, समय-समय पर मन में आता है कि जीवन में शायद कुछ भी नहीं मिला—कुछ भी नहीं पाया। सोचता हूँ कि यदि किसी दिन लाखों रुपया पैदा भी कर लिया, तो उससे और क्या लाभ होगा ? यश भी यदि देश-देशान्तर में फैल गया तो उससे ही क्या होगा ? सम्मान और प्रतिष्ठा-पूर्ण प्रसिद्धि की चरम सीमा पर चढ़ने से भी क्या मेरी बचपन से चली आ रही अतृप्त तृष्णा मिटेगी ? चिरदिन जो अभिमान, जो दुःख अपने गोपन अन्तर के भीतर ही मैं अकेले धारण किये रहा, विधाता तकसे जिसके लिए नालिश नहीं की, वह वेदना क्या किसी दिन मेरे इस धन, मान, यश या कर्म जीवन की सफलता से दूर होगी ! सारा हृदय जैसे हाय-हाय कर उठता है; काम करने का उत्साह और उद्दीपना ठण्डी पड़ जाती है। मन में आया है कि भाग्य-देवता ने जिस मनुष्य को पृथ्वी पर भेजकर बचपन में ही माता के स्नेह से वंचित कर दिया है, वह कितना बड़ा दुर्भाग्य लेकर मनुष्यों के इस बाजार में आया है, यह किसी को समझाकर कहने की अपेक्षा नहीं रखता। जीव-जगत की सृष्टि करने वाले का सबसे श्रेष्ठ दान माता का स्नेह है। उसी स्नेह से जो जन्म से ही वंचित हैं, उसका फिर—वेदना के आवेग से तारक का गला रुँध गया। सविता की आँखों की कोरों में आँसू भर आये थे। उसने कुछ भी नहीं कहा, सान्त्वना भी नहीं दी। उसके मुख पर गहरी सहानुभूति की छाया सुस्पष्ट हो उठी। जो गाढ़ी वेदना वह चुपचाप बहुत ही छिपाकर हृदय के एकान्त कोने में धारण करती आ रही है, दीर्घ काल से उसके उसी वेदना के स्थान को तारक ने आज बिना जाने छू लिया। तारक के अन्त के कुछ शब्दों ने सविता के सारे हृदय को मथ डाला। चुपचाप आँखें नीची किये वह अपने अशान्त हृदय के आवेग को संयत करने लगी।

सदर-दरवाजे पर डाकिये ने आवाज दी—चिट्ठी—

तारक बाहर जाकर चिट्ठी ले आया।

सविता के नाम चिट्ठी थी। शारदा ने लिखी है। सूचना दी है कि विमल बाबू से राजू की भेंट मार्ग में हुई थी। उसके मुंह से विमल बाबू को सूचना है कि गाँव में कन्या सहित व्रज बाबू कुशलपूर्वक हैं।

सविता ने पत्र पढ़कर, हँसकर कहा—जान पड़ता है, राजू शारदा के यहाँ

नहीं जाता। जाय ही कैसे?—वह तो शायद जानता ही नहीं कि शारदा मेरे साथ हरिनपुर नहीं आई। तारक कुछ बोला नहीं। सविता ने फिर कहा—देखूं मैं ही उसको न हो तो एक चिट्ठी लिख दूं। एक काम करो न तारक, तुम उसे यहाँ आने का निमन्त्रण देकर चिट्ठी लिख दो; मैं भी उसी में उसे यहाँ आने के लिए लिख दूंगी। यहाँ उसके आने से तुम दोनों मित्रों के मान-अभिमान की भी मीमांसा हो जायगी।

तारक ने कहा—अच्छा तो है। मैं आज ही लिखे देता हूँ।

सविता ने स्नेहपूर्ण स्निग्ध कंठ से कहा—राजू मेरा बड़ा अभिमानी तुनक-मिजाज लड़का है। लेकिन उसके हृदय की तुलना मैंने कहीं नहीं देखी।

यह बात सविता ने सहज भाव से ही कही, किन्तु तारक के मन में इसने और अर्थ में चोट पहुँचाई। उसे जान पड़ा कि नई-माँ ने शायद मेरे ही अन्तःकरण के साथ तुलना करके राजू के संबंध में यह बात कही है। उसके मुंह पर अँधेरी छा गई और वाक्य हो गये निस्तब्ध।

सविता इस ओर लक्ष्य न करके ही विगलित कंठ से कहने लगी—राजू के बारे में जब मैं सोचती हूँ तारक, तब विचार होता है कि मेरा राजू अधिक स्नेह का धन है या रेणुका? राजू और रेणू, दोनों में कौन अधिक है और कौन कम, मैं ठीक नहीं कर पाती।

तारक कह उठा—तब तो आप अपने हृदय को अभी तक पहचान नहीं सकीं माँ। रेणुका के साथ राजू की कोई तुलना ही नहीं हो सकती।

सविता ने कहा—क्यों भला बताओ?

"राजू को चाहे जितना सन्तान के तुल्य क्यों न मानें, तो भी वह सन्तान के 'तुल्य' ही रह जायगा—'तुल्य' शब्दों को बाद देकर सम्पूर्ण रूप से अपनी सन्तान न हो जायगा। हो भी नहीं सकता।"

सविता ने कहा—सभी स्थान पर सब मामले एक प्रकार नहीं होते तारक।

'यह मैं जानता हूँ माँ। तो भी कहता हूँ, सुनिये। आप स्वयं ही विचार करके देखिए, आपके हृदय के स्नेह के अधिकार में रेणु और राजू का समान दावा चाहे जितना हो, दोनों में भिन्नता या अन्तर कितना अधिक है, यह मैं दिखाये देता हूँ। आप अपने इस हरिनपुर आने को ही ले लीजिए। चलने के

पहले दिन रात को सुना, राखाल ने आपको हरिनपुर आने के लिए मना किया था। चूँकि आपने कहा था कि लड़का जब सयाना हो तब उसकी सम्मति लेने की आवश्यकता है और यही सुनकर उसने असम्मति प्रकट की थी। पर आप उसको न मानकर मेरे यहाँ चली आईं। लेकिन माँ, यदि रेणु आपके यहाँ आने के सम्बन्ध में अपनी अनिच्छा का जरा-सा भी आभास देती, तो आप हरिनपुर आना निश्चय ही बन्द कर देतीं।

सविता ने जरा चुप रहकर कहा—मैं जानती हूँ तारक, कि राजू ने केवल अभिमानवश अप्रसन्नता से ही मुझे आने को मना किया था। यह उसका केवल तर्क या जिद थी। सचमुच ही यदि मुझे भेजने के बारे में उसकी अनिच्छा होती तो मैं कभी न आ सकती भैया।

'लेकिन मान लीजिए, रेणु यदि केवल जिद या तर्क करके ही आपको कहीं जाने के लिए मना करती तो उसके उस तर्क और जिद की खातिर किये बिना क्या आप रह सकतीं माँ?'

सविता चुप रही। बहुत देर बाद धीरे-धीरे बोली—तुमने ठीक ही कहा है तारक। जान पड़ता है, मनुष्य अपने हृदय ही को सबसे कम जानता है। मगर एक बात है, राजू मेरे निकट रेणु से बढ़कर भले ही न हो सके, किन्तु मैं राजू के निकट माँ से बढ़कर हूँ। मेरी ओर से नहीं, परन्तु राजू की अपनी ओर से वह रेणु से बढ़कर है। इस जगह मुझसे भूल नहीं हुई।

तारक चुप हो रहा। क्षणभर बाद दूसरा प्रसंग उठाकर बोला—कहाँ, विमल बाबू की चिट्ठी तो आज भी नहीं आई माँ?

सविता ने कहा—तुमने क्या हाल में उन्हें चिट्ठी लिखी है?

'लिखी क्यों नहीं! जान पड़ता है, उन्होंने आपको आठ-दस दिन से चिट्ठी नहीं दी। यही बात है न?'

'हाँ। लेकिन मैंने भी उनकी पहले की चिट्ठी का उत्तर अभी तक नहीं दिया। जान पड़ता है, इसीसे उन्होंने चिट्ठी नहीं लिखी। कारण, यह तो शारदा की चिट्ठी से मुझे मालूम ही हो जाता है कि वह कुशल से हैं।'

तारक ने उच्छ्वसित कण्ठ से कहा—यही एक मनुष्य मैंने देखा है माँ, जिसके पैरों पर आप ही सिर झुक जाता है।

सविता ने उत्तर नहीं दिया।

तारक आप-ही-आप कहने लगा—कैसा बड़ा मन है, कैसा उदार चरित्र है, कैसे बढ़िया आदमी हैं। सच्चा कर्मवीर है। जीवन में ऐसे सार्थक पुरुष कम ही देख पड़ते हैं।

सविता ने मुस्काकर कहा—यह बात तुमने किस हिसाब से कही तारक? आर्थिक उन्नति के सिवा उन्होंने संसार में और कौन-सी सफलता प्राप्त की है? और सारे जीवन में वे ऐसा कौन-सा बड़ा आनन्द संचय कर पाये हैं?

तारक ने उच्छ्वास की झोंक में कह डाला—जो आदमी अपने सामर्थ्य से अत्यधिक धन अनायास कमा सकता है, इतने बड़े-बड़े धन्धे खड़े कर सकता है, उसके जीवन में और छोटी-मोटी सार्थकतायें हों या न हों, उनको लेकर आक्षेप नहीं है माँ। मर्द आदमी के कर्ममय जीवन की इस प्रकार की बहुत बड़ी सार्थकता की अपेक्षा और क्या कामना रह सकती है, बोलिए?

सविता हँसी, उत्तर नहीं दिया। तारक के मुंह से पुरुषों के जीवन की उच्च आकांक्षा और उच्च आदर्श के सम्बन्ध में अब तक वह बहुत-सी बड़ी-बड़ी बातें और कल्पनाएँ ही सुनती आ रही थी। किन्तु उसके व्यक्तिगत जीवन की आशा आकांक्षा सार्थकता का लक्ष्य किस ओर है, यह वह किसी दिन स्पष्ट करके निर्देश नहीं कर पाया था या किया नहीं था। सविता की चिन्ता-धारा न जाने कैसी एक अनिर्दिष्ट शून्यता में खो गई।

शिबू की माँ ने आकर पुकारा—माँजी, देर हुई जा रही है, चलकर भोजन बना लीजिए।

तारक ने कहा—बहुत दिन से तो माँ के हाथ का अमृतस्वरूप प्रसाद पा रहा हूँ। अब पाचिका को ही हाँड़ी चढ़ाने की अनुमति दीजिए। इस घोर गर्मी में आंच के सामने बैठने से आपकी तबियत खराब हो जायगी।

सविता ने हँसकर कहा—आग की गर्मी में रसोई करने से औरतों का स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता तारक, उन्नत होता है।

'यह साधारण स्त्रियों को हो सकता है माँ, आप उनके दल में नहीं हैं—मैं जानता हूँ।'

'तुम कुछ नहीं जानते बेटा।'

'नहीं माँ, मैं नहीं सुनूंगा। देखा है, कलकत्ते के घर में आपका रसोइया महाराज था। फिर यहाँ क्यों आप महाराज के हाथ का नहीं खायेंगी, बताएंइ ? महाराज के हाथ का खाना खाने को जी नहीं चाहता, यह आपका बहाना व्यर्थ है। वास्तविक बात यह है कि आप स्वयं परिश्रम करना चाहती हैं।'

'यदि यही हो तो उसमें तुम्हें आपत्ति क्यों है भैया ?'

अकृत्रिम आन्तरिकता के साथ प्रबल वेग से सिर हिलाकर तारक ने कहा—ना, यह न होगा। अपनी राजराजेश्वरी माँ को मैं प्रतिदिन अपने हाथ से रसोई बनाने, मसाला पीसने, कपड़े धोने का काम न करने दूंगा। ये सब सचमुच आपके काम नहीं हैं माँ।

सविता के दोनों नेत्र सजल हो उठे। बिलकुल अन्यमनस्क भाव से जैसे कुछ सोचने लगी। कुछ बोली नहीं।

तारक ने कहा—आज से दासी और महाराज आपका काम करेंगे—मैं उनसे कहे देता हूं। अब आपके ये सब अत्याचार नहीं चल सकेंगे।

सविता ने करुण हंसी के साथ कहा—तारक, अगर मुझको इतना-सा भी काम न करने दोगे भैया, तो यह मुझ पर ही अत्याचार होगा। मैं तुमसे स्पष्ट कहती हूं कि महाराज का बनाया खाना मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा। दासी-चाकर की सेवा मेरे शरीर में बिछूटी या करेंच का कोड़ा मारेगी। यह जान-कर भी यदि तुम मेरे काम के लिए नौकर-नौकरानी रखना चाहो तो मैं लाचार हूँ।

तारक ने विस्मय से अभिभूत होकर कहा—आप क्या हमेशा ही इस प्रकार अपना सब काम अपने ही हाथ से करती रहेंगी माँ ?

सविता ने कहा—हमेशा करूंगी कि नहीं, यह नहीं जानती भैया ! लेकिन आज मैं दास-दासी की सेवा सहन नहीं कर पाती, इतना ही कह सकती हूँ। ईश्वर ने यदि कभी मुंह उठाकर देखा तो तुम्हारे ही पास और किसी समय आकर पलंग पर बैठे-बैठे नौकरानियों से सेवा लूंगी बेटा !

तारक सविता की बात का रहस्य भेद न कर सका। दुःखित चित्त से चुप हो रहा। कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोला—माँ, मनुष्य को मनुष्य छोटा कैसे समझता है, यही सोचता हूँ। लेकिन मैं मनुष्य का परिचय एक मात्र मनुष्य के

सिवा जाति-पाँति कुल-गोत्र से पृथक करके सोच ही नहीं सकता। इसीलिए मेरे निकट मुसलमान, क्रिस्तान, ब्राह्मण, बौद्ध, वैष्णव, शाक्त, सभी समान हैं।

सविता के विषाद-गम्भीर मुख पर आनन्द की आभा फूट उठी। उन्होंने कहा—यह मैं जानती हूँ तारक। तुम्हारा अन्तःकरण कितना ऊँचा और उदार है, तुमसे परिचित होने के पहले ही मैंने जान लिया था। तुमको मैं स्नेह करती हूँ, विश्वास करती हूँ।

तारक ने विस्मय और कुतूहल-मिश्र कण्ठ से कहा—मुझे देखने के पहले से ही आपने मेरा परिचय पा लिया था माँ? कहाँ, इतने दिन तो आपने बताया नहीं!

सविता स्नेह के साथ मुस्करा दी।

तारक ने कहा—किन्तु चाहे जिससे मेरे बारे में आपने सुना हो, यह आपने कैसे जान लिया कि मैं विश्वास के योग्य हूँ?

ममतामय कोमल स्वर से सविता ने कहा—कैसे जाना यह मत सुनो भैया! हाँ, यह जान लो कि मैं जानती थी, इसीलिए तुम्हारे स्नेह के आह्वान को पूरा करने के लिए राजू के भी मन को व्यथा देकर यहाँ आई हूँ। इसमें कोई भी भूल नहीं है।

तारक ने अभिभूत स्वर में कहा—मुझ पर इतना स्नेह, इतना विश्वास करती हो माँ?

सविता ने गम्भीर स्वर में कहा—केवल विश्वास नहीं बाबा, उससे भी बढ़कर तुम्हारे ऊपर भरोसा करने का साहस मैंने पाया है। तुम तो जानते हो तारक, मेरे कोई लड़का नहीं है। राजू ने मेरे लड़के के अभाव को अवश्य पूरा किया है, फिर भी कुछ अपूर्ण है। वह शून्यता—तुमको ही पूरी करनी होगी भैया।

तारक विस्मय-विमूढ़ चित्त से अभिभूत की तरह ताकता रहा।

२०

शारदा को साथ लेकर राखाल जिस समय ब्रज बाबू के पलंग के पास पहुँचा उस समय रोग का प्रबल प्रकोप कुछ घट जाने पर भी पूरा रोग कम नहीं हुआ था। इस रोग से ब्रज बाबू शरीर के साथ मन से भी अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। राखाल को देखकर उनके बन्द नेत्रों से आँसू लुढ़क कर गिरने लगा। स्वभावतः कोमल चित्त राखाल अपने पितृतुल्य चाचा की असहाय अवस्था देखकर नेत्रों का जल न रोक सका।

ब्रज बाबू ने कोमल स्वर से धीरे-धीरे कहा—'राजू, तुमको मैंने बुलाया था।' फिर कण्ठ को साफ करके उन्होंने कहा—'तुम्हारी बहिन की देख-भाल करने वाला कोई नहीं है बेटा, उसके लिए ही तुमको बुलाना हुआ।'

राखाल चुप रहा। ब्रज बाबू अत्यन्त क्षीण स्वर में कहने लगे—'राजू, यहाँ इन लोगों ने मुझे समाजच्युत कर रखा है। मेरे गोविन्द जी अपनी कोठरी में प्रवेश नहीं कर सके, यथा स्थान आसीन नहीं हो सके। रेणुका मेरे गोविन्द जी का भोग तैयार करती है इस पर सबको आपत्ति है। मेरे न रहने पर यहाँ कोई भी मेरी रेणुका का भार नहीं लेगा। इसको तुम ले जाकर उसकी विमाता के पास ही पहुँचा देना। हेमन्त अप्रसन्न होगा, जानता हूँ, लेकिन आश्रय अवश्य देगा। इसके अलावा और तो कोई उपाय खोजने पर नहीं मिलता बेटा।'

राखाल चुप हो रहा। बेचारी निर्धन, अविवाहिता रेणुका को उसकी विमाता और विमाता के विषय-बुद्धि सम्पन्न भ्राता अपनी गृहस्थी में ग्रहण करेंगे या नहीं इस सम्बन्ध में वह सन्देह करता था। तो भी, मुंह से उसने कुछ नहीं कहा।

ब्रज बाबू कहने लगे—'इसका विवाह करके निश्चिन्त मन से गोविन्द जी के चरणों में मैं स्थान ले सकता था। अन्तिम समय में एकाग्रचित्त से गोविन्द जी को स्मरण करने में भी रुकावट पा रहा हूँ राजू। रेणुका के लिए दुश्चिन्ता मुझे शान्ति से मरने नहीं देगी।'

राखाल ने कहा—'अब उन सब बातों को क्यों सोच रहे हैं चाचा जी?

आपको ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है जिसके कारण अभी तुरन्त ही रेणुका को हेमन्त मामा के यहाँ भेजने का प्रबन्ध करना पड़ेगा। आप अच्छे हो जाइए, मैं स्वयं इस बार रेणुका के ब्याह के लिए उठ पड़ता हूँ।'

व्रज बाबू ने करुण हँसी के साथ कहा—'लेकिन रेणुका तो कहती है कि वह ब्याह न करेगी।'

राखाल ने कहा—'एक बच्ची एक बात कह रही है इसीलिये क्या उसी को चिर दिन मानकर चलना पड़ेगा, तब आपके बहुत बड़े सर्वनाश के बीच दुःख कष्ट का धक्का लगने से उसने यह बात कही थी। लेकिन आज आपकी यह दशा देखकर उसको समझने में क्या देर लगेगी कि उसको अपने जीवन में अन्य आश्रय ग्रहण करना आवश्यक हो गया है।'

व्रज बाबू ने फीकी हँसी हँसकर कहा—'रेणुका तुम्हारी नई-माँ की लड़की है। दुनिया में एकमात्र मेरे और भगवान् के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता कि उसकी माँ को जिद कैसी थी। उसको अपने समस्त जीवन को ही नष्ट कर देना पड़ा है केवल जिद के ही कारण। यदि उसकी जिद चढ़ जाती थी, तो उसे तोड़ने की शक्ति किसी दूसरे आदमी में तो थी ही नहीं, अपने में भी नहीं थी। रेणुका उसी माँ की बेटी है।'

राखाल ने कहा—'लेकिन मुझे जान पड़ता है चाचा जी, रेणुका शायद नई-माँ के समान अधिक जिद्दी नहीं है।'

'तुम उसको पहचानते नहीं हो राजू। लड़की को अपनी माँ का स्वभाव सोलह आने मिला है। जिस माँ को होश होने के पहले ही खो चुकी है, उसकी प्रकृति उसके अन्तःकरण में किस प्रकार हो गई मैं सोचकर भी समझ नहीं पाता। नई-बहू की तरह तेजस्विनी, सत् स्वभाव की और सच्चरित्रा स्त्री दुनिया में बहुत कम ही होती है। इसको मैं जितनी अच्छी प्रकार जानता हूँ, उतना और कोई नहीं जानता। वह नई-बहू—।' व्रज बाबू का गला रुँध गया। कण्ठ को साफ करके उन्होंने कहा—'मेरे दुर्भाग्य के अलावा यह और कुछ भी नहीं है राजू। उसको मैंने कुछ भी दोष नहीं दिया।'

व्रज बाबू इन सब आलोचनाओं से उत्तेजित होते जा रहे हैं, यह देखकर राखाल पंखा लेकर हवा झलते-झलते बोला—'उन सब बातों को अभी रहने

दें चाचा जी। आप पहले अच्छे हो जाइए, उसके बाद होगा।'

व्रज बाबू ने जीवन में कभी सविता के सम्बन्ध में किसी से भी आलोचना नहीं की थी। आज उसके सन्तान समान राजू के साथ उस विषय को लेकर उनको आलोचना करते देखकर राखाल अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गया। रोग मनुष्य को इतना दुर्बल बना देता है कि तब वह अपनी भावनाओं, विचारों पर संयम नहीं कर पाता। शायद व्रज बाबू में अपने मन की छिपी हुई गम्भीर चिन्ताओं के भार वहन की शक्ति नहीं रह गई थी।

शारदा ने कमरे में आकर व्रज बाबू को प्रणाम किया। चौंककर राखाल की ओर देखकर व्रज बाबू ने कहा—'तुम्हारी नई-माँ भी आ गई हैं क्या राजू?'

राखाल ने कहा—'नहीं, वे तो कलकत्ते में नहीं हैं। वर्दवान तारक के के यहाँ गई हैं। शारदा आपकी बीमारी की खबर सुनकर आने के लिए घबरा उठी। बोली—'चाचा जी मुझे जानते हैं, मेरी सेवा ग्रहण करने में आपत्ति न करेंगे।'

व्रज बाबू ने थकावट के साथ तकिये पर माथा रखकर कहा—'किसी की भी सेवा लेने की अवश्यकता न पड़ेगी राजू, मेरी रेणुका बेटी जब तक है। यह बेटी आ गई है तो अच्छा ही किया है, मेरी रेणुका की वे कुछ देख-भाल कर सकेंगी। उसकी देख-भाल करने को कोई नहीं है। गृहस्थी का काम, ठाकुर जी की सेवा उसके ऊपर रोगी की सेवा करने से दिन-रात एक पल भी उसे अवकाश नहीं है।'

राखाल ने कहा—'क्या नई-माँ को आपकी बीमारी की सूचना दे दूँ चाचा जी?'

व्रज बाबू व्यथित स्वर में बोल उठे—'नहीं-नहीं, तुम लोग क्या पागल हो गये हो? ऐसा काम मत करना! मेरी बीमारी की सूचना यदि वे सुन लेंगी, तो उसके बाद उनको किसी भी हालत में किसी भी बात से कहीं भी रोका न जा सकेगा। उसी दम वे यहाँ चली आवेंगी।'

राखाल बोला नहीं।

सिर में रक्त का चाप अत्यधिक बढ़ जाने के कारण व्रज बाबू के बायें अङ्ग

में पक्षाघात के लक्षण सुस्पष्ट हो उठे हैं। प्राणहानि की आशङ्का हो गई है। गांव के डाक्टर कह रहे हैं, ऐसे सङ्कटापन्न रोगी को अपने हाथ में रखने का साहस उनको नहीं है। आवश्यक दवाएं और इन्जेक्शन आदि देहात में मिलते नहीं हैं। यहां तक कि रक्त का चाप नापने के यन्त्र का भी यहां अभाव है। कलकत्ते ले जाकर चिकित्सा कराने से उपचार हो सकता है। लेकिन अभी इस अवस्था में रोगी को हिलाना-डुलाना सम्भव नहीं है। दिल अत्यन्त दुर्बल है, नाड़ी की गति बहुत तेज है। इसीलिए कलकत्ते से कोई चिकित्सक बुला लाना सम्भव होने से उसका जल्द प्रबन्ध करना उचित है।'

राखाल झञ्झट में पड़ गया। कलकत्ते के बड़े-बड़े डाक्टरों में से बहुतों के नाम वह जानता है लेकिन किसी के साथ भी भेंट-मुलाकात, बातचीत या परिचय उसका नहीं है। इसके अलावा ऐसे रोगी के लिए किसको लाना ठीक होगा यह भी एक समस्या है। इससे ऊपर से पैसे का भी अत्यन्त अभाव है। उसकी अपनी जो कुछ साधारण पूंजी थी, वह रेणुका की बीमारी के समय खर्च हो गई थी। व्रज बाबू की चिकित्सा के लिए अब पर्याप्त धन की आवश्यकता है। लेकिन उन लोगों के पास कुछ भी सहारा नहीं है। इस अवस्था में नई-मां को सूचना देने के अतिरिक्त दूसरा उपाय क्या है? यह सूचना पाकर नई-मां बिना आये नहीं रह सकतीं यह निश्चित है। लेकिन गांव के इस पुराने घर में उनका पदार्पण करना किसी तरह से भी वांछनीय नहीं है। इसका परिणाम रोगी के लिए भी भयङ्कर हो सकता है। राखाल को दुर्भावना का कोई कूल-किनारा नहीं मिला। फिर भी शीघ्र ही कुछ प्रबन्ध कर देना उसने आवश्यक समझा। इसी समय राखाल के पास विमल बाबू का पत्र पहुँचा।

व्रज बाबू के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करके अन्त में उन्होंने लिखा है—मेरा बड़ा अनुरोध है, व्रज बाबू के लिए उपयुक्त चिकित्सक, नर्स, औषध, पथ्य और रुपया-पैसा जो कुछ भी आवश्यक हो, तुरन्त तार के द्वारा मुझे सूचित करो। मैं तुरन्त प्रबन्ध कर दूंगा।

राखाल पत्र को हाथ में लेकर उदास चित्त से बैठा था। शारदा ने आकर पूछा—'यह किसका पत्र है देवता?'

'विमल बाबू का।'

शारदा ने कहा—'कलकत्ते से डाक्टर बुलाने के लिए आप इतना सोच रहे हैं देवता—फिर भी विमल बाबू को तनिक लिख देने से ही वे इसी दम अच्छा डाक्टर भेज सकते थे।'

राखाल ने कहा—'हूँ।'

शारदा ने कहा—'मैं समझ गई आप शंका में पड़ गये हैं। उनकी सहायता लेने में आपको हिचक हो रही है।'

राखाल ने कहा—'नहीं।'

शारदा ने भी कुछ देर चुप होकर फिर धीरे-धीरे कहा—'चाचा जी की अवस्था जैसी हो गई है, कब क्या हो जाय बताना कठिन है, जो करना हो शीघ्र ही ठीक कर डालिए। नहीं तो, दूसरी कोई आवश्यकता बताकर नई-माँ को रुपये के लिए लिख दीजिए।'

राखाल तो भी चुप रहा।

शारदा ने कहा—'यदि आप कुछ सोच न करें तो मैं एक बात की याद दिला दूँ।'

राखाल सतृष्ण दृष्टि से देखता रहा।

'तुच्छ मान-अपमान, उचित-अनुचित का वजन-हिसाब करके चलने की अपेक्षा अब चाचा जी की प्राण रक्षा की चेष्टा करना क्या सबसे अधिक आवश्यक नहीं? आप अपने कर्त्तव्य की तरफ से जरा सोचकर देखने की चेष्टा तो कीजिए।'

'क्या करने को कहती हो तुम?'

'इस अवस्था में विमल बाबू की अथवा नई-माँ की सहायता लेने में रेणुका लज्जा अनुभव करे तो उसके लिए अस्वाभाविक नहीं है। लेकिन आपको तो वह बाधा नहीं है।'

'तुम ठीक ही कह रही हो शारदा। चाचा जी की इस जीवन संकट अवस्था में उचित अनुचित का प्रश्न कम-से-कम मेरी तरफ से लाना कभी उचित नहीं है। तो इस दशा में नई-माँ और विमल बाबू दोनों को ही यहाँ की अवस्था बताकर दो खत लिख दूँ।'

'लेकिन माँ को बताने की तो चाचा जी ने उस दिन विशेष रूप से मनाही कर दी थी।'

'यह तो ठीक ही है। तो इस दशा में सिर्फ विमल बाबू को ही—अच्छा—विमल बाबू तो चाचा जी के परिचित हैं। चाचा जी को बताकर ही व्यवस्था क्यों न की जाय—।'

'यह बुरी युक्ति नहीं है! लेकिन रोगी की इस अवस्था में उनको विचलित तो न किया जायगा!'

राखाल ने अत्यन्त दुःखी भाव से कहा—'तो मैं क्या करूँगा शारदा? उन लोगों को कुछ भी न बताकर ही विमल बाबू को सूचना दे दूँ?'

कुछ सोचकर शारदा ने कहा—'यही कीजिए देवता!'

रेणुका गोविन्द जी का भोग तैयार कर रही थी।

शारदा दूर बैठकर तरकारी काटते-काटते गप्प हाँक रही थी। रेणुका काम करते-करते 'हाँ' 'न' 'उसके बाद' इस तरह संक्षिप्त दो-चार बातें कह रही थी।

ऐसे ही बातें चलती रहीं। रेणुका रहती है प्रायः निर्वाक् श्रोता, शारदा ग्रहण करती है वक्ता का आसन। कितने गप्प करती उनका ठिकाना नहीं है। शायद अपनी अनजान अवस्था में ही शारदा सबसे अधिक गप्प करती है अपने देवता के विषय में। नई-माँ के विषय में भी वह बहुत कुछ कहती है। किरायेदारों की बातें तो हैं ही। वह कहती कुछ भी नहीं है, रमण बाबू के सम्बन्ध में रेणुका कभी कोई प्रश्न नहीं करती, बिन्दु मात्र कौतूहल प्रकट नहीं करती किसी विषय में। बड़े-बड़े शान्त दोनों नेत्र खोलकर चुपचाप बातें सुनती जाती है। निपुण दोनों हाथ लगे रहते हैं एक-न-एक आवश्यक काम में। बहुत बातें किसी दिन भी उसके मुख से नहीं सुनाई देतीं।

शारदा तरकारी बनाते-बनाते कह रही थी—'विमल बाबू के पास आज देवता तार भेजने गये हैं, कलकत्ते से अच्छा डाक्टर लेकर यहाँ आने के लिए। शायद कल के बीच ही वे डाक्टर को साथ लेकर आ जायँगे।'

रेणुका की दृष्टि में आश्चर्य प्रकट होने पर भी उसके मुँह से कोई प्रश्न नहीं निकला।

शारदा कहने लगी—'विमल बाबू के आ जाने पर बहुत कुछ ढाढ़स मिलेगा। उपयुक्त चिकित्सा, दवा, पथ्य सब का ही प्रबन्ध होगा। चाचा जी इस बार शीघ्र स्वस्थ हो जायँगे।'

रेणुका ने इस बार जिज्ञासु नेत्रों से शारदा की ओर देखा।

शारदा तब मन-ही-मन बकती चली जा रही थी—'ऐसा मनुष्य दुनिया में मैंने तो नहीं देखा रेणुका। जैसे हैं सदाशय, वैसे ही हैं सज्जन। सुन चुकी हूँ वे हैं लखपती, लाखों रुपये लगे हैं देश-देशान्तरों के व्यवसाय में, लेकिन ऐसा निरहङ्कार सहज विनयी मनुष्य कहीं भी नहीं देखा इसके पहले। यथार्थ ही जिनको शिव तुल्य कहते हैं, ऐसे न होने से विधाता इतना ऐश्वर्य देंगे ही क्यों? कहावत है—मन के गुण से धन होता है। विमल बाबू का धन भी जैसा है, हृदय भी वैसा ही है।'

निर्वाक् रेणुका तब गोविन्द जी का भोग बनाना पूरा करके पिता का पथ्य बना रही थी। मौन रहने पर भी ध्यान के साथ ही शारदा के मन्तव्यों को सुन रही थी।

शारदा के वाक्यस्रोत में मानो उच्छ्वास आ पड़ा था। कहने लगी—'विमल बाबू ने उस दिन हम सब लोगों को बचा लिया था रास्ते में खड़े रहने की लज्जा से। उस दुर्दिन की बात याद आने से आज भी मेरी आँखों में अंधेरा छा जाता है। जिनको घर भर के लोगों का आश्रय कहो, बल भरोसा ही कहो, जो सब कुछ है, वही माँ हमारी जब निराश्रय होने लगीं, तब हम लोगों को भय, चिन्ता और उत्कण्ठा घनीभूत हो आई थी, उसे केवल स्वयं भगवान् जानते हैं। विशेष रूप से मेरे तो पैरों के बीच पृथ्वी खिसक जाने की घड़ी आ गई थी। माँ के अलावा तब मेरे लिए इस पृथ्वी पर अन्य आश्रय वा अवलम्ब कुछ भी नहीं था।'

रेणुका ने वैसे ही आश्चर्यपूर्ण नेत्रों से शारदा की तरफ देख कर प्रश्न किया—'क्यों?'

शारदा ने कहा—'वह भी बताती हूँ बहिन। तुम क्या उन सब बातों को भूल गई हो? मेरे बुरे दिनों में माँ ने मुझे अपने स्नेह का आश्रय दिया था।

इसीलिए तो आज खड़ी हूं।'

रेणुका ने आत्मविस्मृत भाव से कहा—'उसके पश्चात् ?'

'उसके पश्चात् की कहानी भी तो तुम मेरे मुंह से सुन चुकी हो बहिन। मुझे पुनर्जन्म प्रदान किया मां ने और इस देवता ने। बीच-बीच में अब सोचती हूं रेणुका, भाग्य से उस दिन मैं मर नहीं गई!'

रेणुका ने हंसकर कहा—'क्यों शारदा दीदी, उस दिन मर जाने से ही आज तुम्हारी कौन-सी हानि होती बहिन ?'

'बहुत हानि होती। वह बहुत बड़ी हानि है। तुम नासमझ लड़की समझ न सकोगी बहिन ?'

रेणुका चुप रहकर अपना काम करने लगी। शारदा का तरकारी काटना समाप्त होने पर बाकी तरकारियों को डलिया में रखते हुए वह बोली—'जगत् में वास्तविक वस्तु पाने के लिए उसकी कीमत बड़ी ही देनी पड़ती है। दुर्लभ का मूल्य है बहुत। हमारे जीवन में भी यह नीति मानकर चलना पड़ता है। कृत्रिम और मिलावट की समस्या मनुष्यों में इतनी अधिक बढ़ गई है कि अब, कौन है असली, कौन है नकली, पहचानना कठिन है। जीवन में जिसको जितना बड़ा संचय मिला है बहिन, उसको उतना अधिक मूल्य भी गम्भीर दुःख के बीच से देना पड़ता है। कम-से-कम यह मैंने ठीक समझ लिया है कि दुःख की कसौटी पर पड़े बिना जीवन की परीक्षा नहीं होती।'

रेणुका किसी दिन भी कुछ विशेष रूप से जानने के लिए शारदा से प्रश्न नहीं करती थी। आज वह एकाएक पूछ बैठी—'दीदी, अपने जीवन में तो तुम बहुत दुःख पा चुकी हो बहिन, उसमें क्या तुम वास्तविक सामग्री संचय कर पाई हो ?'

शारदा चौंक पड़ी। रेणुका जो ऐसा प्रश्न कर सकती है। यह सम्भावना उसको एक बार भी नहीं थी। कुछ घबराकर बोली—'कैसे बताऊं दीदी ?'

'क्यों ? जैसे इन सब बातों को तुमने बता दिया।'

शारदा सहसा अनावश्यक गंभीर होकर बोली—'संचय कुछ भी कर सकी हूं या नहीं—नहीं जानती, लेकिन सहारा काफी पा चुकी हूं और वह जो सोलहो आने असली है, इसमें मुझे अब सन्देह नहीं है।'

सरल स्वभाव की रेणुका ने ममता से विचलित होकर कहा—'शारदा दीदी, जो पति तुमको अकेली असहाय छोड़कर भाग गये, उनकी अब भी तुम इतनी भक्ति करती हो?'

शारदा ने उत्तर नहीं दिया। उसके मुख पर व्यथा का चिह्न सुस्पष्ट हो उठा। अनाज की डलिया लेकर दूसरे कमरे में रखने के लिए वह चली गई।

राखाल ने आवाज दी—'रेणुका...!'

'राजू दादा!'

'चाचा जी की रसोई क्यश बन गई बहिन?'

'बन गई। अब जाकर बाबूजी को स्नान करा दूंगी।'

'चाचा जी सो रहे हैं। अगर तेरी रसोई का काम हो चुका हो तो तनिक उस कमरे में आ जाना, दो-चार बातें करनी हैं।'

'अभी आती हूं। चावल चढ़ाकर आ रही हूं, तुम चलो।'

थोड़ी देर बाद रेणुका जब हाथ-पैर धोकर राखाल के पास आ खड़ी हुई, राखाल कमरे के फर्श पर बैठा हुआ समाचार-पत्र पढ़ रहा था। मुंह ऊपर उठाकर उसने रेणुका से कहा—'बैठो!'

रेणुका बैठ गयी। बोली—डाक्टर साहब ने आज तुमसे क्या कहा है राजू भैया?'

'अच्छा ही कह गये हैं!'

'फिर तुम क्यों कलकत्ता तार दे आये बड़ा डाक्टर लाने के लिए?'

'तू पगली है। शुरू से ही तो सुन रही है, यहां के डाक्टर साहब कह रहे हैं, एक अच्छा डाक्टर लाकर दिखाने की आवश्यकता है, उस रोग की चिकित्सा देहात के डाक्टर का काम नहीं है। मलेरिया रहता, तिल्ली रहती या अंतरिया ज्वर रहता, तो ये लोग चतुर्भुज बन कर कितनी चिकित्सा करते। किसी को बुलाने नहीं देते, लेकिन उस बात को छोड़ो। तुझे एक आवश्यक परामर्श के लिए बुलाया है।'

रेणुका चुपचाप राखाल की ओर मुंह उठाकर देखती रही।

कई बार अपने गले को साफ करके अखबार को पढ़ते-पढ़ते राखाल ने कहा—'कह रहा था कि चाचा जी के कुछ अच्छा हो जाते ही यहां से डेरा-

डण्डा उठाना होगा। कलकत्ते जाकर चाचाजी के पूर्णतः अच्छा न हो जाने तक पहले की तरह एक छोटा-सा घर किराये पर लेकर रहेंगे। लेकिन उसके बाद'''।'

इतना कहते-कहते राखाल चुप हो गया। उसका कण्ठ-स्वर द्विधा से जकड़ गया।

रेणुका पहले की ही तरह जिज्ञासु दृष्टि से देखती रही।

व्यथित मुख से राखाल ने कहा—'उसके बाद क्या प्रबन्ध हो सकता है वही बात मैं सोच रहा हूँ। यहाँ फिर वापस आने से काम तो चलेगा नहीं!'

रेणुका ने शान्त स्वर से कहा—क्यों?'

राखाल ने विस्मित होकर कहा—'इतने दिन यहाँ रहकर यह भी तू समझ नहीं सकती रेणुका, देखती रही है जाति वालों का आचार व्यवहार! चाचाजी इतने बीमार हैं, एक बार झाँककर भी कोई सुध नहीं लेता।'

रेणुका ने कुछ देर तक मौन रहकर कहा—'लेकिन तुम तो जानते हो राजू भैया, कलकत्ते में बारहों महीने रहना हम लोगों की इस अवस्था में चल न सकेगा। यहाँ घर का किराया नहीं लगता, मजदूरिन का वेतन केवल एक रुपया महीना है। साग तरकारी खरीदकर खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कितना थोड़ा खर्च है?'

राखाल ने कहा—'लेकिन चाचा जी के शरीर की जो अवस्था है, उनके ऊपर तो निर्भर करके नहीं चला जा सकता बहिन! थोड़ा सोचकर देख लो, उनके न रहने की दशा में मुझे आश्रय कहाँ है? यहाँ के जाति भाइयों ने तुम लोगों से सम्पर्क ही छोड़ दिया है। सौतेली माँ पहले ही पृथक होकर अपने मायके चली गई हैं। कलकत्ता जाकर जो कुछ दिन ही रहना पड़े उसके बीच ही तेरी शादी की व्यवस्था हो जाने से तब चाचा जी निश्चिन्त होकर मेरे पास रह सकेंगे। उनकी जो सामान्य आय है। मेरे साथ इकट्ठे रहने से अच्छी प्रकार काम चल जायगा। मेरे रहते किसी की सहायता न लेनी पड़ेगी।'

रेणुका मौन होकर सुन रही थी। उसकी चुप्पी से उत्साहित होकर राखाल कहने लगा—'मैंने बहुत सोच-विचार करके देख लिया है बहिन, इसके

अलावा कोई दूसरी अच्छी व्यवस्था कुछ हो ही नहीं सकती। लड़की के भविष्य की दुश्चिन्ता ने ही चाचा जी को सबसे अधिक घबराहट में डाल दिया था। तुमको किसी सत्पात्र के साथ ब्याह देने से उनके मन की दुश्चिन्ता मिट जायगी। आशा है, तब वे सहज ही स्वस्थ हो जायेंगे।'

रेणुका मृदु कण्ठ से बोली—'बाबू जी को छोड़कर मैं कहीं भी नहीं जा सकती राजू भैया।'

'लेकिन गये बिना भी तो कोई उपाय नहीं है बहिन। अगर तुम लड़का होती, तो त्यागकर जाने की बात ही नहीं उठती। लेकिन लड़कियों को तो ब्याह के अलावा और कोई उपाय नहीं है'!'

'कम उम्र में विधवा हो जाने वाली लड़कियाँ तो सारा जीवन अपने पिता के ही घर में रहती हैं, मैंने देखा है।'

सूखी हँसी के साथ राखाल ने उत्तर दिया—'रहती हैं अवश्य, लेकिन उनको यदि पिता के कुल में रहने का आश्रय न रहे, तब वे ससुराल में जाकर आश्रय लेती हैं, वह भी तुमने देखा होगा। पति के न रहने पर उनकी ससुराल तो रहती है।'

रेणुका ने मुंह झुकाये कुछ देर मौन रहकर धीरे-धीरे कहा—'राजू भैया, मैंने बाबू जी को अपने मुंह से बता दिया है कि ब्याह में मेरी तनिक भी रुचि नहीं है, मैं ब्याह न करूंगी।'

राखाल हँसने लगा। बोला—तुझे बुद्धिमती समझता था। अब देखता हूँ तू बिल्कुल ही पागल है रेणुका! अरे उस दिन तू वह बात न कहती तो क्या चाचा जी बचे रह सकते थे? अचानक व्यवसाय फेल होने से चौपट हो गया। रहने का घर तक नीलाम पर चढ़ जाने से बिल्कुल ही रास्ते में खड़े हो गये। उसी समय तेरा ब्याह रुक जाने के बहाने से हेमन्त मामा अपनी बहिन और भाञ्जी का पावना कौड़ी छदाम सोलह आने वसूल करके खिसक गये। पीछे कहीं चाचा जी के कर्ज के भार से उनको भीख माँगने की घड़ी न आ जाय! दुनिया ऐसी ही स्वार्थी है बहिन।'

राखाल ने रुककर एक लम्बी साँस छोड़ दी, उसके बाद फिर वह कहने लगा—'पति के इतने बड़े दुस्समय में स्त्री ने अपने भाई के साथ मिलकर

अपनी आर्थिक भली बुरी दशा पर ही केवल विचार किया, पति की ओर उसने देखा तक नहीं। यदि तू इस तरह ढाढ़स देकर न कह देती रेणुका कि— तुमको अकेले छोड़कर मैं कभी कहीं भी न जाऊंगी···' तो उस दशा में चाचा जी दुनिया में खड़े होते किसके सहारे ?'

रेणुका ने मृदु स्वर से कहा—'लेकिन राजू भैया, मैंने तो बाबू जी को सान्त्वना या साहस देने के लिए वह बात कही नहीं। मैंने तो सत्य बात ही कही है।'

रेणुका की बातें कहने के ढंग से राखाल मन ही मन विचलित होकर मुंह पर हंसी लाकर बोला—'सच्ची बात नहीं तो तू क्या झूठी बात कह रही है ? लेकिन क्या जानती है बहिन, दुनिया में अधिकांश सत्य ही सामयिक सत्य होते हैं। चिरकाल की सत्य कहलाने वाली यदि कोई वस्तु हो तो वह है बाहर की वस्तु। अगर तुम उस दिन की मुंह से निकली बात रखने के लिए कटिबद्ध हो उठो, तो उसके फलस्वरूप शायद तुम लोगों के जीवन में अकल्याण ही दिखाई देगा। जो कल्याण को ढो लाता है, उसे ही कहते हैं सत्य। जो अशुभकर है, वह सत्य नहीं है। उस दिन तुम्हारे मुंह की जिस बात ने चाचा जी को सबसे अधिक सान्त्वना और शान्ति प्रदान की थी—आज उसी बात को रखने के लिए तुम यदि जिद पकड़ कर बैठी रहो, तो तुम जान रखो वही अवांछनीय काम ही चाचा जी को सबसे बड़ी दुर्भावना दुःख का कारण हो जायगा। यहां तक कि वह उनकी मृत्यु का कारण तक हो सकता है। एक बात को मत भूलना रेणुका, जो कठिन विष असाध्य बीमार को मृत्यु के मुंह से लौटाकर जीवनदान करता है, वही विष-पान करके ही फिर स्वस्थ मनुष्य आत्महत्या करता है। स्थान, काल और अवस्था के अनुसार एक ही व्यवस्था किसी समय जैसी मंगलकर होती है, फिर किसीदूसरे समय वैसी ही अमंगल-कर भी है। तुम सयानी हो गई हो, सब तरफ सोचकर देखो। विशेष कारण से एक बार एक बात कह चुकी हो इसीलिए जीवन के सब मंगल-अमंगल अप्रयोजन की चिन्ता छोड़कर मुंह की उसी बातको थामे रहकर अकल्याण बुलाकर मत लाना।'

रेणुका झुके नेत्रों से मौन हो बैठी रही।

२१

कलकत्ते के दो नामी डाक्टर, ब्रज बाबू की विशेष रूप से स्वास्थ्य-परीक्षा करने के बाद, चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था करके कलकत्ता लौट गये। विमल बाबू और भी कई दिन उनके पास ठहरेंगे। रक्त-चाप और कुछ कम होते ही डाक्टर के निर्देशानुसार ब्रज बाबू को कलकत्ता ले जाया जायगा।

मेडिकल कालिज के आस-पास किसी स्थान में प्रकाशयुक्त हवादार एक छोटा-सा मकान किराये पर लेने के लिए विमल बाबू ने कलकत्ता पत्र लिख दिया है। उनके कर्मचारी लोग सब प्रबन्ध कर रखेंगे।

कलकत्ते के डाक्टरों के आने और रोगी की व्यवस्था कर जाने के बाद से ब्रज बाबू बहुत कुछ अपने को स्वस्थ अनुभव कर रहे हैं। सबका मन बहुत प्रसन्न है।

तीसरे पहर उत्तर की ओर के बरामदे में एक आराम-कुर्सी पर ब्रज बाबू और विमल बाबू लेटे हुए थे। जगत्-व्यापी ट्रेड डिप्रेशन या व्यवस्था की दुरवस्था के विषय में दोनों में बातचीत चल रही थी।

इस आलोचना के प्रसंग में ब्रज बाबू ने कहा—'आपने जब पहले पहल मेरे पास आकर मेरा व्यवसाय खरीद लेने का प्रस्ताव किया था तो मेरे मन में विचार हुआ था, साधारण बड़े आदमियों के ही समान व्यवसाय के सम्बन्ध में आपको केवल शौक से इतना उत्साह है, सूक्ष्म तेज नजर या अच्छे बुरे का ज्ञान अर्थात् जिसको व्यावसायिक बुद्धि कहते हैं, वह आपमें बिलकुल नहीं है। उसके बाद जब आपके अन्यान्य सब प्रचुर लाभजनक व्यवसायों का विवरण मैंने सुना तब आश्चर्य में पड़े बिना रह न सका। आश्चर्य में पड़ गया था इसलिए कि, इतने बड़े व्यवसायी मनुष्य होकर भी आपने क्या देखकर मेरे डूबते हुए कारोबार को इतने चढ़े हुए दाम पर खरीदना स्वीकार किया था।'

विमल बाबू हँस पड़े।

ब्रज बाबू ने फिर कहा—'अच्छा विमल बाबू सच-सच बताइए तो, आप क्या समझ नहीं सकते थे कि उस व्यवसाय को उस अवस्था में खरीद लेना तो दूर रहे, कह सुनकर अनुनय विनय से हाथ पर उठा रखने से भी कोई लेना

नहीं चाहता, उस पर कर्ज का भार देखकर ! उस अवस्था में भार लेने का अर्थ है इच्छा करके रुपयों को नदी में फेंक देना ।'

विमल बाबू ने पहले के ही समान इस बार भी कोई उत्तर नहीं दिया ।

ब्रज बाबू ने कहा—'अजीब आदमी हैं आप !'

इस बार विमल बाबू ने बात कही । बोले—'मुझसे भी बहुत अधिक अजीब आदमी हैं आप !'

'बताइए तो कैसे ?'

ब्रज बाबू ने कहा—कैसे, जरा बताइए तो ?

विमल बाबू ने कहा—आप जान बूझकर भी अविश्वासी और बुद्धिरहित आत्मीयों के हाथ में अपने हाथ से खड़ा किया हुआ अपना भारी व्यवसाय सौंपकर निश्चिन्त थे ।

मलिन हँसी हँसकर ब्रज बाबू ने कहा—दुनिया में मनुष्यों का विश्वास करना क्या इतना बड़ा अपराध है विमल बाबू ? विश्वास मैं किसी भी कारण से नहीं खो सकता ।

'बार-बार हानि उठाकर और दुःख भोगकर भी क्या विश्वास बनाये रखना संभव है ?'

'यह तो नहीं जानता; किन्तु रखना अच्छा है । अविश्वासी के लिए कहीं भी आश्रय नहीं है, कोई भी सान्त्वना नहीं है ।'

'अपने जीवन की अभिज्ञता से क्या आपने यही सत्य जाना है ?'

'हाँ । विश्वास करके मैं ठगाया नहीं । बाहर से लोगों ने मुझे बार-बार निर्बोध कहा है; किन्तु मैं जानता हूँ, मैंने गलती नहीं की, उन्होंने भूल की है ।'

विमल बाबू तीक्ष्ण दृष्टि से ब्रज बाबू का मुंह ताकते रहे ।

दूर प्रकाश में दृष्टि टिकाये हुए ब्रज बाबू कहने लगे—मैं अपनी सब कहानी एक दिन आपको सुनाऊंगा । आपने औरों के मुंह से कहाँ तक और क्या सुना है, मैं नहीं जानता । लेकिन मेरे मुंह से उस दिन जितना कुछ सुना है, वह समस्त नहीं है । अपनी कहानी कहने के पहले आप से कुछ पूछना है ।

'कहिए, क्या पूछना चाहते हैं ?'

"आपकी जैसी आर्थिक अवस्था है उससे आपको लक्ष्मी का वर-पुत्र कहा जा सकता है। आप सबल, सुश्री, स्वास्थ्यसम्पन्न पुरुष हैं। भाग्य देवी सभी ओर से आप पर सुप्रसन्न है—आपको किसी बात की कमी नहीं है। इतनी अवस्था तक आपने विवाह नहीं किया, इसका यथार्थ कारण क्या मैं जान सकता हूँ ? अवश्य ही बताने में यदि कोई बाधा न हो तो।"

"बताने में कुछ भी बाधा नहीं है। कारण सीधा साधा है। पहले तो समय और सुयोग का अभाव, दूसरे विवाह की इच्छा न होना।"

'पहला कारण शायद एक दिन सत्य था, किन्तु आज तो वह बात नहीं है ? तब व्यवसाय की उन्नति की चिन्ता और चेष्टा में आप देशदेशान्तर में घूमते फिरते थे, गृहस्थी खड़ी करने की बात सोचने का तब अवकाश नहीं था। किन्तु फिर उसके पश्चात—"

'अभी कहा तो, रुचि नहीं हुई।'

'रुचि-अरुचि की बात उठने पर फिर कोई प्रश्न हो नहीं किया जा सकता विमल बाबू। तो भी मेरी ओर एक जिज्ञासा है, उसका उत्तर दीजिए। क्या अब गृहस्थ बनने में कोई अवरोध है ?'

ब्रज बाबू के प्रश्न से विमल बाबू को जितना विस्मय हुआ, उससे भी अधिक कुतूहल जान पड़ा। दबी हुई हँसी से उनका मुख और आँखें चमक उठीं। उन्होंने कहा—बाधा तो कभी नहीं थी ब्रज बाबू, आज भी नहीं है। जान पड़ता है, शायद मेरे विवाह का रास्ता इतना अधिक बाधारहित होने के कारण ही विधाता उसकी राह रोके बैठे रहे। नववधू का शुभागमन नहीं हुआ।

ब्रजबाबू ने कहा—आपकी बात कुछ ठीक समझ में नहीं आई।

'देखिए, हमारे देश में औरतों की एक कहावत है, शायद आपने सुनी होगी—

अति बड़ घरनी ना पाय घर।
अति बड़ सुन्दरी ना पाय वर॥

मेरे बारे में भी यही हुआ। विवाह के पात्र की दृष्टि से मैं सब तरह से योग्य हूँ, यह बात सभी लोगों ने कही है; कम-से-कम घटक-लोग तो कहते ही हैं। तो भी सारी जवानी बीत गई, पर ब्याह का फूल नहीं खिला। ऐसी

दशा में विधाता की बाधा के सिवा और क्या कहा जा सकता है—आप ही कहिए ?'

'किन्तु यह बात भी तो नहीं है कि इतने दिन नहीं खिला तो अब किसी दिन नहीं खिलेगा ।'

'समय निकल गया दादा । बे-मौसम कहीं फूल खिलता है ! जोर-जबर्दस्ती करने से उसे केवल विकृत बना दिया जाता है ।—ब्याह बहुत कुछ मौसमी फूल की तरह है । वह ठीक अपनी ऋतु में आप ही खिलता है । ऋतु चले जाने पर फिर नहीं खिलता, तब वह दुर्लभ होता है ।

व्रज बाबू ने कुछ सोचकर हंसते हुए चेहरे से कहा—अच्छा होशियार माली यदि कोशिश करे तो वह बे-मौसम भी फूल खिला सकता है । खैर, इसे छोड़ो, मैं यह नहीं मान सकता कि ब्याह एक मौसमी फूल है । हमारे देश में ब्याह के फूल खिलना एक मुहाविरा है; लेकिन किसी भी देश में शायद ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि वह फूल खेती के नियम को मानकर चलता है ।

विमल बाबू बोले—ना-ना, यह नहीं । मैं कहना चाहता हूँ कि जीवन में विवाह की एक निर्दिष्ट शुभ लग्न होती है । वह लग्न निकल जाने पर फिर ब्याह नहीं होता । जो लोग उसके बाद भी ब्याह करते है, वह विवाह ठीक ब्याह नहीं होता ।

'तो फिर वह क्या होता है ?'

'वह केवल स्त्री और पुरुष का एकत्र रहना-भर है—कहीं वंश चलाने के प्रयोजन से, कहीं संसार-यात्रा-निर्वाह के अथवा सुख-सुविधा और आराम के प्रयोजन से और कहीं केवल हृदय और मन की विलासिता को चरितार्थ करने के लिए ।'

विस्मययुक्त कुतूहल से व्रज बाबू ने प्रश्न किया—इन सब चीजों को बाद देकर विवाह को और क्या वस्तु आप कहना चाहते हैं ?

'यह तो ठीक समझाकर कहना कुछ कठिन है । संसार में देखा जाता है कि समाज के द्वारा अनुमोदित पुरुष और नारी के मिलन को विवाह कहा जाता है । लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता । मनुष्य के जीवन में एक आनन्द का समय आता है कि जिस परम क्षण में नर-नारी का वांछित मिलन देह और

मन में अपूर्व रस से सरस और रंग से रंगीन हो उठता है। दो हृदयों, दो देहों और मनों की वह जो रस-मधुर रंगीनी है, उसी को मैं विवाह कहता हूँ। सूर्यास्त के बाद ही जब संध्या नहीं होती, बल्कि दिन का अन्त हो जाता है—वह जो सुन्दर सन्धि-लग्न होती है, उसकी आयु बहुत थोड़ी होती है। उसे हम गोधूलि-वेला कहते हैं। उसी रमणीय स्वल्प समय के भीतर पश्चिम के आकाश में परम सुन्दर प्रकाश की लीला और अक्षय रंग का वैचित्र्य जाग उठता है, दिन-रात के लम्बे समय के भीतर फिर किसी तरह, किसी घड़ी में नहीं पाया जाता। वह उसी विशेष क्षण की सामग्री है। मनुष्य के जीवन में विवाह भी वही चीज है।'

व्रज बाबू ने मुसकराकर कहा—समझ गया। किन्तु आपने जो कहा विमल बाबू, वह तो शायद आप लोगों की कल्पना के काव्य के पन्नों में लिखा है, वास्तव जीवन के हिसाब के खाते में नहीं।

'इसीलिए तो हम लोगों के विवाहित जीवन के पन्नों में इतना गैर मिल जमा हो उठता है, किसी तरह हिसाब नहीं मिलता।'

'अर्थात् आपने कहा है कि विवाह का मामला काव्य के खाते में छन्द के अन्दर है, हिसाब-खाते के अंकों के भीतर नहीं है?'

इस बात का जवाब टालकर विमल बाबू ने कहा—आप ही बताइए न दादा! विवाह की अभिज्ञता मेरे जीवन में तो एक बार भी नहीं हुई, किन्तु आपको तो एक से अधिक बार हो चुकी है। आप इस विषय में मुझसे अधिक अभिज्ञ हैं।

'मेरी बात यदि मानिए तो कहूँ।'

'कहिए।'

'ब्याह के फूल खिलने का दिन आज भी आपका अटूट है।'

'इसके माने? आप क्या कहना चाहते हैं कि इस अवस्था में—'

विमल बाबू का वाक्य समाप्त होने के पहले ही व्रज बाबू हँस उठे। बोले—आपने सचमुच हँसा दिया विमल बाबू!

'क्यों, बताइए तो?'

'आपकी ऐसी असंभव धारणा कैसे हुई कि अब आपको ब्याह की अवस्था

नहीं है ? तब हम लोग ता—'

'किन्तु अधिक अवस्था में आपकी विवाह की इच्छा एक बार भी सुख की नहीं हुई—यह भी तो सत्य है !'

'आप क्या भाग्य को मानते हैं ?'

'कुछ-कुछ मानता क्यों नहीं ! हाँ, अन्धा अदृष्टवादी बिल्कुल नहीं हूँ।'

'यह क्या स्वीकार करते हैं कि जन्म, मृत्यु और विवाह, ये तीनों बातें सम्पूर्ण भाग्य के ऊपर निर्भर हैं ?'

'ना। मनुष्य इस युग में विज्ञान की सहायता से जन्म और मृत्यु को सम्पूर्ण न होने पर भी कुछ-कुछ अपनी इच्छा के अधीन कर पाया है, यद्यपि जन्म और मृत्यु का मामला एकदम प्रकृति का नियम है। जीव-मात्र ही प्रकृति के नियमों के अधीन हैं। अतएव इन दोनों को छोड़कर ब्याह को ही लीजिए। यह सामाजिक सुविधा के लिए मनुष्य का गढ़ा हुआ नियम है। इस लिए इस विषय में अदृष्ट का विशेष हाथ नहीं है। इस क्षेत्र में मनुष्य की इच्छा ही प्रधान है।'

ये सब युक्ति और तर्क व्रज बाबू को शायद अच्छे नहीं लग रहे थे। अतएव वह इस आलोचना में योग न देकर चुपचाप आँखें मूँदकर डेक-चेयर पर पड़े रहे।

विमल बाबू ने भी हाथ के समाचार-पत्र में मन लगाया।

सन्ध्या घनी हो रही थी, समाचार-पत्र के अक्षर धीरे-धीरे अस्पष्ट होते जा रहे थे। विमल बाबू ने दो-एक बार सिर उठाकर देखा कि लालटेन जलाई गई है कि नहीं।

आधे लेटे हुए व्रज बाबू आँखें मूँदे क्या सोच रहे थे, कौन जाने। एकाएक सीधे होकर उठ बैठे और दाहिना हाथ बढ़ाकर उन्होंने विमल बाबू का एक हाथ जोर से पकड़ लिया। फिर व्यग्र कण्ठ से बोले—विमल बाबू, तो आप सचमुच विश्वास करते हैं कि विवाह भाग्य के अधीन नहीं है, मनुष्य की इच्छा के ही अधीन है ?

विमल बाबू ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा—हाँ, मेरा अपना विश्वास तो यही है। लेकिन आप एकाएक इस बात के लिए इतने चंचल क्यों हो उठे

ब्रज बाबू ?

'बताता हूँ। किन्तु इसके पहले आप यह वायदा कीजिए कि आप मेरे अनुरोध की रक्षा करेंगे। ना—ना, अनुरोध नहीं, प्रार्थना—यह मैं भिक्षा मांग रहा हूँ।' ब्रज बाबू ने व्याकुल होकर विमल बाबू के दोनों हाथ जोर से पकड़ लिए।

बहुत अधिक विपन्न होकर विमल बाबू ने कहा—आप यह क्या कह रहे हैं? मैं आपके छोटे भाई के समान हूँ। आप जब जो आज्ञा करेंगे, उसका पालन करूंगा। ऐसी अनुचित बात कहकर मुझे अपराधी न बनाइए।

'ना ना, उस बात को सुनकर आप समझ सकेंगे कि यह मेरा अनुरोध नहीं, प्रार्थना ही है। बोलिए आप मेरी विनती मानेंगे ?'

'यदि साध्य हुई तो निश्चय ही मानूंगा।'

यह बात विमल बाबू ने विशेष उत्कण्ठित होकर ही कही।

आँखों में आंसू भरे हुए ब्रज बाबू ने कहा—गोविन्द जी आपका भला करेंगे। मेरे जन्म की दुःखिनी बेटी का भार आप ले लीजिए विमल बाबू! उसे आपके हाथ में सौंपकर मैं निश्चिन्त हो जाना चाहता हूँ।

विमल बाबू स्तम्भित हो गये। उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि ब्रज बाबू उन्हें विवाह के पात्र के रूप में अपनी कन्या के लिए चुन सकते हैं। क्षण भर अवाक् रहकर उन्होंने कहा—आप पहले जरा स्वस्थ हो लीजिए ब्रज बाबू, यह सब आलोचना फिर होगी।

ब्रज बाबू कातर भाव से कहने लगे— आप उदार प्रकृति के हैं, आपका मन उन्नत है और किसी के आगे मैं भरोसा करके यह प्रस्ताव न कर पाता। मेरे जीवन के दुःख और दुर्दशा की कहानी आप सभी जानते हैं। देवता की निर्मलता के समान मेरी लड़की निष्पाप है। उसके गुणों की सीमा नहीं है, रूप भी बिल्कुल ही अवज्ञा के योग्य नहीं है। ऐसी लड़की के भी भाग्य में विधाता ने इतना दुःख लिखा था। आप शायद नहीं जानते अब रेणुका का व्याह होना ही कठिन है। मेरे न धन का बल है, न लोक बल है, न कुलका गौरव है। उसके व्याह का आशा-भरोसा नहीं है।

अतिशय आशा से आग्रह-युक्त होकर ब्रजबिहारी बाबू अब तक बात कर

रहे थे; किन्तु विमल बाबू को कुछ उत्तर न देकर चुपचाप सिर झुकाए बैठा देखकर अचानक उनका उत्साह बुझ गया और वह आँखें मूंदकर आरामकुर्सी पर लुढ़क रहे। थोड़ी देर बाद दोनों जुड़े हुए हाथ माथे से लगाकर निरुपाय की तरह बोले—गोविन्द, तुम्हारी ही इच्छा पूरी हो।

शारदा बरामदे में लालटेन ले आई।

विमल बाबू ने पूछा—बेटी, राजू क्या घर में हैं?

शारदा ने कहा—जी नहीं, जरा देर पहले डाक्टर के यहाँ गये हैं। अभी आते होंगे।

फिर व्रज बाबू की ओर देखकर उसने कहा—काका बाबू, संतरे का रस क्या ले आऊँ?

व्रज बाबू ने हाथ हिलाकर इशारे से मना किया।

विमल बाबू ने कहा—नहीं क्यों दादा, आपके संतरे का रस पीने का समय हो गया है, ले क्यों न आवेगी। ले आओ, शारदा बेटी।

व्रज बाबू ने फिर निषेध नहीं किया। आँखें मूंदे निर्जीव से पड़े रहे। लालटेन की हल्की रोशनी में विमल बाबू ने तीक्ष्ण दृष्टि से लक्ष्य किया, अस्वस्थ व्रज बाबू का रक्तहीन मुखमण्डल पीला और विवर्ण हो रहा है, दोनों मुंदी हुई आँखों के कोनों में बहुत छोटी-छोटी दो आँसू की बूंदें निकल आई हैं।

प्राणों से अधिक प्रिय कन्या के भविष्य के संबंध में कितनी गहन निराशा की छिपी हुई वेदना से इस परम सहिष्णु मनुष्य के नेत्रों से आँसू निकले हैं, यह विमल बाबू के समझने को बाकी नहीं रहा। निरुपाय वेदना से उनका सारा हृदय व्यथित हो उठा। चुपचाप बैठकर सोचने लगे, लेकिन सान्त्वना देने का उपाय या भाषा, कुछ भी न खोज सके।

गोविन्द जी की आरती का कांसे का घंटा बज उठा। रेणु स्वयं उपस्थित होकर पुजारी ब्राह्मण के द्वारा आरती करा रही थी। व्रज बाबू आरामकुर्सी पर सीधे होकर उठ बैठे। जब तक घंटा-घड़ियाल का बजना बन्द नहीं हुआ, वह माथे पर दोनों हाथ रक्खे सिर झुकाये गोविन्द जी को प्रणाम करते रहे। धूप, चन्दन के चूरे और गूगल के धुएं की सुगन्ध से शीतल सन्ध्या की धीमी हवा महक उठी। घण्टा-झांझ का बजना बन्द होने पर भी बहुत देर तक व्रज बाबू

उसी एक ही भाव से अपने इष्टदेव की मन-ही-मन वन्दना करके, फिर उसी आराम-कुर्सी पर लम्बे होकर लेट गये।

रेणु ने आकर उन्हें गोविन्द जी का चरणामृत और सन्तरे का रस पिलाया। थोड़ी देर बाद राखाल आकर विमल बाबू की सहायता से व्रज बाबू को घर के भीतर ले गया। दो आदमियों के कंधों पर दोनों हाथों से अस्वस्थ शरीर का भार रखकर अति कष्ट से व्रज बाबू थोड़ा-सा चल सकते हैं। अब भी सारे अङ्गों में—सारे शरीर में—स्वाभाविक बल वापस नहीं आ पाया है।

आहार आदि के बाद रात को किसी समय विमल बाबू व्रज बाबू के पलंग के पास आकर बैठ गये। व्रज बाबू का शीर्ण शिथिल हाथ अपने हाथ की मुट्ठी में लेकर विमल बाबू ने चुपके-चुपके कहा—आपने संध्या-समय में जो प्रस्ताव दिया था, उसके बारे में मैं जरा सोच-विचार करके देखना चाहता हूँ। कल मैं आपको बतलाऊंगा।

व्रज बाबू ने सिर हिलाकर इशारे से अपनी सहमति जनाई।

विमल बाबू के उठ जाने पर छाया से ढकी हुई निर्जन कोठरी में शय्या-शायी व्रज बाबू अस्फुट स्वर से बारंबार इष्ट देवता गोविंद जी का नाम उच्चारण करने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल विमल बाबू जब व्रजबाबू के पास आकर बैठे तब व्रजबाबू ने लक्ष्य किया कि एक परितृप्त आनन्द की स्निग्ध दीप्ति विमल बाबू के मुख-मण्डल पर छायी हुई है। उस उज्ज्वल मुख की ओर ताककर व्रज बाबू शायद मन-ही-मन आशान्वित हो उठे, किन्तु भरोसा करने प्रश्न नहीं कर सके।

बोले—समाचार-पत्र आया है। राजू पढ़कर सुनाना चाहता था, मैंने मना कर दिया। क्या होगा दुनिया भरके लोगों के दैनिक विवरण सुनकर, उससे तो किसी सद्ग्रन्थ को सुनने से मन को शान्ति मिलेगी और परलोक में भी कल्याण होगा।

विमल बाबू हंसे। बोले—कौन पुस्तक सुनने को जी चाहता है, बताइए, पढ़कर सुनाऊं।

'चैतन्य-चरितामृत पढ़िएगा ?'

'वैष्णव धर्मशास्त्र में यह एक अद्भुत पुस्तक है।'

'आपने पढ़ी है ?' व्रज बाबू के स्वर में विस्मय और आनन्द एक साथ उच्छ्वसित हो उठे।

'थोड़े से पन्ने भर उल्टे-पल्टे हैं। पढ़ा है, ठीक नहीं कहा जा सकता।'

'सो ठीक ही है। चैतन्य-चरितामृत को जो मनुष्य पढ़ सका है, अर्थात् उसके अर्थ को मस्तिष्क में रख लिया है, वह तो गोविन्द जी के चरणकमलों में पहुँच गया है।

विमल बाबू ने कहा—यहाँ क्या चैतन्य-चरितामृत है ?

'हाँ, है। रेणु से चैतन्यचरितामृत और श्रीमद्भागवत साथ लाने के लिए कह दिया था। रेणु को स्वयं भी इस पुस्तक से प्रेम बहुत है।'

'यह बात है ? तो यह कहिए कि लड़की को भी आपने भगवत्प्रेमामृत का वाद चखा दिया है ?,

व्रज बाबू ने जीभ काटकर दोनों हाथ माथे से लगाकर अपने इष्टदेव को प्रणाम करते हुए कहा—छी छी, ऐसी बात मुंह से न निकालनी चाहिये। उससे मुझे अपराध लगेगा। गोविन्द के प्रेम का आस्वाद मनुष्य क्या मनुष्य को दे सकता है विमल बाबू ? ज्ञान, बुद्धि, विद्या, मेधा सभी वहाँ तुच्छ अर्थहीन हैं। वही जिस पर कृपा करते हैं, केवल वही भाग्यवान् पुरुष या स्त्री संसार में उनके प्रेम का दुर्लभ स्वाद पाकर धन्य होता है।

विमल बाबू चुप रहे।

व्रज बाबू कहने लगे—यह जो कल सन्ध्या समय बड़ी आशा और आकांक्षा से आपके आगे एक प्रार्थना की थी, उसके लिए आज सवेरे तो तनिक भी आग्रह का अनुभव नहीं कर रहा हूँ। यह क्या गोविन्द की ही करुणा नहीं है ?

निरुद्वेग सरल हँसी से व्रज बाबू का मुख कोमल हो उठा।

विमल बाबू ने कहा—मैंने कल रात को सोचकर उस मामले में अपना कर्त्तव्य निश्चय कर लिया है।

व्रज बाबू के रोग-पांडुर मुखमण्डल पर परितृप्ति की आनन्द-रेखा झलक आई। बोले—मैं जानता हूँ तुमको उपलक्ष्य करके गोविंद मुझे इस भार से विमुक्त करेंगे।

विमल बाबू ने कहा—कैसे जाना, आपने बताइए तो ?

उनके ये कई एक शब्द प्रेम और कौतुक पूर्ण थे।

व्रज बाबू ने सिर हिलाते-हिलाते कहा—भैया, गोविन्द ही तो अपने इस अधम सेवक की सब चिन्ताओं का निवारण करते हैं। उन्होंने तुम्हें इसी के लिए मेरे पास भेजा है। व्रज बाबू के चेहरे पर असीम विश्वास और भक्ति की पवित्र आभा थी।

विमल बाबू चुपके रहे।

संसार के बहुविध दुःख से दुःखी इस रोगी वृद्ध के सरल चित्त की परितृप्ति की प्रसन्नता को नष्ट कर देने को उनका जी नहीं चाह रहा था, अथ च वह बात बिना कहे काम न चलता था। वृद्ध की भ्रान्त धारणा को शीघ्र ही दूर न कर देने से जटिलता बढ़ने की संभावना है।

विमल बाबू ने कहा—मैंने कल विशेष रूप से आपके प्रस्ताव के विषय में सोचकर देखा है। सब ओर से विवेचना करके मैंने रेणु को ग्रहण करना ही तय किया है। किन्तु इस संबंध में एक बात कहनी है। आप वचन कीजिए कि मैं जो चाहूँगा, वह आप देंगे।

व्रज बाबू क्षण भर विमूढ़ दृष्टि से विमल बाबू के मुंह की ओर ताकते रहे, फिर अस्फुट कंठ से बोले—कहिए—

विमल बाबू ने कहा—आपने मुझे अपनी कन्या का दान करना चाहा है। मैं उसे अपनी इच्छा से और आनन्द के साथ ग्रहण करना चाहता हूँ। याग-यज्ञ-मंत्र उच्चारण करके धर्म, समाज और आईन के अनुसार पत्नी के रूप में ग्रहण करने से वह मेरे गोत्र और उपाधि को लेकर मेरे वंश में शामिल हो जाती। मेरी सम्पत्ति पर उसका अधिकार होता, मेरे मरने पर उसे सूतक लगता। मैं याग-यज्ञ-मंत्रोच्चारण करके धर्म, समाज और आईन के अनुसार ही उसे अपनी दत्तक कन्या के रूप में ग्रहण करना चाहता हूँ। उससे भी वह मेरे वंश और गोत्र में अधिकार पावेगी। मेरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होकर मेरे मरने पर अशौच पालन करेगी।

व्रज बाबू जैसे कुछ समझ न पा रहे हों, ऐसी दृष्टि से ताकते रहे, मुंह से कुछ कह न सके।

विमल बाबू कहने लगे—मैं जानता हूँ कि रेणु पर आपका कितना अधिक

स्नेह है। मुझे भी उस पर कुछ कम प्रेम नहीं है। उसे सन्तान के रूप में ही ग्रहण करने को मैं प्रस्तुत हुआ हूँ।

चुप भी न रहकर विमल बाबू ने फिर कहा—विवाह योग्य सत्पात्र यदि मेरे वंश में कोई होता, तो उसे अपनी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी करके रेणु को मैं अपनी पुत्र-वधू के रूप में ले जाता। किन्तु वैसा अपना मेरा कोई नहीं है। दूर के नाते में जो हैं भी, वे रेणु बेटी के योग्य नहीं हैं। इसी से मैंने ठीक किया है कि सीधे-सीधे उसे ही दत्तक-कन्या के रूप में ग्रहण करूँगा। रेणु बेटी को उसके योग्य वर के हाथ में देने का भार और उसके भविष्य की चिंता का उत्तरदायित्व सब मैं अपने ऊपर लेता हूँ—अब वह आप पर नहीं है।

ब्रज बाबू ने एक लम्बी साँस छोड़कर आँखें मूंद लीं। कुछ उत्तर नहीं दिया। उनके चेहरे पर इच्छा या अनिच्छा का कोई लक्ष्य ही प्रकट नहीं हुआ, जैसे मौन थे वैसे ही मौन रहे।

दोपहर को राखाल ने विमल बाबू को जरा आड़ में बुला ले जाकर अत्यन्त गम्भीर मुख से कहा—आपके साथ कुछ सलाह करनी है।

विमल बाबू ने जिज्ञासा की दृष्टि से उसकी ओर देखा। राखाल ने जेब से डाकघर की मोहर वाला एक पोस्ट कार्ड निकालकर दिया और कहा—पढ़कर देखिए।

विमल बाबू ने कार्ड हाथ में लेकर एक बार नजर दौड़ाकर अन्त में हस्ताक्षर पर लक्ष्य किया। लिखा था—मंगलाकांक्षी हेमंतकुमार मैत्र। विमल बाबू ने पूछा—यह कौन हैं राजू ? पहचान नहीं पाया।

राखाल ने कहा—काका बाबू के इस ब्याह के साले हैं। हम लोगों के शकुनी मामा। नाम नहीं सुना क्या ?

विमल बाबू ने कहा—ओह। यही ब्रज बाबू के व्यवसाय के प्रधान प्रबन्धक थे न ?

राखाल ने कहा—हाँ। केवल कारोबार ही के क्यों, जमीन-जायदाद, घर-द्वार, स्त्री-कन्या, सभी का भार उन्होंने अपनी इच्छा से अपने कंधे पर लेकर काका बाबू को बिलकुल बिना किसी झंझट के गोविन्द जी के चरणों में समर्पण कर दिया था।

चुपचाप आँखें नीची किये विमल बाबू ने उस पोस्टकार्ड को पढ़ा। फिर

आंख उठाकर राखाल की ओर ताका।

राखाल ने कहा—बताइए, यह चिट्ठी काका बाबू के हाथ में देना ठीक होगा कि नहीं ?

विमल बाबू कुछ उत्तर न देकर सोचने लगे।

राखाल ने फिर कहा—लेकिन काका बाबू से यह बात छिपा रखना भी तो हम लोगों के लिए उचित न होगा।

विमल बाबू ने कहा—हां, अनुचित तो होगा ही।

इसके बाद क्षण भर सोचकर बोले—यह चिट्ठी उनके हाथ में देने की आवश्यकता नहीं, पढ़कर सुनाने से ही काम चल जायगा। कारण, चिट्ठी में कुछ अनावश्यक कटु बातें लिखी हैं। वह अंश उन्हें न सुनाना ही अच्छा होगा।

'निश्चय। बताइए कौन अंश छोड़कर कितना उन्हें सुनाया जा सकता है ?"

यह जो लिखा है कि 'यह मैं जानता हूं कि जिस कलंकित वंश में रानी ने जन्म लिया है, उसके कलुष की लज्जा तो उसे चिरकाल वहन करनी होगी। मुझे आशंका है कि आपके अपराध और महान् पातक की सजा अन्त को कहीं मेरी निरपराध भानजी को न भोगनी पड़े। इसीलिए उसे यथासम्भव जल्दी ही सत्पात्र से व्याहने की व्यवस्था मैंने की है। आपको सूचना देने को जी नहीं चाहता था, किन्तु लोकतः और धर्मतः—' इत्यादि। ये सब अंश उन्हें सुनाने की आवश्यकता नहीं है।

राखाल ने कहा—रानी का व्याह उसके पिता की इच्छा-अनिच्छा, सम्मति-असम्मति की अपेक्षा न करके ही ठीक हो गया। आश्चर्य है ! संसार में ऐसा कहीं देखा है विमल बाबू ?

विमल बाबू जरा हंस भर दिये।

राखाल फिर चिट्ठी को पढ़ने लगा—'आज बिना विघ्न-बाधा के हल्दी चढ़ने का काम सम्पन्न हो गया है। कल गोधूलि-लग्न में शुभ विवाह है।' बस, केवल इतना ही लिखा है। कहां व्याह हो रहा है, लड़का कैसा है, कोई सूचना नहीं दी। बुद्धि और विवेचना देखी आपने ?

विमल बाबू चुप रहे।

राखाल ने कहा—बड़ी लड़की का व्याह नहीं हुआ, बल्कि छोटी लड़की का धूमधाम से व्याह हो रहा है!

विमल बाबू ने शान्त स्वर में कहा—संसार का यही नियम है राजू। कोई कुछ भी किसी के लिए अपेक्षा किये नहीं रहता।

'काका बाबू सर्वस्व उन्हें सौंपकर आज कौड़ी-कौड़ी को मोहताज हो गये हैं, इसी से तो इतनी अधिक ज्यादती सम्भव हुई। नहीं तो न हो सकती।'

उदास कण्ठ से विमल बाबू ने कहा—यह भी शायद संसार का यही सहज नियम है।

यह पत्र जब से मिला, राखाल के हृदय में आग-सी लगी हुई थी।

तीखे स्वर में उसने कहा—संसार का नियम है, इसलिए सभी सहा नहीं जा सकता विमल बाबू!

विमल बाबू ने हँसकर कहा—लेकिन सहन किये बिना भी तो कोई उपाय नहीं है राजू?

२२

जाड़ों की संध्या है। कलकत्ते की एक तंग गली के भीतर एक तल्ले मकान की कोठरी में, जिसके किवाड़ उँढकाये हुए थे, रेणु हरीकेन लालटेन सामने रखकर पशम की एक छोटी टोपी बुन रही थी। द्वार के बाहर से शारदा की हल्की आवाज सुनाई दी—दीदी—

रेणु ने उत्तर दिया—आओ।

शारदा ने दरवाजा ठेलकर भीतर प्रवेश किया। उसके पीछे एक बड़ा झौआ लिये दासी थी।

रेणु ने उसे देखकर शारदा की ओर ताका। शारदा ने कहा—गोविन्दजी के लिए माँ ने कुछ फल-मूल, साग-सब्जी और अच्छा मक्खन भेजा है।

रेणु के नेत्रों की दृष्टि तीव्र हो उठी। क्षण भर स्तब्ध रहकर संयत स्वर में उसने कहा—शारदा दीदी, यह तो हम ले न सकेंगे।

'पर यह तो गोविन्दजी के लिए है।'

'गोविन्दजी को उपलक्ष्य बनाकर हमारे लिए ही भेजा है। इसके लेने का उपाय नहीं है—उनसे कह देना वे हमें क्षमा करें।'

शारदा ने कुण्ठित से कैफियत के स्वर में कहा—'यह क्या दीदी, यह तो तुम लोगों के लिए नहीं है। यह तो गोविन्द जी के''' ।'

रेणुका ने सरला की बातों को समाप्त न होने देकर शान्त स्वर में कहा—'गोविन्द जी को उपलक्ष्य बनाकर माँ ने यह सब हम लोगों के ही लिए भेजा है। यह बात तुम भी जानती हो, मैं भी जानती हूं, शारदा दीदी'''लेकिन इसके लेने का उपाय नहीं है। माँ से कह देना—वे हम लोगों को क्षमा कर दें।'

शान्त कण्ठ की इन थोड़ी-सी सहज बातों के पीछे कितनी सुनिश्चित अटलता है यह जान लेने में शारदा को भूल नहीं हुई। दासी को इशारे से बाहर इन्तजार करने को कहकर सरला रेणुका के पास आकर बैठ गयी और उसने पूछा—'चचा जी अच्छे तो हैं?'

'हाथ के पशमीने का काम पूरा करते-करते रेणुका ने उत्तर दिया—'हाँ?'

बहुत समय मौन ही में बीत गया। कहने योग्य कोई बात खोजकर न पाने पर शारदा मन ही मन सङ्कोच और लज्जा अनुभव कर रही थी। इसीलिए उठने की सोच रही थी कि सहसा रेणुका ने ही बात कही। ऊन की टोपी बुनते-बुनते बोली—'शारदा दीदी, माँ को समझाकर कह दो, वे मन में दुःख न पावें। मेरे लिए अपने मन में दुःख दुर्भावना रखने की उन्हें मनाही कर दो। जो होने वाली बात नहीं है वह होती ही नहीं है, इसे वे मुझसे अधिक ही जानती हैं। दुःख दूर करने की चेष्टा से दोनों पक्षों के ही दुःख का बोझ केवल भारी हो जायगा।'

शारदा मौन हो रही। मन में विचार आने लगा—उस कर्म निविष्टा नतनेत्रा कन्या ने उसके प्रति निकट बैठी रहकर भी अत्यन्त सुदूर से इन थोड़ी-सी शान्त बातों को कहकर भेज दी।

कुछ देर बीत जाने पर शारदा ने तनिक इधर-उधर करके कहा—'तो इस दशा मे जा रही हूं बहिन।'

सिर हिलाकर इशारे से रेणुका ने सम्मति प्रकट की ।

रेणुका एक ही भाव से अखण्ड मनोयोग के साथ ऊन की छोटी टोपी तेजा हाथ से बुनने लगी । रात ही भर में इसे पूरा करके एक जोड़ा छोटा मोज और बनाना होगा ।

सात-आठ महीने हुए ब्रजबाबू गांव का घर छोड़कर कलकत्ते में आकर रह रहे हैं । विमल बाबू के किराये पर ठीक किये गये मकान में रेणुका ने किसी तरह भी जाना नहीं चाहा । ब्रज बाबू के बहुत कुछ स्वस्थ हो जाने से रेणुका जिद करके कम किराये के एक छोटे से एकतल्ले मकान में आ गई है । पिता की बीमारी में असहाय अवस्था में बाध्य होकर दूसरे से सहायता लेनी पड़ी ह इसलिए बराबर ही दूसरों की मुखापेक्षी होकर रहने में वह असम्मत है । इस नीरव प्रकृति को सुशीला कन्या की सम्मति कितनी सुदृढ़ है इस घटना के बाद इसे सभी समझ गये हैं ।

रेणुका ने थोड़े वेतन की एक मजदूरिन रख ली है । गृहस्थी के काम-काज और पूजा-पाठ से अवकाश मिलता तो वह स्वयं छोटे बच्चों के लिए जाँघिया, पेनी, फ्रॉक आदि की सिलाई करती है ऊन का मोजा, टोपी, स्वेटर बुनती है । अचार, मुरब्बा और बरी तैयार करके मजदूरिन के हाथ दुकान पर बेचने के लिए भेज देती है ।

छत के ऊपर टीन का छाजन का कमरा है । उसी कमरे को साफ सुथरा बना कर ठाकुरघर बना दिया गया है । ब्रज बाबू स्नान-भोजन और सोने के समय के अलावा सब समय इस पूजा की कोठरी में ही रहते हैं । गृहस्थी किस प्रकार चल रही है, कहाँ से खर्च आ रहा है, इसका रहस्य वे जानना नहीं चाहते । जानने से भय खाते हैं । रेणुका के अलावा और किसी के साथ अधिक बातचीत या भेंट भी नहीं करते ।

शारदा ने आशंका की थी कि सब सामान लौट जाने से सविता को बड़ा आघात लगेगा । इसलिए घर पहुँच कर सामान से भरे टोकरे को चुपचाप एक-तल्ले के भण्डार घर में रखकर वह ऊपर चली गयी । सविता अपने कमरे में बैठकर पञ्चाङ्ग के पन्ने उलट रही थी । शारदा को देखकर प्रश्न भरी दृष्टि

से देखने लगी ।

कमरे के फर्श पर सविता के पास बैठकर शारदा ने कहा—'चाचाजी अच्छे हैं माँ ।'

'और रेणुका ?'

'वह भी अच्छी है ।'

सविता ने और कोई प्रश्न न करके पञ्चांग के पन्ने पर फिर अपना मन लगाया ।

शारदा आश्चर्य में पड़ गई । दूसरे दिन रेणुका से मिल कर घर लौटने पर उसने देखा कि सविता उत्कण्ठित प्रतीक्षा में उसकी बाट जोह रही है । उसके बाद कितने ही तृष्णायुक्त आग्रह से एक के बाद एक प्रश्न करके सब खोद-खोदकर जान लेना चाहती है । रेणुका क्या कह रही थी, क्या-क्या बातें उसने कहीं, उसके बाल बँधे हुए थे या नहीं, कपड़े साफ किये गये थे या नहीं, रेणुका पहले से अधिक दुबली हो गई है या वैसी ही है, इत्यादि । ब्रज बाबू की अपेक्षा रेणुका के सम्बन्ध में ही सविता बहुत कुछ जान लेना चाहती है इसे भी शारदा ने लक्ष्य किया है ।

बहुत समय मौन में बीत गया । शारदा आप ही आप कहने लगी—'उन लोगों का अभाव ऐसा कुछ आवश्यक नहीं है माँ, जिसके लिए आप इतना अधिक सोचती हैं सिर्फ दो प्राणी हैं । उनका खर्च ही क्या है ? काम भी क्या है ? इसीलिए रेणुका ने रसोईदारिन नहीं रखी । गृहस्थी में किसी चीज का अभाव से तो मैंने देखा नहीं ।'

सविता ने पञ्चांग के एक कोने को मोड़कर चिह्न रखकर उसे बन्द कर दिया । शारदा के मुंह की तरफ पूरी दृष्टि से देखकर मुस्कराकर उन्होंने कहा—'वह भले ही उन लोगों को न हो, लेकिन तुम चीजों की डलिया को कहाँ छिपा कर रख आई हो शारदा ?'

शारदा ठिठक गई । विस्फारित नेत्रों से लक्ष्य करके उसने देखा कि सविता के चेहरे पर वेदना का चिह्न मात्र नहीं है । वरन् ओठों के किनारे दबी हुई हँसी की रेखा है ।

सविता ने कहा—'तुम शायद यह सोच कर डर गई हो शारदा कि चीजें

वापस आ गई है, सुनकर तुम लोगों की माँ दुःख और क्षोभ से व्याकुल होकर गिर पड़ेगी, यही है न ?

शारदा ने लज्जित होकर कहा— नहीं, मैंने ठीक यह नहीं सोचा था। शायद मन में इस बात से आघात पा जायेंगी, यही भय उत्पन्न हुआ था।

सविता स्नेह के साथ शारदा की पीठ और कांधे पर हाथ सहलाते-सहलाते बोली— मूर्ख लड़की, तुम्हारी तरह माँ के हृदय को दो और केवल देखकर क्या सके ने माँ को प्यार करना सीखा है? इसके लिए तो मैं रेणुका पर गुस्सा नहीं कर सकती बेटी, उसका कुछ भी दोष नहीं है।

'यह बात आपके कहने से न चलेगी। रेणुका जो आपकी ही लड़की है आज मानो मैं इसे सबसे अधिक स्पष्ट रूप से देख आई हूँ माँ।

सविता ने उस बात को दबाकर सहज स्वर में कहा— क्या कहकर तुमको उसने आज वापस किया ?

शारदा ने पुनः विवर्ण मुख कर आखिर में कहा— अच्छा माँ, एक बात मैं पूछती हूँ, आप बतायेंगी? समझकर ही क्या आपने चीजें भेज दी थीं ?

सविता ने सिर हिलाकर इशारे से बताया— नहीं। उसके बाद उन्होंने पूछा— शारदा बेटी, बताओ तो सचमुच ही क्या उन्हें कोई अभाव नहीं है? तुम देख आई हो ?

'अन्दर की बात किस तरह जानूँगी माँ ?'

'देखने से क्या मालूम हुआ ?'

शारदा सिर झुकाये चुप रही।

सविता ने फिर प्रश्न नहीं किया। उसके प्रशान्त मुख पर चिन्ता की काली छाया छा गई।

कुछ देर बाद सविता ने प्रश्न किया— आज जब तुम गई थीं तब क्या वे घर नहीं थे ?

'दिन को दोपहर घर नहीं थे।'

सविता के मुख पर वेदना का चिह्न सुस्पष्ट हो उठा। मन्द कण्ठ से उन्होंने कहा— 'राजू की मार्फत उसका यह घर और सब चीजें खरीद लेने की मैंने चेष्टा की थी। उसने राजू के हाथ बिकना नहीं चाहा।'

'क्यों माँ ?'

राजू ने जिस कीमत से उसको लेना चाहा था वह मूल्य लेने को वह तैयार नहीं हुई । उसने कहा था—'यह तुम लोगों की सहायता करने की तरकीब है ।'

शारदा मौन हो रही ! सविता की शान्त गम्भीर मूर्ति की ओर देखकर वह मन ही मन सोचने लगा कि उस स्थिर प्रशान्ति की आड़ में कैसी विक्षुब्ध आँधी बहती जा रही है । दुनिया में उसे कौन जानता है ।

शारदा ने कहा—'माँ, मैंने सुना था कि रेणुका के लिए एक अच्छे डाक्टर का पता ठिकाना ले आये थे देवता । उस सम्बन्ध का क्या...।'

उमड़ती हुई गहरी साँस को दबा कर सविता ने कहा—'वह हुआ नहीं लड़की ब्याह नहीं करेगी, यह प्रतिज्ञा उसने की है ।'

शारदा ने धीरे से कहा—'ऐसी भली लड़की होकर भी वह...?'

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही सविता ने कहा—'उसने शायद कहा है, हिन्दू की लड़की को दुबारा हल्दी नहीं चढ़ती । वाग्दत्ता लड़की भी विवाहिता के ही समान है । मेरे विवाह का मामला वाग्दान के बाद बहुत दूर तक आगे बढ़ गया था । अब फिर दो बार करके वे सब मामले होने लगें यह मैं नहीं चाहती । तुम लोग ब्याह की चेष्टा मत करना राजू भैया, उससे मेरा कल्याण न होगा यह मैं जानती हूँ ।'

सविता के मौन हो जाने पर शारदा व्याकुल कण्ठ से बोली—'यही यदि रेणुका का मत है तो इस हालत में उसी पात्र के साथ रेणुका के विवाह की चेष्टा कीजिए न, जिसके साथ ब्याह ठीक होकर उसके शरीर में हल्दी तक लग गई थी । भाग्य में होने से पति शायद पागल नहीं भी हो सकता ।'

सविता ने फीकी हँसी हँसकर कहा—'उसी पात्र के साथ सात-आठ महीने पहले रेणुका की सौतेली बहिन रानी का विवाह हो गया ।'

सुनकर शारदा आश्चर्यचकित हो गई ।

एक मर्मभेदी लम्बी साँस के साथ सविता ने कहा—'मेरी गलती से ही ऐसा हो गया ।'

शारदा पलकहीन दृगों से सविता की ओर देख रही थी ।

सविता मृदु स्वर में स्वागत रूप से कहने लगी—'इतनी जल्दी गृहस्थ न होकर शायद उन लोगों को राह में खड़े होने की घड़ी नहीं आती यदि मैं मैं इस प्रकार निन्दा करके रेणुका का ब्याह बन्द न करवा देती।'

'तब अवश्य एक न एक दिन उन लोगों को रास्ते में उतरना ही पड़ता, मैंने उसे आगे बढ़ा दिया बस इतनी ही बात है। कम से कम रेणुका की विमाता इतनी सहूलियत से ही सम्पत्ति का बंटवारा करके जाने का बहाना न खोज पाती।'

शिवू की माँ ने आकर पुकारा—'माँ, भैया जी अन्दर घर में आ गये हैं, उनको भोजन परोसिए। रात होती जा रही है।'

शारदा झटपट उठ खड़ी हुई और बोली—'आपको जाना न पड़ेगा माँ। मैं ही तारक बाबू को जाकर भोजन दे देती हूँ, आप कुछ आराम कीजिये।'

'नहीं शारदा, चलो मैं भी चलती हूँ। वह खाते समय मुझे न देखने से घबरा जायगा।'

शारदा के साथ सविता भी चली गई।

हरिनपुर से लौट आने पर सविता ने अपना घर बदल दिया है। रमण बाबू के उस पुराने घर में प्रवेश करने की अब इच्छा नहीं है। भाग्यचक्र के अधीन जिस घर में बारह साल से अधिक काल तक जहाँ प्रतिपल आत्म-हत्या की दुस्सह यन्त्रणा भोग करके भी, आच्छन्नता के बीच अर्ध चेतनवत् बिताना पड़ा है, आज उस घर की तरफ देखने से भी आतंक से शरीर सिहर उठा। फिर भी उस घर से ही आश्रयच्युत सम्भावना से अभी उस दिन भी उनको चिन्ता से विचलित चित्त हो जाना पड़ा था।

विमल बाबू ने जिस घर को ब्रज बाबू और रेणुका के लिए ठीक कर रखा था, सविता घर में चली गई हैं। विमल बाबू कलकत्ते में नहीं हैं। व्यवसाय सम्बन्धी आवश्यक तार आने से सिंगापुर वापस चले गये हैं। सविता की देख-भाल का भार लेकर राखाल को इस नये घर में रहने के लिए विमल बाबू ने अनुरोध किया था। नई-माँ की देख-भाल का भार लेने को राजी होने पर भी उनके घर पर रहने में राखाल ने असमर्थता प्रकट की थी। विमल बाबू से यह सूचना सुनकर तारक ने स्वेच्छा से नई-माँ के घर पर रह

कर उनकी देख-भाल का भार लिया है।

सविता की इच्छानुसार तारक ने वर्दवान की अध्यापकी छोड़कर हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करना शुरू किया है। एकतल्ले के बाहरी हिस्से का बैठकखाना कानूनी पेशा वाले के उपयुक्त सामान से खूब अच्छी तरह सजा दिया गया है। विमल बाबू ने स्वयं व्यवस्था करके उसको हाईकोर्ट के एक प्रतिष्ठित वकील का जूनियर बना दिया है। विमल बाबू की छोटी मोटरकार में ही वह कचहरी जाता आता है। तारक के आवश्यक पोशाक पहनावे गाउन आदि सामान सब ही सविता ने खरीद दिये हैं।

तारक का भोजन हो जाने पर सविता ऊपर चली आई थीं। बहुत देर बाद शारदा ने ऊपर आकर कहा—मां, आज भी आप कुछ न खायेंगी ?

'नहीं शारदा ! मेरे गले में कुछ नहीं उतरेगा। लेकिन तुम यदि मेरे लिए न खाकर उपास करना चाहोगी, तो मुझे खाना ही पड़ेगा। लेकिन मैं जानती हूं, तुम अपनी मां के ऊपर ऐसा अत्याचार न करोगी।

शारदा मलिन भाव से खड़ी रही।

सविता ने कहा—'जाओ बेटी, भोजन करो।'

शारदा मुंह नीचे झुकाये धोती के आंचल का एक कोना दोनों हाथों से व्यर्थ ही लपेटने लगी।

सविता ने कहा—'कोई मनुष्य एक समय न खाने से मरता नहीं शारदा। लेकिन भोजन अधिकांश समय में उसके लिए मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी हो उठता है। फिर भी, अगर तुम मुझे खिलाने के लिए परेशान करना चाहो तो चलो चलती हूं।'

शारदा ने इस बार मुंह ऊपर उठाकर मृदु कण्ठ से कहा—'नहीं, रहने दो मां। मैं अकेली जाती हूं।'

निस्तब्ध कमरे में बत्ती बुझाकर दरवाजे की सिटकिनी बन्द करके सविता फर्श पर लेट गई।

आज दोपहर को राखाल आया था। सविता विपत्तिग्रस्त पति और कन्या का सब समाचार जान गई है। सारा दिन मानो उदासीनता के बीच से छाया की तरह बीत गया है, रात के स्तब्ध निर्जन अवकाश में वेदना

भावातुर अन्तस्तल में कुछ-कुछ मानो चेतना लौट आई है। दोनों नेत्रों की अविरल विचलित अश्रुधारा से कठोर फर्श और लापरवाही से बँधी हुई केश राशि भीगने लगी। कोई भी शब्द नहीं है। चंचलता नहीं है। निस्पन्द शरीर में फैलाई हुई बाहों पर माथा रखकर संसार पर एक करवट पर पड़ी हुई हैं। उपायहीन हानि के क्षोभ से उनका समस्त हृदय आज कातर और विकल है। कोई सान्त्वना भी आज ढूंढ़ने पर उन्हें नहीं मिल रही है। अपनी सन्तान का यह दुःख और कृच्छ्रसाधन उनको दिन-रात मानो आग की चिन-गारी के आघात से जर्जरित कर रही है। समस्त हृदय क्षत-विक्षत हो जाने पर भी वेदना से आर्त्तनाद करने का उपाय कहाँ है। बलि पशु के समान ही रक्त सने शरीर से धूलि में पड़ी र ˙ ˙ र छटपटाते रहने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

आज उनका तृषित मातृ हृदय ।नों बाहों को बढ़ाकर जिसको छाती के अन्दर खींच लेने को व्याकुल है संसार में वही आज उससे सबसे अधिक पराई, सबसे अधिक दूर की हो ग६ है।

परिपूर्ण यौवन के उच्छ्वसित वसन्त ऋतु में जब जीवन स्वतः ही प्यास से आतुर रहता है, उनको उन दिनों को बिल्कुल ही अकेली निःसंग अवस्था में ढोना पड़ा है, नहीं मिला है हृदय का साथी, न तो मिला है यौवन का प्राणवान सहचर! उस एकान्त अकेलेपन के बीच अचानक एक दिन न मालूम कहाँ से कैसा आकस्मिक भूचाल आ गया, उसे वे स्वयं भी स्पष्ट रूप से समझ नहीं सकीं। जब होश हुआ, आसपास उन्होंने देख लिया कि सारी दुनिया में उनका कोई नहीं है, कुछ नहीं है। पति, सन्तान, गृह, परिजन, संसार, प्रतिष्ठा, मान मर्यादा सब ही जादूगर की जादूगरी की तरह अन्तर्धान हो गये हैं। भयचकित चित्त से सहसा उन्होंने अनुभव किया, दुनिया और समाज के बाहर वे बन्धुहीन, अवलम्बहीन हैं, अकेले शून्य के बीच लटक रही हैं। पैर रखकर खड़ा होने तक को पृथ्वी भी पैरों के नीचे अब नहीं रही।

जीवन के इस आश्चर्यजनक सर्वनाश के क्षण में सविता ने जिस अत्यन्त कीचड़ भरी आश्रयभूमि की परिधि के बीच अपने को खड़ा कर दिया, वह सामाजिक ज्ञान-बुद्धि और विचार से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। लेकिन दिन

बीतते रहने के साथ उस कलुषित आश्रय के क्लेश और भद्देपन से प्रतिदिन उनका शरीर मन घृणा से संकुचित होता गया। जाग्रत आत्म-चेतना प्रतिक्षण पश्चात्ताप के मर्मान्तक आघात से आहत और जर्जरित होती रही। फिर भी उस असहनीय और अवांछनीय, संकीर्ण आश्रय को छोड़कर और भी अनिश्चित मार्ग के बीच कूद जाने का साहस उनको नहीं हुआ। अपनी अतिशय निरुपाय अवस्था समझ लेने पर वे अन्दर-ही-अन्दर सिहरती रहीं। इसी तरह उनके दिन के बाद दिन, महीने के बाद महीने, सालों के बाद साल एक-एक करके बीतते गये।

अगर जीवन के प्रारम्भिक क्षणों में कोई बलिष्ठ सजीव पुरुष उनके जीवन के मार्ग में आ खड़ा होता तो आज उनके उज्ज्वल नारी जीवन की दीप्ति से क्या संसार और समाज प्रकाशित न हो उठता ? प्रसन्न शरीर मन के आनन्दित हृदय के अनुकूल आवेष्ठन के प्रभाव से वे क्या आज लक्ष्मी स्वरूपिनी पत्नी, आदर्श माता, ममता माधुर्यमयी नारी न बन गई होतीं ? किसलिए उनके जीवन की उदय ऊषा ऐसे अकाल समय में विलीन हो गई ? क्षणमात्र के अवकाश में इतना बड़ा भूचाल कैसे आ गया, जो उनको अपने ही सपने में अगोचर था।

सविता की इस अबाध अश्रुसिक्त चिन्ताधारा में एकाएक रुकावट पड़ गई। किवाड़ पर खट-खट आवाज होने के साथ तारक का कण्ठ स्वर सुनाई पड़ा—'नई-माँ—नई-माँ, जरा द्वार खोल दीजिए···।'

सविता उठ बैठीं और अपने को कुछ चेतना में ला ही रही थीं कि उसी समय द्वार पर फिर खट-खट और एक के बाद एक आवाज लगातार सुनाई पड़ने लगी।

जल्दी मुंह और आँखें पोंछकर तेज हाथों से शरीर और माथे के कपड़े को अच्छी तरह संभाल कर सविता ने द्वार खोल दिया। तारक की इस अधीर घबराहट से वे घर में कोई दुर्घटना हो गई है यह अनुमान करके शंकित हो उठी थीं। द्वार खुलने पर भीतर आते ही तारक ने कहा—'सुनता हूं, आप रोज ही रात को बिना खाये रह जाती हैं। आज भी आपने कुछ मुंह में नहीं डाला है। तबियत क्या अधिक खराब हो गई है ?'

तारक का प्रश्न सुनकर सविता आश्चर्य और विरक्ति से मौन हो गई। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

तारक ने फिर पूछा।

'नहीं, मैं अच्छी ही हूं।' सविता ने शान्त स्वर में उत्तर दिया।

'तो क्यों इस तरह उपवास कर रही हैं? नहीं-नहीं, इसे मैं न मानूंगा, कुछ-न-कुछ खाना आवश्यक है। कल ही मैं डाक्टर बुला लाऊंगा।' तारक के कण्ठ में यथेष्ट उद्विग्नता प्रकट हुई।

'यह सब हंगामा मत करो तारक! मैं मना करती हूं।'

'तो बताइए, क्यों अकारण ही उपवास करके आप अपने पर अत्याचार कर रही हैं!'

'रात हो गई है, तुम जाकर सो रहो तारक!' सविता के स्वर में अत्यन्त थकावट फूट उठी।

तारक इसी से दुःखी हो पड़ा। बोला--'बहुत अच्छा! आपकी जैसी इच्छा हो कीजिए। मैं सिंगापुर सब हाल लिख देता हूं। आने पर यदि वे कहें तारक, तुमको देखभाल करने का दायित्व देकर रखा गया था, मुझको तुमने सूचना क्यों नहीं दी—तब क्या उत्तर दूंगा उनको?'

सविता का हृदय जल उठा। लेकिन धीर भाव से उन्होंने कहा—'मैंने क्यों दो दिन खाया नहीं, अथवा तीन दिन मैं सोई नहीं, इसके लिए वे किसी से भी विवरण नहीं मांगेंगे।'

'तो इस हालत में मेरे यहां रहने की क्या आवश्यकता है नई मां?'

तारक के स्वर में अभिमान प्रकट हुआ।

सविता ने अप्रसन्न कण्ठ से कहा—'आज मैं बहुत थक गई हूं तारक, तर्क करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं सोने जा रही हूं।' सविता ने धीरे-धीरे फिर द्वार बन्द कर दिया।

शारदा सीढ़ियों के सामने ही खड़ी थी। लौटते समय उसको देखकर तारक तीव्र स्वर से बोल उठा—'नई मां जो प्रतिदिन रात को उपवास करती हैं, यह बात आपने मुझे क्यों नहीं बताई? आज शिबू की मां के मुंह से सुन कर यह बात मुझे मालूम हुई।'

'आपने तो उनके सम्बन्ध में कुछ जानना नहीं चाहा !'

शारदा के कण्ठ की निर्लिप्तता से तारक गरज उठा—'इतनी बड़ी झूठी बदनामी ! मैं क्या नई माँ की सुध नहीं रखता ? देखभाल में त्रुटि करता हूँ ?'

'व्यर्थ मत चिल्लाइये। मैंने यह सब कुछ भी नहीं कहा।'

'अवश्य ही कहा है। मैं समझ गया हूँ। मेरे विरुद्ध एक षड्यन्त्र चल रहा है। आज रात को ही मैं सब लिख देता हूँ विमल बाबू को।'

'आप लिख सकते हैं। लेकिन इसमें नई माँ अप्रसन्न होंगी।'

'अपना कर्त्तव्य मैं अवश्य करूंगा। सब दायित्व वे मेरे ही ऊपर रख गये हैं, इस बात को भूल जाने से तो हम लोगों का काम नहीं चल सकता।'

'नई माँ की रुचि अरुचि पर अत्याचार करने के लिए वे किसी को भी नहीं कह गये हैं। कहेंगे भी कैसे ? यह अधिकार किसी को भी नहीं है।'

व्यंग भरे स्वर से तारक बोला—'सुनूं तो वह अधिकार किसको है ?' आशा करता हूँ राखाल बाबू को तो नहीं है।'

शारदा की दृष्टि कठोर हो उठी। उसने अपने को सँभालकर मीठे स्वर से कहा—'नई माँ के ऊपर जोर चलाने का अधिकार यदि आज किसी को है तो राखाल बाबू को ही है और किसी को नहीं है।'

मृदु स्वर से कही गई इन सब बातों ने तीखे नोक वाली सुई की भाँति तारक को बींध दिया।

क्रोध को संयत न कर सकने पर तारक बोल उठा—'यह तो ठीक ही है। इसीलिए तो वे नई माँ की असहाय अवस्था में देखभाल करने का भार तक भी न ले सके। नई माँ के घर आकर रहने से पीछे कहीं उनके नाम में कलंक न लग जाय।'

शान्त कण्ठ से शारदा ने कहा—'जो लोग स्वार्थ के प्रयोजन से सब कुछ करने को तैयार हैं, राखाल बाबू उन लोगों के दल के नहीं हैं। नई माँ की देख-भाल का भार लेने की अपेक्षा नई माँ की तरह उन्होंने बहुत बड़ा कर्तव्य का भार ले रखा है। आप उसे नहीं जानते, इसलिए समझ न पायेंगे।'

किसी उत्तर की प्रतीक्षा न करके शारदा सीढ़ियों से उतरती हुई नीचे

चली गई।

सविता नहा धोकर तुरन्त भीगे बालों के घने समूह को पीठ पर फैलाकर धूप की ओर पीठ करके एकाग्रचित्त से पत्र लिख रही थी। पहिनी हुई धोती काली पाड शंख सदृश्य सुन्दर गरदन की ओर से लता की तरह लिपटकर पीठ पर टेढ़ी होकर पड़ी हुई है। उदास विषाद भरी छाया ने शीर्ण शुभ्र मुख पर सकरुण श्री को विकसित कर दिया है।

शारदा उसी स्थान पर बरामदे के एक कोने पर बैठकर अपने लिए कुर्ती सी रही थी। रास्ते की तरफ उसने देखा तो उसे राखाल आता हुआ दिखाई पड़ा। सिलाई का काम हाथ में लिये ही वह सदर द्वार खोलने के लिए नीचे उतर गई।

जंजीर खटखटाकर पुकारने की आवश्यकता नहीं पड़ी। खुले द्वार पर शारदा उसके लिए प्रतीक्षा कर रही है, यह देखकर राखाल अपने मन में कुछ प्रसन्न हो उठा। उसे प्रकट न करके ही वह बोल उठा—'ठीक दोपहर के समय सदर द्वार पर क्यों खड़ी हो शारदा ?

'एक आदमी की प्रतीक्षा कर रही हूँ।'

'कौन है वह ? शायद फेरी वाला होगा।'

'नहीं, आप पहचान न सकेंगे।'

'तो तुम ही पहचान करा दो न···!'

'स्वयं पहचान लेना न चाहने से दूसरा कोई उसे पहचान लेने की शक्ति नहीं दे सकता देवता।'

'यह बात तो पहेली मालूम हो रही है···!'

कल्पनाशील मनुष्य के लिए सभी बातें पहेली-सी ही लगती हैं ऐसा मैंने सुना है। अन्दर चलिए, द्वार बन्द कर दूं।'

शारदा द्वार बन्द करके राखाल के साथ अन्दर चली गई।

राखाल ने मृदु हंसी से कहा—'और कभी क्या इसी प्रकार निस्तब्ध दोपहर को किसी के लिए द्वार पर खड़ी रहकर प्रतीक्षा करती रहती हो क्या शारदा ?'

उसके स्वर में स्वच्छ परिहास का लघु सुर था।

शारदा ने सिर्फ कुछ देर राखाल के मुंह की ओर देखकर समझना चाहा कि यह व्यंग्योक्ति है या नहीं। उसके बाद उसने भी हंसकर उत्तर दिया—'हाँ, सब दिन ही रहना पड़ता है। जिस दिन पहले पहल आपने मुझे देखा था, उस दिन भी तो एक आदमी की बाट जोहती हुई द्वार खोलकर मैं प्रतीक्षा कर रही थी।'

'ऐसी ही बात है क्या? वे कौन हैं बताओ तो?'

शारदा ने हंसकर कहा—'मेरे परम मित्र हैं मरण देवता। उनके आने का द्वार तो उस दिन इसी तरह अपने ही हाथों से मैंने खोल दिया था। लेकिन उस खुले द्वार की राह से मरण देवता के बदले आ गये मर्त्यलोक के देवता।'

इस बात को हल्का बना देने के लिए उसने कहा—'कोई कुदेवता तो आ नहीं गये इतना ही यथेष्ट है। चलो ऊपर चलें। नई-माँ क्या इस समय विश्राम कर रही हैं?'

'नहीं, वे पत्र लिख रही हैं और अभी ही आई हैं।'

'यह कैसी बात! इतनी देर में?'

'रोज तो ऐसा ही होता है। गृहस्थी के सभी काम-काज अपने हाथों से सम्पन्न करके स्नान-पूजा करके खाने बैठती हैं, तब तीन बज जाते हैं। बल्कि आज तो कुछ पहले ही हो गया है।'

'इसका क्या तात्पर्य? अपने हाथ से तो ये सब काम करना नई-माँ का अभ्यास नहीं है। ऐसा करने से सख्त बीमार पड़ जायेंगी। दास-दासी, रसोईदारिन ये सब क्या अब नहीं हैं? अकेली वे हैं। ऐसा ही क्या उनको अभाव···?'

'अभाव के कारण नहीं देवता।'

'तो?'

'यह है उनका कठिन आत्म-निग्रह।'

राखाल चुप हो रहा।

शारदा ने लम्बी साँस भरकर कहा—'चलकर बैठिए।'

शारदा के मुंह की तरफ देखकर राखाल ने कहा—'मैं दोपहर को आता

हूँ, इससे नई-माँ के विश्राम में मैं कुछ विघ्न तो नहीं डालता शारदा ?'

'यदि आपको ऐसा ख्याल हो तो इस समय न आवें तभी ठीक है।'

राखाल ने सन्देह भरे स्वर में कहा—'इसका क्या मतलब ? तुम इसके बारे मे क्या जानती हो ?'

'जानती हो तो हूँ। इस समय घर के नये वकील साहब कचहरी में रहते हैं। अतएव आपको मित्र संकट, अरे, मित्र-मिलन होने की संभावना नहीं है।'

'हूँ, लकीर खींचकर भविष्य-गणना करना मैंने सीखा है। अब चलो, ऊपर चलोगी या नीचे ही मुझे खड़ा रखोगी ?'

शारदा ने कहा—उस ओर की एक बेञ्च पर जरा चलकर बैठिए न देवता। माँ का चिट्ठी लिखना समाप्त होने में अभी कुछ देर है। इसी अवसर में मैं आपसे दो-चार बातें पूछना चाहती हूँ।'

'चलो, ऊपर जाकर ही सुनूंगा।'

'माँ के सामने मैं कह न सकूंगी। मुझे शर्म लगेगी।'

शारदा राखाल को एकतल्ले के दालान के उत्तर की ओर ले गई। एक तरफ बेञ्च रखी हुई थी। अपने आँचल से बेञ्च की धूलि झाड़कर शारदा ने कहा—'बैठिए !'

राखाल बैठकर बोला—'तुम्हारा आसन कहाँ रहेगा ?'

'मैं यहीं अच्छी तरह हूँ, मुझे थोड़ी ही बातें करनी हैं। अधिक समय तक आपको रुकना न पड़ेगा।'

'अच्छा, अब बात आरम्भ हो जाय।'

'आप इस तरह हँसी-मजाक करेंगे तो मैं कैसे कह सकूंगी ?'

'अच्छा, हँसी-मजाक नहीं करूंगा। कहो।'

शारदा राखाल से कुछ दूरी पर दीवाल से टेक लगाकर खड़ी थी। हाथ में सिलाई का जो काम अधूरा पड़ा हुआ था, उसे हिलाते-डुलाते तनिक इधर-उधर करके उसने कहा—'मैं ठीक नहीं जानती, यह सब पूछना मेरे लिए उचित है या नहीं।' उसके बाद थोड़ी देर तक चुप रहकर उसने कहा—'अच्छा, रेणुका की सौतेली बहिन रानी विवाह के बाद किस हालत में है आप जानते हैं ?'

राखाल ने शारदा से ऐसा प्रश्न सुनने की आशा नहीं की थी। इसीलिए बहुत कुछ आश्चर्य में पड़कर उसने कहा—'क्यों, बताओ तो? मैं तो विशेष कुछ भी नहीं जानता। लेकिन वह अच्छे घर में ही पड़ी है और शादी के बाद सुख-स्वच्छन्दता में ही है। लेकिन एकाएक तुम पूछ क्यों रही हो शारदा?'

'यह बाद को बताऊँगी। अच्छा, रानी को सुनती हूं बच्चा होने वाला है, उन लोगों ने चिट्ठी लिखकर चाचाजी के पास यह सुसमाचार भेजा है?'

'शायद भेजा हो। लेकिन हम लोगों को इन सब सुसमाचारों की क्या आवश्यकता है शारदा? यह समाचार सुनाने के लिए क्या तुम मुझको यहाँ ले आई हो?'

'नहीं। आप क्या जानते हैं कि रानी का ब्याह उसी पात्र के साथ हुआ है, जिस पात्र के साथ रेणुका का ब्याह ठीक हो चुका था।'

राखाल ने अत्यन्त आश्चर्य में पड़कर कहा—'यह बात तो मैं नहीं जानता!'

कुछ देर बाद शारदा ने फिर प्रश्न किया—'चाचाजी शायद वृन्दावन जाकर रहेंगे यह उन्होंने निश्चय किया है?'

'हाँ।'

'रेणुका भी साथ जायगी?'

'नहीं तो फिर रहेगी कहाँ?'

कुछ देर शारदा चुप हो रही। बाद को धीरे-धीरे कुछ अपने मन-ही-मन बोली—'लेकिन वहाँ इस उम्र में कुंवारी लड़की···।'

राखाल ने कहा—'मैं सब समझ गया। लेकिन इसके अलावा दूसरा रास्ता ही कहाँ है, दिखा सकती हो शारदा?' थोड़ी देर रुककर वह फिर कहने लगा—'जिसके भाग्य में जो लिखा है, उसको वह होता ही है। संसार का यही नियम है। इसे मान न लेने से केवल व्यथा और दुःख बढ़ जाता है!'

'इसका मतलब यह है कि, आप कहना चाहते हैं रेणुका के भाग्य में जो है वही होगा। हम लोगों की दुश्चिन्ता बेकार है?'

'यही बात है। उसकी भाग्यविडम्बना तो शैशवकाल में शुरू हो गई थी। केवल तुम और मैं क्यों, देश भर के लोग अब उसको सुख में नहीं रख

सकेंगे ।'

'हाँ, बहुत ठोकरें खाकर यही मैंने समझ लिया है ।'

शारदा चुप हो रही बहुत देर के बाद लम्बी साँस लेकर उसने कहा—'माँ इसे सहन न कर सकेगी ऐसा जान पड़ता है ।'

'इसका तात्पर्य ?

'आप चाहे जो कुछ भी कहें, शारदा को आप भुलावे में नहीं डाल सकते । जोर लगाकर निष्ठुर बनना आपकी तरह मनुष्य के लिए साध्य नहीं है । आप सब कुछ जानते हैं, समझते हैं । आपके ज्ञान के सामने मेरा ज्ञान और मेरी बुद्धि तुच्छ है । मैं जानती हूँ, रेणुका की आज जो अवस्था है उसके लिए उसकी माँ ही उत्तरदायी है । लेकिन जो बात इस दुनिया में बहुत से मनुष्यों के जीवन में, इच्छा से या अनिच्छा से हो जाती है, उसकी क्या कोई जवाबदेही रहती है ? स्वयं ही क्या वह उसका अर्थ खोज पाता है ?'

राखाल भावहीन शून्य दृष्टि से शारदा की ओर देखता रहा ।

शारदा धीरे-धीरे कहने लगी—'तो आप सोचकर देखिए, उस दिन की माँ और आज की मा एक नहीं है । दोनों में बहुत अन्तर है और जो कोई कुछ भी क्यों न समझे देवता, माँ का नई-माँ के रूप में परिचय आपसे अधिक और कौन जानता है ?'

निरुत्तर राखाल के नेत्रों में और चेहरे पर गहन वेदना उतर आई थी। शारदा ने मीठे स्वर में कहा—'माँ की तरफ अब मुझसे नहीं देखा जाता । कैसी थीं और अब कैसी होती जा रही हैं । हृदय की आग से जलते-जलते उनका शरीर और मन राख हो गया । खाना, पहिनना छोड़ कर गृहस्थी में मजदूरिन रसोईदारिन से भी अधिक परिश्रम करते-करते चिन्ता में पड़ी पड़ी अपने शरीर को नष्ट करती जा रही हैं, तो भी एक क्षण के लिए भी वे शान्ति नहीं पा रही हैं ।'

निरुत्तर राखाल उदास नेत्रों से आँगन की तरफ देखता रहा ।

शारदा ने कहा—'माँ के ऊपर आप विचार न करें । मेरा विश्वास है कि आपके अलावा माँ के हृदय की ज्वाला बुझाने की शक्ति किसी में भी नहीं है ।'

'अब से तुम्हारी बातों पर चलने की चेष्टा करूँगा शारदा !'

गम्भीरता से शारदा ने कहा—'आप केवल मेरे जीवनदाता नहीं हैं, मेरे गुरु भी हैं। आपने ही मुझे दृष्टि दी है। आपने ही मुझे समझ दी है। आपके ही दृष्टिकोण की स्वेच्छा से आज मेरा दृष्टिकोण भी बदल गया है। यह बात मैंने जरा भी बढ़ा चढ़ाकर नहीं कही, भगवान साक्षी हैं।'

२३

विमल बाबू सिंगापुर से कलकत्ता लौट आये हैं। तारक के पत्र में सविता के शारीरिक विषय में उसको उन्होंने लिखा था—'नई-माँ जो काम करने से तृप्ति पावें, उसमें बाधा पहुँचाना हम लोगों के लिए उचित नहीं है।' यह पत्र पाकर एक प्रकार से तारक को छुट्टी मिल गई।

नई-माँ के स्नानाहार में रोज का अनियम, उपवास और परिश्रम का कठोर अत्याचार, किसी बात के लिए वह एक शब्द भी मुंह से नहीं निकालता। गम्भीर मुंह से और यथासम्भव चुप रहकर अपना स्नान भोजन करके वह बाहरी बैठकखाने में चला जाता है।

सविता हँस पड़ती है। एक दिन उसे अपने पास बुलाकर उन्होंने कहा—'तारक, तुम माँ से अप्रसन्न हो गए हो बेटा ?'

उदास मुंह बनाकर तारक ने उत्तर दिया—'यह अधिकार तो मुझे नहीं है नई-माँ। मैं केवल एक मार्ग का भिखारी ही हूँ।'

सविता ने स्नेहपूर्वक कहा—'छिः ! ऐसी बात भी कही जाती है ?'

तारक और भी कई टेढ़ी-सीधी बातें ठेस लगाकर सुनाने को तैयार हो गया था, लेकिन शारदा को आते देखकर हट गया। वह अच्छी तरह जानता है, नई-माँ कुछ भले ही न कहें, ऐसे अनेक अप्रिय सत्य हो सकते हैं कि अभी तुरन्त सुस्पष्ट हो जाए, जिनको सह लेना तारक के लिए अत्यन्त कठिन होगा।

विमल बाबू ने अपने कलकत्ता लौटने की खबर सविता के पास पहले पत्र और फिर तार द्वारा भेजी थी। सविता से समाचार सुनकर उनका स्वागत करने के लिए तारक सवेरे जहाज घाट पर उपस्थित हो गया था। तारक ने

जाकर देखा, विमल बाबू की छोटी और बड़ी दोनों मोटर गाड़ियाँ लेकर उनके मैनेजर, जमादार और दरबान आदि वहाँ उपस्थित हैं। विमल बाबू ने तारक को अपनी गाड़ी में बुला लिया।

मोटर में विमल बाबू ने तारक से सबसे पहले यही प्रश्न किया कि राजू अच्छी तरह से तो है तारक ?

विस्मित होकर तारक ने पूछा—'क्यों, उसे क्या हुआ है ?

'नहीं, यों ही पूछता हूँ। मैंने उसे लिखा था न, कि यदि उसे कुछ असुविधा न हो तो यहाँ जेटी पर ही आकर मिल ले।'

तारक के मुँह की चमक क्षण भर में ही बुझ गई। सूखे हुये गले से उसने प्रश्न किया—शायद कोई आवश्यक प्रयोजन था ?

'हाँ। आया नहीं, यह देखकर जान पड़ता है, या तो उसकी तबियत खराब हो गई है या मेरी चिट्ठी नहीं मिली।'

तारक ने कहा—नहीं, अभी परसों शाम को ही तो उसे मैंने अपने डेरे पर देखा है।

विमल बाबू ने कहा—तो फिर संभवतः किसी काम में अटक जाने के कारण नहीं आ पाया। ड्राइवर से कहा—शिवचरन पटलडांगा चलो।

तारक ने कहा—मुझे जरा पहले उतार दीजिएगा विमल बाबू। इस मुहल्ले में आज मेरा एक जरूरी कन्सल्टेशन है।

'तो यह कहो कि तुम्हारी वकालत खूब चमक उठी है ?'

'सो आपके आशीर्वाद से अधिक बुरी नहीं। प्रायः नित्य ही कोई-न-कोई मुकदमा रहता है।'

'अच्छा अच्छा, तुम जीवन में उन्नति कर सकोगे।'

तारक विनम्र हास्य के साथ विमल बाबू के पैर छू कर गाड़ी से उतर गया।

पटलडांगा में आकर देखा गया कि राखाल का डेरा डबल ताले से बन्द है। समाचार पाने का या पता लगाने का भी कोई उपाय वहाँ नहीं है।

विमल बाबू वहाँ से लौटकर सीधे सविता के मकान पर आकर उतरे पड़े। उनकी आवाज सुनकर शारदा ने चटपट बाहर निकलकर हंसते हुए चेहरे से प्रणाम किया। विमल बाबू की ओर देखकर बोली—आप बहुत दुबले हो गए

हैं। काले भी बहुत हो गए हैं। उस देश की जलवायु शायद अच्छी नहीं है।

विमल बाबू ने हंसकर जवाब दिया—संसार भर की माताओं की दृष्टि हमेशा से यही एक बात कहती आई है। लड़का कुछ दिन बाहर घूमकर जब वह घर लौटकर आता है, तब माताएँ उसे सिर-पैर तक देखकर, देह और माथे पर हाथ फेरकर कहेंगी कि आहा, मेरा बच्चा आधा होकर लौटा है। इसका प्रमाण कहाँ है शारदा माँ, कि मैं पहले कम काला था या इससे ज्यादा मोटा था ?

शारदा शरमा गई और विमल बाबू की बात टाल कर बोली—बैठिए, माँ को बुलाये देती हूँ।

बुलाना नहीं पड़ा। चौके से सविता स्वयं बाहर निकल आई। मिल की अधमैली मोटी धोती पहने थी। शुभ्र ललाट से हटकर कानों के पास रूखे केशगुच्छ काले रेशम की डोर की तरह डोल रहे थे। चेहरा पहले की अपेक्षा अधिक दुर्बल और शीर्ण हो गया था। बड़ी बड़ी आँखें निष्प्रभ दृष्टि में दबी हुई विषाद की छाया थी।

विमल बाबू को यह आशा नहीं थी कि वह सविता के शरीर की दशा इतनी बुरी देखेंगे। इसी से चौंककर बोले—यह क्या, तुम्हारा शरीर इतना अधिक कैसे बिगड़ गया ? बीमार तो नहीं हो गई थी ?

भोर के अन्धेरे आकाश में जो पीला प्रकाश हुआ करता है, उसी की तरह हलकी हँसी के साथ सविता ने कहा—बीमार तो नहीं हुई लेकिन तुमने जो मुझे लिखा था कि जहाज से उतरकर अपने घर ही जाओगे। वहाँ नहा-धोकर, खा-पीकर विश्राम के बाद तीसरे पहर यहाँ आओगे। लेकिन यह तो देखती हूँ कि एकदम धूलभरे पैरों से ही यहाँ पधारे हो !

शारदा और कहीं चली गई। जाती हुई शारदा की ओर दृष्टिपात करके गले को और जरा नीचा करके धीरे से विमल बाबू ने कहा—धूलभरे पैरों से ही देवी के दर्शन करने का शास्त्र विधान है।

'यह बात है !'

'विश्वास न हो पंजिका खोलकर देख लो। लेकिन इसे छोड़ो। मेरे प्रश्न का उत्तर दो।'

'किस प्रश्न का ?'

'शरीर इतना अधिक क्यों बिगड़ा ?'

सविता के होठों के कोनों में दबी हुई हँसी फूट उठी। विमल बाबू ने ही क्षणभर पहले शारदा से जो कहा था, उसी की अविकल नकल करके—कहने के ढंग तक का भी—सविता ने कहा—संसार के दयामयों की नजर हमेशा से असहाय दीन-दुखियों के संबंध में यही एक बात कहती आ रही है।

सविता के मुंह से अपनी ही बात दोहराई जाती सुन कर विमल बाबू जोर से हंस पड़े। सविता भी हंसने लगी। अस्पष्ट वेदना की छाया से घिरे हुए घर का आकाश और हवा की मलिनता जैसे बहुत दिन बाद आज उन्मुक्त हास्य की स्वच्छ धारा से धुल गई।

विमल बाबू ने कहा—तुमसे मैं हार मानता हूँ सवि—रेणु की मां !

'सविता' कहते कहते विमल बाबू ने चटपट संभलकर 'रेणु की मां' कहा, इस पर लक्ष्य करके सविता जरा मुसकरा उठी। फिर बोली—कहां स्नान भोजन करोगे ? यहां या घर पर ?

'जहां तुम कहो।'

'घर ही जाओ।'

'वहां मेरी अपेक्षा करके बैठा रहने वाला कोई नहीं है, यह तुम जानती हो। हैं केवल नौकर चाकर और कर्मचारी। दूर के नाते की एक मौसी अवश्य रहती है अपने एक जड़-बुद्धि लड़के को लेकर। लेकिन उनके लिए मेरा आना प्रसन्नता की बात है या भय की, यह ठीक निर्णय करना कठिन है।'

'कुछ भी हो, घर ही जाओ। वहां चाहे जो हो, वे सभी तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह बिल्कुल ठीक है। वह चाहे प्रीति से हो चाहे भीति से। सीधे यहां आकर ही उतरना अच्छा न दिखाई देगा।'

'शायद निंदा होगी ? किसकी होगी ? तुम्हारी या मेरी ?'

'तुम्हें किसकी जान पड़ती है ?'

'होगी तो दोनों का नाम उसमें शामिल होगा।'

'तो अब अधिक देर क्यों करते हो ?'

सोचता हूँ कि मन की विशेष अवस्था में मिथ्या भी अनेक समय प्रशंसा से अधिक लुभावना होता है।'

'दार्शनिक तत्व रहने दो ; अब घर जाओ ।'

'जाता हूं । लेकिन देखता हूं तुम मुझे—'

विमल बाबू के मुंह की बात छीनकर सविता ने कहा—किसी तरह यहां से भगा पाऊं तो चैन पड़े । यही न ? हां, यही बात है । इस समय इसी की साधना कर रही हूं दयामय ! उसका कण्ठस्वर पीछे की ओर कुछ भारी हो उठा ।

विमल बाबू विचलित हुए । अप्रत्याशित विस्मय से इस असावधान घड़ी में उनके मुख से निकल पड़ा—सविता !

करुण हंसी के साथ विमल बाबू की ओर ताककर सविता ने कहा—फिर सब बातें कहूंगी, इस समय कुछ न पूछो ।

'ना, मैं सब जाने बिना घर नहीं जाऊंगा । तुमको बताना होगा कि क्या है ।'

'बताऊंगी तीसरे पहर आना । रात को बल्कि यहीं खाना । मैं आजकल अपने ही हाथ से भोजन बनाती हूं ।'

विमल बाबू ने कहा—यही होगा । किन्तु देखो, उस समय मुझे ठग कर और बातों में न भुला देना ।

'डरो नहीं । जीवन में एक अपने को ठगने के सिवा किसी और को ठगा या धोखा दिया हो, याद नहीं पड़ता ।'—सविता का गला कांप उठा ।

विमल बाबू ने लक्ष्य किया, सविता आज सहज हंसी के उत्तर में भी जैसे किसी एक भारी वेदना से गम्भीर हो उठती है । उनसे यह समझने में गलती नहीं हुई कि यह उसके हृदय में छिपे हुए किसी एक विक्षोभ का ही बाहरी लक्षण है । इसी से और कोई भी बात न करके तीसरे पहर ही आने को कहकर विदा हो गये ।

सन्ध्या से कुछ पहले विमल बाबू जब आये, उस समय सविता इस वेला की रसोई बना चुकी थी और सन्ध्या का स्नान समाप्त करके साफ-सुथरे वस्त्र धारण किये तिमंजिले की छत पर एक डेक-चेयर पर बैठी थी । सामने एक और कुर्सी रखी था । शुभ्र कपड़े से ढकी एक छोटी तिपाई के ऊपर स्वच्छ कांच के ग्लास में पीने का स्वच्छ पानी ढंका रखा था । एक डिब्बा विलायती

सिगरेट, जिस ब्राण्ड का विमल बाबू हमेशा पीते हैं, रखा था। तिपाई के ऊपर एक दियासलाई की डिब्बी और राख झाड़ने की पीतल की चमचमाती हुई ऐश-ट्रे।

विमल बाबू के आने पर कमल-नाल से गौर-वर्ण शरीर को झुकाकर सविता ने उनके दोनों पैर छूकर प्रणाम किया।

विमल बाबू अनमयस्क होकर पीछे हट गये। बोले—यह क्या करती हो, यह क्या पागलपन है—

दोनों विशाल नेत्रों को उज्ज्वल करके सविता ने कहा—पागलपन नहीं, तुम्हारे प्रधान प्रश्न का यही उत्तर है। सवेरे आमंत्रण किया, सन्ध्या को प्रणाम निवेदन किया। अब तो और कुछ मुझसे नहीं पूछोगे दयामय ?

सविता के कंठ-स्वर में ऐसा एक अश्रुत पूर्व माधुर्य बरस पड़ा कि विमल बाबू जरा देर गुमसुम खड़े रहे। उन्हें जान पड़ा कि यह जैसे वह पूर्व-परिचित सविता नहीं है जिसको असहाय अवस्था में रमणी बाबू के सुसज्जित भवन में उन्होंने दिन-पर-दिन निगूढ़ वेदना से मौन छाया के तले विषाद-भरी प्रतिमा की तरह बार-बार देखा है। आज भी सवेरे चौके के सामने जिसकी मलिन दुःखी मूर्ति को देखकर वेदना ने उनके हृदय को भीतर से मथ दिया था—यह जैसे वह सविता भी नहीं है। इस समय उसके खूब गोरे, क्षीण और कृश मुखमण्डल में एक शान्त कोमल स्निग्धता थी। उस मुख में हृदय के आवेग की अत्यन्त अधिकता से उत्पन्न उच्छ्वास की दीप्ति या चमक न थी, शर्मीली प्रेमिका की प्रणय-सुलभ लज्जा के रंग की लालिमा नहीं थी। दोनों सुकुमार होठों में प्रीति-स्निग्ध संयत हास्य की माधुर्यमयी सुषमा थी। दुःखपूर्ण दोनों शान्त नयनों में दूर तक फैलने वाली दृष्टि का विकास था। आज सकल अंग-भंगी की प्रत्येक रेखा में एक ऐसी सुचारु, सुन्दर, अथच मर्यादा-सूचक अभि-व्यक्ति विकसित हो उठी है, जिसमें स्नेह और श्रद्धा की, विश्वास और निर्भरता की व्यंजना अत्यन्त सुस्पष्ट है। संसार में नारी की इस मूर्ति के दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं। विमल बाबू ने अपने जीवन में नारी का ऐसा रूप और कहीं नहीं देखा।

सविता की इस गौरवशाली मूर्ति की ओर देखकर आज सर्वप्रथम विमल

बाबू को लगा कि वह इस जगत् में जिस स्तर के मनुष्य हैं, सविता उससे बहुत ऊपर के लोक की रहने वाली है। मानव-जीवन की जिस अन्तरतम अनुभूति ने, चरम दुर्योग या विपत्ति के बीच प्रत्यक्ष प्राप्त की गई जिस बुद्धि और अभिज्ञता ने, दुःख के दुर्गम पथ में क्षत-विक्षत पैरों वाले यात्री के जिस भूयोदर्शन या सूझ-बूझ ने आज सविता के भीतर-बाहर को घेरकर ऐसी एक गौरव का रूप खड़ा कर दिया है, जिसे यथेष्ट दूर से सिर नवाकर केवल प्रणाम ही किया जा सकता है; उसके पास जाकर खड़ा नहीं हुआ जा सकता।

विमल बाबू के इस अभिभूत भाव को लक्ष्य करके मन में संकुचित होने पर भी, मुख पर सहज भाव बनाये रखकर ही सविता ने कहा—खड़े कब तक रहोगे, बैठो!

विमल बाबू चुपचाप अपने लिए रखी हुई कुर्सी पर बैठ अवश्य गये; किन्तु तब भी सविता की ओर एकटक देखते ही रहे। उनकी उस दृष्टि में आज रूप-मुग्ध की विह्वल व्याकुलता नहीं है, अनुरागी का श्रद्धायुक्त विस्मय। यह जैसे वांछित देवमूर्त्ति के प्रति भक्त का प्रार्थना से सुन्दर सम्पूर्ण दर्शन है।

सविता ने संकुचित होकर कहा—एकटक क्या देख रहे हो?

'तुम्हीं को देख रहा हूं।'

'मुझे क्या कभी देखा नहीं?'

'आज की तुमको मैंने सचमुच ही कभी नहीं देखा। जिसे देखा है, वह इस समय की तुम नहीं हो।'

'वह कौन हूं मैं दयामय?'

'वह और ही हो तुम। वह तुम हो दुःख के दुःख से विचलित और भूत, वर्तमान तथा भविष्य की चिन्ता से दुःखी। अपनी चिन्ता में अपने को खोये हुए असहाय तुम।'

'और आज की मैं?'

'यह तुम और एक नई ही महिला हो। इस रूप को मैंने आज ही पहले पहल देख पाया है। सचमुच ही इतने दिन इसके साथ मेरा परिचय नहीं था। सिंगापुर में तुम्हारी लिखी चिट्ठियों में इसकी पग-ध्वनि अवश्य मैंने सुन पाई थी—आज यहां आकर उसका अपूर्व आविर्भाव देखा।'

सविता हँसी ! वह हँसी उदास थी गोधूलि समय के लाल-लाल प्रकाश में दूर से आया हुआ वंशी में बज रहा सुर जसे मनुष्य के चित्त को क्षणभर के लिए ही सही, अकारण उदास कर देता है, वैसे ही सविता की इस हंसी में वही क्षणभर उदास बना देने का अनोखा जादू छिपा है। सविता ने कहा—क्या जानें, यह हो भी सकता है। एक ही जन्म में मनुष्य के कितने और जन्म हो जाते हैं, इसकी क्या गिनती है !

विमल बाबू कुछ बोले नहीं। विस्मित नेत्रों से लक्ष्य करने लगे, सविता एक कत्थई किनारी की दूधिया गर्द की सारी पहने है। अपने किसी काम से एक बार काशी जाकर विमल बाबू ही यह गर्द की सारी पूजा-आह्निक के समय पहनने को ले आये थे। सारी पहनने के लिए विमल बाबू के जिद करने पर सविता ने हँसकर उत्तर दिया था—अभी रहने दो। समय आने पर पहनूंगी।

आज ही वह सारी पहनकर सविता विमल बाबू की प्रतीक्षा कर रही थी।

विमल बाबू ने कहा—पुनर्जन्म या जन्मांतर मैं नहीं मानता था, किन्तु तुमने मुझे मनवा दिया। यह सच है कि इसी जीवन में मनुष्य का जन्मांतर होता है। इसी से तो तुम्हें इतने दिन बाद मेरी दी हुई सारी पहनने का समय मेरे इसी जन्म में हुआ है।

सविता को निरुत्तर देखकर विमल बाबू ने कहा—शायद मैं भूल से कह रहा हूँ। 'समय हुआ है' न कहकर 'समय बीत गया' ही मुझे कहना चाहिए था—क्यों सवि—रेणु की माँ ?

विमल बाबू के प्रश्न का उत्तर टालकर सविता ने मुसकाते हुए कहा—लेकिन तुम यह तो बताओ कि यह विडम्बना और भी कितने दिन भोगोगे ? भीतर से जो पुकार (संबोधन) आपसे आप निकल रही है, उसे बार-बार गला दबाकर, ठेलकर, हटाकर और के मुख की पुकार को दोहराने की चेष्टा करते हो ! इसमें कितनी बार तो तुमने ठोकर खाई है ! तो भी न छोड़ोगे ?

विमल बाबू प्रतिभाहीन हो गये।

सविता कहने लगी—पहले कहा तुमने नई-बहू;' वह तुम्हारे अपने मुंह की पुकार नहीं है। उस नाम से पहले जिन्होंने पुकारा, उन्हीं के मुंह से वह

अच्छी मालूम देती है। तुम्हारे मुंह से वह बसुरी सुनाई दी। उसके बाद तुमने 'रेणु की मां' कहने की चेष्टा की। वह भी तुम्हारे मुंह में बार-बार बाधा पाती है; स्वाभाविक सहज भाव से निकल नहीं पाती, किसी दिन निकल भी न पावेगी।

'तो फिर क्या कहकर पुकारूं, तुम्हीं बता दो।'

'क्यों, यही सविता कहो न, जो सहज भाव से तुम्हारे मुंह में आ रही है।'

'खैर, न हो यही कहूंगा। लेकिन 'रेणु की मां' कहकर पुकारने को एक दिन तुम्हीं ने तो मुझसे कहा था।—अच्छा, सच बताओ, अनजान में मैंने क्या किसी दिन इस सम्बोधन की मर्यादा को हानि पहुंचाई है ?

सविता—यह विचार तो तुम मन में भी न लाओ। इस नाम से पुकारने के लिए कहकर मैंने ही भूल की थी। तुम्हारे निकट तो मेरा वह परिचय नहीं है। इसीसे यह संबोधन किसी भी दिन तुम्हारे कंठ में सजीव नहीं हो सका। देखो, अनेक दुःख पाकर अब एक बात मैं बहुत अच्छी तरह समझ पाई हूं कि जिसका जो है, उसका वही अच्छा है। तुम्हारे मुख से 'सविता' सम्बोधन जितना सहज-सुन्दर है, वैसा और कुछ भी नहीं।

विमल बाबू ने हंसकर कहा—तो फिर मेरे हृदय के आनन्द के झरने में जिस नाम के बुलबुले अपने आप सतरंगी इन्द्रधनुष के रंग को लेकर उठते हैं और आप ही फूट-फूटकर विलीन हो जाते हैं अब उसी भाव से सम्बोधित करने की अनुमति मुझे दो। लेकिन जानती हो, बुलबुलों के उठने-फूटने का विराम नहीं है ?

सविता—जानती हूं।

विमल—तुम क्या उसे सहन कर सकोगी रेणु की मां ? भले ही वह जल-बिन्दु का बुलबुला भर हो, तो भी भय होता है कि शायद तुमको चुभेगा।

सविता के मुख पर छाया-सी उतर आई। बोली—यही तो तुम लोगों का दोष है। औरतों के सम्पर्क में कभी, किसी दिन, तुम लोग सहज नहीं हो पाते। या तो अतिभक्ति अतिश्रद्धा से गद्गद होकर बड़े सम्मान और मर्यादा से स्त्रियों को बहुत ऊंचे पर बिठा देना चाहोगे और या एकदम नर-नारी के चिरकाल

के सम्पर्क को खड़ा करके घनिष्ठता कर बैठोगे। पुरुष और नारी के बीच मनुष्य का सहज सुन्दर सम्बन्ध क्या सचमुच ही नहीं स्थापित किया जा सकता?

विमल बाबू शान्त कण्ठ से बोले तुम्हारे और मेरे सम्बन्ध के बीच यह प्रश्न उठने का समय यद्यपि आज भी नहीं आया सविता, तथापि मैं तुमसे ही पूछता हूं कि ऐसा क्यों होता है, बता सकती हो?

कुछ सोचकर सविता ने कहा—ठीक नहीं जानती। परन्तु हां, अनुमान होता है कि शायद समाज-विधि की बुनियाद के नीचे इसका बीज बोया हुआ है। नहीं तो चारों ओर, सभी क्षेत्रों में, एक ही विषमय फल क्यों फलता है? देखो समाज के बाहर आकर आज मेरी नजर में समाज के कल्याण और अकल्याण के दोनों पहलू बहुत ही स्पष्ट होकर प्रकट हो उठे हैं। उसके भीतर रह कर मैं उसके गुण और दोष के दोनों पहलू इस तरह नहीं देख पाई थी।

विमल बाबू खूब मन लगाकर सविता की बात सुन रहे थे, आप कुछ नहीं बोले। सविता कहती चली गई—मनुष्य अपने मन को लेकर कितनी बड़ाई करता है, किन्तु उसके विषय में वह कितना जानता है—कितना पहचानता है? जीवन, नाटक के प्रत्येक अंक में उसका रूप बदलता रहता है। यही देखो उस दिन तक भी मैं मनमें यही सोचती आई हूं कि मेरे समान स्वामी की भक्ति जगत में कदाचित और किसी भी स्त्री ने कभी नहीं की। स्वामी को मेरी तरह इतना प्यार प्रेम भी शायद अन्य कोई स्त्री नहीं कर पावेगी। बाहर की दुनिया के विपरीत खबर जानने पर भी, अपने हृदय के भीतर का हाल तो मैं अच्छी तरह से जानती हूं। किन्तु इतने दिन बाद आज मेरी वह धारणा बदल गई है। अपने अन्तःकरण का यथार्थ इतने दिन बाद समझ पा रही हूं।

विस्मित होकर विमल बाबू ने कहा—क्या समझती हो सविता?

कुछ कुछ स्वगत भाव से ही सविता ने कहा—ठीक स्पष्ट करके उसे कहना कठिन है। आज केवल इतना ही मैं अच्छी तरह से समझ पा रही हूं कि अन्तर की श्रद्धा, भक्ति तथा कारगत धारणा और हृदय का प्रेम एक ही वस्तु नहीं है।

किन्तु मैंने सुना है कि अनेक समय श्रद्धा-भक्ति ही प्रेम का नींव बन जाती है।

'हां, यह होता है। अनेक स्थान करुणा, ममता या समवेदना-सहानुभूति भी शायद प्रेम को खड़ा कर देती है। किन्तु मेरा विश्वास है कि नारी और पुरुष में परस्पर भीतर और बाहर का स्वाभाविक मेल न होने पर प्रेम उत्पन्न होने पर भी सार्थक नहीं होता। इसके सिवा और भी एक बात है। अनेक समय श्रद्धा-भक्ति को अथवा स्नेह-ममता को मनुष्य प्रेम समझ लेने की भूल भी करता है।'

'तुम क्या यह कहना चाहती हो कि स्नेह या ममता से जिस प्रेम का जन्म होता है, वह सत्य या सार्थक नहीं।'

'ऐसी बातें क्यों कहूँगी? निश्चय ही वह सत्य है, और सत्य होने से ही सार्थक हुए बिना नहीं रह सकता। मैं भी कहती हूं कि स्नेह या ममता यदि यथार्थ ही प्रेम में परिणत हो जाय तभी वह सत्य है। सागर में पहुँच पाने पर सभी जल एक हो जाते हैं—झरने का जल और नदी का जल भी।'

विमल बाबू सविता की ओर स्थिर दृष्टि करके बोले—अच्छा, ये सब बातें तुमने जानीं किस तरह?

कुछ देर निरुत्तर रह कर सविता ने खुले आकाश में नजर फैलाकर कहा, अपने इस विडंबित जीवन की अभिज्ञता से जानी हैं दयामय।

विमल बाबू प्रश्नपूर्ण दृष्टि से सविता की ओर देखते रहे।

सविता ने कहा—तुमको एक दिन अपनी सभी बातें बताऊँगी।

विमल बाबू ने उलाहने के स्वर में कहा—तुम सभी बातें और एक दिन कहने को कहकर एक किनारे रख देती हो। कब तुम्हारा वह 'और एक दिन' आवेगा सविता? एक दिन तुमने कहा था कि तुमको अपने स्वामी की सब बातें सुनाऊँगी—उन्हें केवल मैं ही जानती हूं, और कोई नहीं।

सविता ने कहा—कहने की इच्छा होती है, लेकिन कह नहीं पाती। अपने को संभालना कठिन हो जाता है। किन्तु वे सब बातें सुनकर लाभ ही क्या है? अपनी इच्छा से स्वामी को छोड़कर जो स्त्री ऐसे अथाह जल में कूद पड़ी है, उसका आज भी स्वामी के प्रति क्या मनोभाव है—यह जानने को शायद

कौतूहल होता है ?

'[illegible] हँसी में भी ऐसी बात मुझसे तुम्हें न कहनी चाहिये—यह क्या तुम नहीं जानती सविता ?'

'जानती हूँ। क्षमा करो। तुमको अकारण ही मैंने चोट पहुँचाई। मेरे अपराध की कोई सीमा नहीं है।' इसके पश्चात कुंठित चित्त से सविता कुछ सोचने लगी।'

विमल बाबू मौन हो एक ओर निहारते रहे।

बहुत समय इस तरह चुपचाप बीत गया।

विमल बाबू ने पुकारा—सविता—

'क्या कहते हो ?'

'सच कहो, क्या तुम मुझसे कुछ भय करती हो ?'

'भय ? भय किसलिए ?' सविता के स्वर में विस्मय की ध्वनि थी।

विमल बाबू को जवाब देने में इधर-उधर करते देखकर सविता ने मुरझाई हुई हँसी के साथ कहा—तुमसे डरने के लिये तो मेरे पास अब कुछ भी बचा नहीं है। कौन-सी हानि शेष है अब, जिसके लिए भय करूँगी ?

विमल बाबू ने कहा—जीवन के ऊपर इतना दुःख और चाहे जो प्रकट करे तुम्हें न करने दूँगा। मनुष्य की सारी मर्यादा जीवन की किसी एक आकस्मिक दुर्घटना से बिल्कुल भस्म नहीं हो जाती। मनुष्य जब तक जीता रहता है तब तक उसका सभी कुछ बना रहता है—कुछ भी समाप्त नहीं हो जाता—चुक नहीं जाता।

सविता चुप रही। कितनी ही देर बाद स्थिर कण्ठ से बोली—तुमसे मैं तनिक भी नहीं डरती। बल्कि इतने दिन तुम्हारे सम्बन्ध में अपने इस सम्पूर्ण निर्भर होने को ही डरती रही हूँ। अब वह भय भी मिट गया है। तुम पर मैं विश्वास करती हूँ। मुझे जान पड़ता है, संसार में शायद और कोई भी स्त्री इस प्रकार किसी निःसम्पर्कीय पुरुष पर निःसंशय होकर विश्वास नहीं कर सकी।

जरा रुककर, आवाज और भी नीची करके, सविता ने फिर कहा—मैं जानती हूँ कि तुम मुझे कभी, किसी दिन, नीचे नहीं उतार सकोगे। पुरुषों

के निकट स्त्रियों का अपमान और अवहेलना जिससे होती है, वह तुम कभी न होने दोगे। सबसे बड़ी बात यह कि मुझे समझने में तुमसे भूल नहीं हुई।

विमल बाबू ने धीमी आवाज से कहा—मनुष्य मनुष्य ही है ; देवता तो नहीं है। अपने सब भले-बुरे, दोष-गुण, सफलता और दुर्बलता को लेकर ही उसका समग्र रूप है। अतएव उसके ऊपर क्या इतना अधिक विश्वास रखना संगत है ?

सविता ने कहा—नहीं जानती, क्या संगत है और क्या असंगत। बुद्धि से विचार करके इसे जानना भी नहीं चाहती। जो अपने अन्तर के भीतर एकान्त भाव से अनुभव किया है, वह आपसे कह भर दिया है।

विमल बाबू ने कहा—जानती हो सविता, तुम्हारे संस्पर्श अर्थात् लगाव में आकर मुझे क्या लाभ हुआ ? मैंने पहले पहल यह अनुभव किया कि अकल्याण के भीतर से भी परम कल्याण आकर जीवन को छूता है।

सविता ने कहा—यह बात मानती हूँ। अकल्याण के मार्ग में ही, लम्बी यात्रा से थक कर सन्ध्या को, तुम्हारे साथ अचानक साक्षात् हुआ था, विरुद्ध समय के बीच अवांछित परिचय। भाग्य से उस दिन तुम मुझे देखने आये थे।

विमल बाबू ने चोट खाकर अकृत्रिम दुःख के स्वर में कहा—तुम्हारी यह धारणा सत्य नहीं है सविता। जीवन के अज्ञात-पथ में मनुष्य के साथ मनुष्य का गहन परिचय कब किस दिन किस प्रकार कैसे हो जाता है, यह कोई नहीं जानता। बात मैंने अपनी ही ओर से कही थी। इतने दिन अपने भूत के अंश की ओर दृष्टि डालने से मुझे वितृष्णा हुई है; घृणा, क्षोभ और लज्जा हुई है। कितनी ही बार सोचा है कि जीवन के अशुचि अंश को अगर किसी उपाय से धोकर बेदाग बना दिया जा सकता ! स्मृति की पुस्तक से इन ग्लानिमय दिनों के पृष्ठ को फाड़ कर पृथक् किया जा सकता ! किन्तु आज सर्वप्रथम मन में आ रहा है कि भगवान् ने इस जीवन में उन दिनों को अमिट कालिमा अंकित करके मंगल ही किया है।

विस्मित सविता ने सिर उठाकर कहा—इसका अर्थ ?

विमल बाबू ने कहा—समझ नहीं पाई ? आज अपने लोभ के अपवित्र

स्पर्श से मैं ही तुम्हारी रक्षा कर सकूंगा। मैं तुमको अपने जीवन के इस कलंकित आंगन में लाकर खड़ा न कर सकूंगा। क्योंकि यहाँ तुम्हारा उपयुक्त आसन नहीं है।

सविता ने अस्पष्ट स्वर में कहा—सोने में दाग नहीं लगता दयामय। हम नारियां ही कलंक के कण-मात्र स्पर्श से चिरमलिन निकृष्ट धातु हो जाती हैं।

विमल बाबू ने गम्भीर कण्ठ से कहा—मैं यह जरा भी नहीं मानता। देखो सविता, तुम और जिसके लिए चाहे जो हो, मेरे जीवन में परम कल्याण-रूपिणी ही हो। यह बात झूठ नहीं है। जीवन में मेरा बहुत-सी विचित्र नारियों से साक्षात् हुआ है। किन्तु तुम्हारे साथ हुआ है संदर्शन। मेरे भीतर जो सत्य मनुष्य अब तक पड़ा सो रहा था, उसे तुमने ही धक्का देकर उस दिन जगा दिया, जिस दिन तुम्हारे स्वतः अभिजात प्रकृति के अपने स्वरूप को, उस विषण्ण, मुरझाये हुए, पश्चात्ताप-दग्ध, अथच सहज मर्यादा महिम रूप को पहली ही बार देखकर मैं पहचान सका। रमण बाबू के आमोद प्रमोद के बुलावे में देखने कुछ और ही गया था, लेकिन देखा उसके विपरीत। तुम्हारे जीवन के इतिहास ने सविता, आज मेरे अपने जीवन का 'क्षोभ' भुला दिया है। संसार में मेरी ही जैसी अनुभूति जिसे हुई है, ऐसा आदमी वही पहले पहल मैंने देखा—और वह हो तुम, जो अपनी प्रकृति से विच्छिन्न होकर अवांछित अन्य प्रकार का जीवन, अनिच्छा होने पर भी, स्वेच्छा से बिताने के लिए बाध्य हुई हो। यह अपने स्वभाव को दबाकर, पारिपार्श्विक अवस्था का अधिकार मिटाकर, आयु को किसी प्रकार समाप्ति की ओर खींच ले जाना ही तो है। अनुभूति के क्षेत्र में तुम और मैं, यहीं, एक ही स्थान पर आ खड़े हुए हैं। हो सकता है, इसी कारण तुम्हारे हृदय के साथ मेरी जो अन्तरंगता संभव न थी, वह केवल संभव ही नहीं—सहज भी हो गई।

सविता नीची दृष्टि किये सुन रही थी, अब भी वैसे ही वह नीचे नेत्र किए हुई मौन रही।

विमल बाबू धीर कण्ठ से कहने लगे—आज मेरे लिए जीवन की दिशा बदल गई है। मन की पुरानी धारणाओं के ऊपर जो बहुत दिनों की ढेर धूल जमा थी, वह बिल्कुल साफ हो रही है। बहुत लम्बे समय तक उपेक्षा से पड़े

हुए शीशे के ऊपर जमे हुए मैल ने उसकी जिस स्वच्छता को ढक रखा था, वह जैसे आज किसी नई गृहलक्ष्मी के यत्नपूर्वक साफ करने से एकदम निर्मल हो उठा है। आज सारी पृथ्वी मुझे बिलकुल नई जान पड़ रही है। यह यौवन का वेग नहीं है, देह की नस-नस के तरुण रक्त का चंचल नृत्य नहीं है। यह मेरे हिम-कठिन अन्तर्लोक में मूर्छित पड़ी हुई आत्मा का जागरण है। हृदय के कुहासे से ढके आकाश में नवचेतना का प्रथम सूर्योदय है।

सविता को यह कल्पना भी न थी कि स्वभाव से स्वल्पभाषी विमल बाबू इस प्रकार अपने हृदय की गहरी अनुभूतियों को भाषा में प्रकट कर सकते हैं। संसार में शायद सभी कुछ संभव है। इसीसे बहुत ही धीरे, प्रायः अस्पष्ट स्वगत उक्ति की तरह ही सविता कहने लगी—यह तो तुम्हारे मन की गढ़ी हुई मैं हूं। उसके साथ सत्य की जो मैं हूं उसका मेल कितना है, इसका पता तुमको नहीं है और मैं भी नहीं जानती। खैर, वह जानाजानी न हो, भगवान् करें, जैसा तुमने मुझे देखा है, वह तुम्हारे निकट मृगमरीचिका न हो।

२४

विमल बाबू जब राखाल को खोज रहे थे, उस समय वह कलकत्ते के बाहर था, रेणु और ब्रज बाबू को वृन्दावन पहुंचाने गया था। लौटकर जब वह विमल बाबू से मिला, तब उन्होंने उलाहना दिया कि एक दिन अपेक्षा करते तो मेरे साथ ब्रज बाबू का मिलन हो जाता, तुमने इसकी व्यवस्था क्यों नहीं की राजू ? तुमको तो मैंने चिट्ठी लिखी थी।

'वे लोग आपके मिलन को टालना चाहते थे, इसीलिए इतनी जल्दी चल दिये।'

'इसका कारण ?'

'सो तो मैं नहीं जानता। मगर हां, काका बाबू की अपेक्षा रेणु ही बहुत व्यस्त हो गई थी।'

'समझ गया।'

विमल बाबू कुछ देर चुप रहकर बोले—वृन्दावन में उन लोगों को कहां

रख आये हो ?

'गोविन्दजी के मंदिर के पास ही एक गली में। घर बड़ा है, उसमें अनेक किराएदार रहते हैं। इन लोगों के सोने के लिए दो कोठरियां ली हैं और रसोई के लिए थोड़ा-सा स्थान। किराया साधारण ही है।

विमल बाबू ने चिन्तित मुख से कहा--तुम्हारे सिवा तो उन लोगों को देखने सुनने वाला और कोई वहां है नहीं। मैं सोचता हूं कम-से-कम कुछ दिन के लिए भी इस समय तुम्हारा वृन्दावन में जाकर रहना आवश्यक है।

'लेकिन इसके फलस्वरूप मेरी यहां की जीविका चली जायगी।'

विमल बाबू सिर झुकाकर सोचने लगे।

कुछ समय यों ही चुपचाप कट गया। राखाल ने कहा—नहीं जानता, आप भाग्य को मानते हैं या नहीं, किन्तु मैं मानता हूं।

राखाल की बात का उत्तर न देकर विमल बाबू बोले—तुमने सुना होगा कि तारक हाईकोर्ट में वकालत करने लगा है। भविष्य में उन्नति करेगा ऐसा भी विश्वास है। वह बड़ा बनना चाहता है। यदि उसी के साथ रेणुका की शादी कर दी जाय तो भला कैसा रहे ?

राखाल विस्मित होकर केवल देखता ही रह गया।

विमल बाबू फिर कहने लगे—'तुम्हारी नई मां की यह इच्छा है।'

'लेकिन तारक ?' मीठे स्वर में राखाल ने पूछा।

'उससे अभी नहीं पूछा है। तुम्हारी नई-मां ने शायद उसे संकेत दिया हो।'

'आपका क्या विचार है ?'

'तारक के सहमत न होने का तो कोई कारण नहीं देखता। भली लड़की है। यह कभी कह सकते हो कि बाप गरीब है, लेकिन मां के पास जो कुछ भी सम्पत्ति है, रेणुका की ही है और फिर तारक तुम्हारी नई-मां पर श्रद्धा भी रखता है। उन्हीं के पास रहा है ऐसी दशा में न मानने का तो कोई कारण ही नहीं है।'

राखाल चुप रहा।

इसी समय विमल बाबू फिर बोले—'तुम्हें एक काम करना होगा

राजू ?'

'कौन-सा काम ?' राखाल ने पूछा।

'विवाह का प्रस्ताव तारक के सामने तुम्हें रखना होगा।'

'यह आप क्या कर रहे हैं और फिर रेणुका तो विवाह ही नहीं करना चाहती।'

'इसका दायित्व मुझ पर रहा। तुम तारक से पूछकर मुझे बतलाओ तो मैं वृन्दावन जाकर रेणुका को लिवा लाऊँगा।'

'लेकिन मुझे तो दोनों में से कोई भी शादी करने के लिए राजी होता दिखाई नहीं पड़ता।' राखाल ने कहा।

'तारक क्यों राजी नहीं होगा राजू!' आश्चर्य से विमल बाबू ने पूछा।

'इस बात को मैं समझा नहीं सकता, लेकिन मेरा विचार सच है।'

'तुम एक बार प्रयत्न तो करो राजू।'

'आपकी बात नहीं टालूँगा।' कहकर राखाल ने व्यथा से सिर झुका लिया।

× × ×

बुढ़िया नानी आज कई दिन से अस्वस्थ है। काम नहीं कर पाती, इसलिए अपने नाती को भेज रखा है, सब काम करने वाला चुस्त लड़का है। काम करते-करते मन ही मन गुनगुनाता रहता है। आज चार बजे जब इस लड़के ने आकर राखाल को जगाया तो वह अपनी आँखें मलता हुआ उठ कर बैठ गया। फिर स्मरण हो आया कि भोजन तो उसने आज किया ही नहीं। न जाने किस विचार-धारा में बहते-बहते निद्रा आ गई। घड़ी देखकर राखाल को अपने पर क्रोध आ गया। उसे जाने क्या हो गया है। घर द्वार, काम-काज, स्वास्थ्य किसी चीज का भी ध्यान नहीं। यहाँ तक कि खाने-पीने की भी चिन्ता नहीं। आखिर ऐसा क्यों? उस जैसे गरीब आदमी को इस प्रकार विचारों में चौबीस घन्टे भर के लिए परिश्रम करना आवश्यक है, वह जीवन के प्रति इतना उदासीन क्यों बना रहे? बार-बार इधर-उधर जाने से ट्यूशनें भी छूट गईं। सिर्फ एक बची है। वह भी इसलिए कि राखाल उन लोगों के लिए समय-असमय दूसरे काम भी कर देता है। उसका

सब लिखना पढ़ना छूट गया। नाटक मंडलियों के नाटक लिखना भी जाता रहा। बैंक या डाकखाने में एक पैसा भी न रहा। बनिया, हलवाई और दूध वाले का हिसाब शेष अवश्य है, लेकिन धोबी और दर्जी के बिल अभी चुकता नहीं हुए। राखाल मुंह धोकर बोला—'तनिक स्टोव जलाकर चाय का पानी तो चढ़ा दे, और तनिक नुक्कड़ वाली दूकान से जाकर कुछ गरम समोसे ले आ, चाय के साथ खाने के लिए।'

नीलू समोसे लेने चला गया और राखाल स्टोव के पास बैठकर चाय बनाने लगा। मन में विचार आया कि अगर यह सब झंझट न करके शारदा के पास जाता और कहता कि बेमौके नींद आ गई थी भोजन नहीं बना सका, तो सब काम हो जाता, कुछ कहने की आवश्यकता न पड़ती। सहसा कल्पना की शारदा राखाल के नेत्रों के आगे व्याकुल स्नेह की प्रतिमा साकार हो उठी। राखाल के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकला। नहीं, वहां जाना ठीक नहीं है! वह बेचारी इससे दुःखी होगी। राखाल यह अच्छी प्रकार जानता है कि अपने हाथों से देवता की सेवा करने के लिए शारदा कितनी उत्सुक रहती है।

× × ×

शारदा और सविता में बातचीत हो रही थी। सविता ने कहा—'अपनी सुनारपुर की बात सुनाओ शारदा।'

सिलाई करते-करते शारदा ने कहा—'मां, जिसने कभी एक बार आपको देखा है, उसे फिर यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि रेणुका आपकी बेटी है, सिर्फ शक्ल से ही वह आपकी बेटी नहीं है, बुद्धि, मर्यादा, शील और हृदय से भी वह बिल्कुल आपके ही समान है।'

'ऐसी बातें करना तुमने सीखा है शारदा? यह तो तुम्हारी अपनी बातें नहीं मालूम देतीं।' सविता ने कहा।

शारदा ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया।

सविता फिर कहने लगी—'रेणुका के सम्बन्ध में तुमने और किसी के साथ बातें की हैं। ऐसा मालूम पड़ रहा है।'

'हां, मरापुर में रेणुका के सम्बन्ध में देवता के साथ बातें हुई थीं।' संकोच के साथ शारदा ने कहा।

सविता ने हँसकर शारदा के सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा—'तुम बहुत बुद्धिमान लड़की हो, मैं जानती हूँ।'

शारदा ने उत्साहित होकर कहा—'सच बात है माँ, इतना भारी सादृश्य मैंने बहुत कम देखा है। रेणुका तो ऐसी लगती है, जैसे आपके ही साँचे में भगवान ने ढाला है।'

'नहीं, नहीं, ऐसी बात मत कहो शारदा! ईश्वर करे, मेरी तरह उसका कुछ भी न हो।' शंकित होकर सविता बोली।

'इस बात को छोड़िये, बाबू जी की बात बताऊँ!' शारदा ने कहा।

'अच्छा सुनाओ।' सविता ने कहा।

'बाबू जी बहुत भले आदमी हैं माँ, लेकिन संसार में रहते हुए भी वे संसार से उदासीन हैं। गोविन्द जी को लेकर ही पागल बने हुए हैं। देखने वाला हर कोई भी जान सकता है कि इस संसार में गोविन्द जी को छोड़कर और कोई भी वस्तु उन्हें प्रिय नहीं।'

'अपनी लड़की भी नहीं?' सविता ने पूछा।

'उन्होंने तो अपने हृदय का सब भाव, सब चिन्ताएं इष्टदेव के चरणों में ही अर्पण कर दी हैं—लड़की भी इसके बाहर नहीं है, ऐसा मालूम पड़ता है।' गम्भीरता के साथ शारदा ने कहा।

सविता पाषाण-मूर्ति के समान बैठी रही।

शारदा ने सान्त्वना दी—दुःखी होकर भी मनुष्य क्या कर सकता है? इससे तो आदमी ईश्वर के ऊपर ही भरोसा करके रहे इसी में भला है।'

'यह तुम नहीं समझ पाओगी बेटी! तुम संतान की माँ नहीं हो। संतान क्या है, इसे पुरुष नहीं समझ सकता। रेणुका के सम्बन्ध में मैं उनके समान निश्चिन्त होकर नहीं बैठ सकती। चौबीसों घंटे के गोविन्द गोविन्द ने तो घर-द्वार सब नष्ट कर दिया, व्यापार की समाप्ति कर दी। अब भी उन्हें बुद्धि नहीं आती। बेटी का मुंह देखकर भी धर्मान्धता नहीं जाती। आज तक मैं यह जानती थी कि मेरे समान पति संसार में और किसी स्त्री के न हैं और न होंगे लेकिन आज मानो मुझे भूल दिखाई पड़ी। अब मैं समझ गई हूँ कि मेरे पति के समान स्वयं सब कुछ समझने वाले पुरुष संसार में थोड़े ही होंगे। अपनी स्त्री

के प्रति, अपनी सन्तान के प्रति जो आदमी इस प्रकार अचेत और उदासीन रहता हो, उसे शादी करने की क्या आवश्यकता थी। क्या शादी भी अपने गोविन्द जी के लिए ही की थी? जिसे तुम उनका महत्व कहती हो वह एकदम इससे विपरीत है।

'किसका महत्व विपरीत है माँ?' राखाल ने घर में प्रवेश करते हुए पूछा।

सविता ने घूमकर उसकी तरफ देखा और शांत स्वर में बोली—'तुम्हारे बाबू जी का!'

पलभर में देखते-देखते राखाल का हँसमुख चेहरा गम्भीर हो गया।

यह देखकर सविता मुस्कराकर बोली—'हमारा राजू अपने बाबू जी की तनिक भी बुराई सहन नहीं कर सकता।'

'इसमें आश्चर्य की क्या बात है माँ? लेकिन संसार में कहीं उनकी बुराई भी हो सकती है। यह क्या महान् आश्चर्य की बात नहीं?' राजू ने कहा।

'राजू, मैं तेरे बाबू जी की बुराई नहीं करती, परन्तु आज···।' इतना कहते-कहते सविता मौन हो गई।'

'अब अधिक कुछ न कहिए माँ, मैं तो पुराना आदमी हूँ, आज की बातें मुझे मालूम नहीं और न कहना ही चाहता हूँ। जो कुछ पहले की बातें मालूम हैं—वे सब नष्ट-भ्रष्ट न हो जायँ, मुझे इसी की आशंका है।'

सविता फिर धीरे-धीरे बोली—'पागल लड़के! एक समय की बात कभी भी हर समय के लिए नहीं हो सकती और इस धारणा को बलपूर्वक रोके रहने का अर्थ है कि आँखें होते हुए भी आँखें बन्द कर अन्धे बने रहना। दुनिया का एकमात्र यही नियम है।' इतना कहते-कहते सविता के चेहरे पर गम्भीर स्नेह की छाया छा गई। शारदा की तरफ देखकर राखाल ने पूछा—'क्या तारक घर में है?'

'आज तो कचहरी नहीं है। शायद नीचे अपने कमरे में होंगे।'

'तारक से मुझे कुछ आवश्यक काम है। मैं जा रहा हूँ नई-माँ।' राखाल ने कहा।

'चाय पीकर जाओ राजू। शारदा, तुमने आज जो कचौड़ियाँ बनाई हैं उन्हें राजू को चाय के साथ दे दो।' सविता बोली।

'वह तो शायद यह खाना नहीं चाहेंगे माँ, खायेंगे भी तो पसन्द न आयेंगी। शारदा ने हँसकर कहा।

राखाल की तबियत ठीक नहीं थी। वर्ना शारदा की इस बात को लेकर उसे हराने के लिए राखाल बहुत-सी बातें सुनाता। मन दुःखी था इसलिए व्यथित कण्ठ से बोला—'नहीं, घर की बनी चीजें खाने की मेरी आदत नहीं है शारदा! मन नहीं हो रहा है। जिसके लिए तुमने बनाई हैं, उसी को वे कचौड़ियाँ खिला देना।'

विस्फारित नेत्रों से शारदा राखाल की ओर देखती रह गई और उसका वह उतरा-उतरा मुख राखाल की दृष्टि में पड़ गया। मन के अन्दर मानो वेदना जाग्रत हो उठी। फिर भी मुंह से बिना कुछ कहे कमरे से बाहर चला गया। सविता ने शारदा की तरफ देखकर स्नेह भरे स्वर में कहा—'उसकी बात से दुःख मत मानना शारदा! मुझसे अप्रसन्न होकर ही यह तुम्हें कड़ी बातें सुना गया है। आजकल उसका मन ठिकाने नहीं है बेटी!'

बिना कारण, बिना अपराध के ऐसी भर्त्सना पाकर शारदा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही थी। सविता की सान्त्वना पाकर अधिक नहीं रुका गया। रुकी हुई वेदना एकदम फूल उठी। सहसा झर-झर करके दोनों नेत्रों से जल गिरने लगा। आँसू बिना रोके, आँसुओं से भीगा मुख लिये शारदा व्यथित स्वर में बोली—'मैंने ऐसा क्या अपराध कर डाला है माँ! देवता चाहे किसी पर अप्रसन्न हो मुझी को छेद-छेदकर कटु बातें सुना जाते हैं!'

शारदा को अपने पास खींचकर सविता ने कहा—'वह तुम्हें बिल्कुल अपना समझता है शारदा। तुमसे सचमुच प्रेम करता है! उसको अपना कहने के लिए दुनिया में भला कहीं कोई है शारदा!' आँसू अभी तक नहीं रुके थे। रुदन भरे कण्ठ से, अभिमान के स्वर में बोली—'मेरी ही दुनिया में सब कोई बैठे हैं न माँ! मैं तो इस प्रकार जब तब चाहे किसी को बात का तीर नहीं मारती।'

'सबका स्वभाव एक-सा नहीं होता बेटी!' सविता ने हँसकर कहा।

'यह बात वे भली प्रकार जानते हैं कि मैं सब कुछ सहन कर सकती हूं लेकिन उनका व्यङ्ग किसी भी तरह सहन नहीं कर सकती। सब कुछ जानते

हुए उन्होंने मुझसे ऐसी-ऐसी बातें कहीं।' इतना कहकर शारदा आँखें पोंछते-पोंछते वहाँ से चल दी।

उधर तारक की बैठक में घुसकर राखाल ने देखा कि बड़ी-सी मेज के आगे कुर्सी पर बैठा हुआ तारक किसी मुकदमे के कागजात बड़े गौर से पढ़ रहा है। राखाल के जूतों की आवाज सुनकर सर उठाकर जब उसने देखा तो चकित होकर विस्मय भरे कण्ठ से बोला—'ओह! राखाल बाबू आप हैं!'

कुर्सी पर बैठते हुए राखाल ने कहा—'क्यों, क्या मुझे आना नहीं चाहिए था?'

'जरूर आना चाहिये था, तुम आते नहीं हो इसीलिए तो आश्चर्य कर रहा हूँ।'

'प्रायः आता तो रहता हूँ।'

'यह मैं जानता हूँ। लेकिन यह आना मेरे पास नहीं होता, अन्दर ही आते जाते हो।'

'अन्दर से कोई बुलाता है, इसलिए अन्दर जाता हूँ।' राखाल ने हँसकर कहा।

'तब क्या आज इस बैठक के बुलाने से आये हो?'

'नहीं, आज बैठक से मुझे कुछ काम है।'

'किसी मुकदमे का काम है?'

'काम तो जरूर है। लेकिन मुकदमा नहीं।'

तारक हँसने लगा। राखाल बोला—'सुना है तुम्हारी वकालत अच्छी चल रही है।'

'किसने कहा तुमसे?' तारक ने पूछा।

'सुन लिया है! एक दिन दावत करनी पड़ेगी।'

तारक ने कहा—'क्या पागल हो गये हो! अभी तो केवल मुझे एक 'सोनियर' की जो कुछ बेगार होती है, उसी को गधे के समान ढोना पड़ता है।'

'ऐसी बात है! तब तो विमल बाबू ने गलत ही कहा।'

'विमल बाबू ने तुमसे यह बात कही थी ?'

'हां।'

'उनसे तुम्हारा मिलाप कब हुआ है ? वे क्या कहते थे सुनाओ तो।'

'बहुत सी बातें कहते थे। सुनने के लिए समय है ?' राखाल ने हँसकर पूछा।

'है क्यों नहीं, तुम बताओ तो।'

'तो चलो, सामने वाले बगीचे में बैठकर बातचीत करेंगे।'

जल्दी-जल्दी कागजात बांधते हुए तारक बोला—'तनिक और ठहरो, चाय पीकर चलेंगे।'

'लेकिन मैं तो अभी अन्दर चाय न पीने को कहकर आया हूं।'

'चाय के मामले में 'हां' या 'न' एक ही है।'

बदन पर कुर्ता और पैरों में चप्पल डाले तारक अन्दर से लौट आया। उसके पीछे-पीछे नौकरानी 'ट्रे' में चाय और दो प्लेटों में कचौड़ियां लिये चली आई। राखाल ने बिना कुछ बोले चाय का प्याला उठा लिया और कचौड़ियों वाला प्लेट अपनी ओर खींच कर खाना शुरू कर दिया और देखते-देखते ही खाली करके बोला—'तारक, अपनी चाय वाली नौकरानी को एक बार बुला दो।'

चाय का घूंट पीते-पीते तारक ने आवाज दी—'शिबू की मां ! जरा यहां तो आओ।'

नौकरानी लौट कर आई, राखाल ने उससे कहा—'अन्दर जाकर कहो राजू बाबू के लिए और थोड़ी-सी कचौड़ियां चाहिए।'

नौकरानी के चले जाने पर तारक खाते-खाते हँसकर बोला—'राजू बाबू और कचौड़ियां खाना चाहते हैं, यह सुनकर शायद घर के अन्दर से एक टोकरी भर कर कचौड़ियां आ जायेंगी।'

दूसरे प्याले में चुस्की लगाकर राखाल ने कहा—'और जब यह मालूम होगा कि तारक बाबू और कचौड़ियां खाना चाहते हैं, यह सुनकर शायद एक गाड़ी कचौड़ियां आ जायेंगी।'

'लेकिन कचौड़ियां तो आयेंगी ही नहीं। केवल यह सूचना आयेगी कि

कचौड़ियाँ समाप्त हो गईं और फिर अभी बाजार से गरम कचौड़ियाँ मँगाकर भेजी जायँगी।'

हँसकर राखाल बोला'—ऐसी बात है !'

तभी आधा घूंघट काढ़े एक अधेड़ नौकरानी ने आकर बड़े संकोच के साथ एक प्लेट गरम कचौड़ियाँ लाकर राखाल के आगे रख दीं।

'लो, देख लो। ठीक दर्जन के हिसाब से आई हैं।'

राखाल धीरे से हँसकर शिबू की माँ से बोला—'मैं तो राक्षस नहीं, मनुष्य हूँ। इतनी ढेर की ढेर कचौड़ियाँ क्यों ले आई ?—लेकिन अब जब ले आई हो, तो मैं सभी खा लूंगा। लेकिन कचौड़ी तुम्हें बनानी नहीं आती। इतनी मिर्च भर दी है कि सारे पेट में आग-सी लग गई।'

'कचौड़ियाँ मैंने नहीं बनाई, दीदी ने बनाई है !' लजाकर दासी बोली।

× × ×

तारक के साथ जब राखाल पार्क में आकर बैठा तो दिन ढलने लगा था। तारक बैठते हुए बोला—'आज बहुत दिनों के बाद इस तरह तुम्हारे साथ पार्क में आकर बैठना हुआ है।' उत्तर में राखाल ने सूखी हँसी हँस दी। तारक ने इसे लक्ष्य करके थोड़ा अनुभव तो किया लेकिन बात बदल कर बोला—'हाँ, अब बताओ। विमल बाबू से मेरे विषय में तुमने क्या सुना ?'

'यही सुना था कि तुम बहुत अच्छे ढंग से काम करने वाले आदमी हो। तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। तुम्हारे जैसे परिश्रमी और उद्योगी युवक के जीवन में उन्नति अवश्य होगी।' राखाल ने व्यंग बिल्कुल नहीं किया था। लेकिन उसके बोलने के भाव से तारक ने इस बात से यही समझा कि वह उसकी हँसी उड़ा रहा है। अन्दर ही अन्दर जल उठा, बाहर से शान्त-कण्ठ से बोला—'तुम्हें बुलाकर एकाएक विमल बाबू के इन बातों के कहने का क्या अभिप्राय था ?'

'यह सब मैं कैसे जान सकता हूँ ?'

गम्भीर होकर तारक ने पूछा—'तुम्हें अभी और कुछ कहना है ?'

'हाँ, कहना है।' राखाल ने कहा।

'कहो न। सन्ध्या को मस्त होकर पार्क में बैठकर वायुसेवन के योग्य

कोई बड़ा व्यक्ति मैं नहीं हूँ। तुम अपनी आँखों से अभी देख आये हो कि काम बीच में बन्द करके तुम्हारे साथ चला आया हूँ।'

तारक की इस बात पर हँसकर राखाल ने कहा—'जिनका वकालत पेशा हो, उन लोगों को इतनी अधीरता नहीं होनी चाहिए।' कुछ देर रुक कर फिर बोला—'एक बहुत ही गम्भीर विषय में राय लेने के लिए तुम्हें यहाँ बुलाकर लाया हूँ।'

तारक मौन साधे बैठा रहा।

'तुम्हारी शादी का प्रस्ताव लेकर आया हूँ।'

'व्यंग कर रहे हो राखाल ?'

'व्यंग नहीं, वाकई मैं तुम्हारी शादी का प्रस्ताव लेकर आया हूँ।'

'तो फिर उस प्रस्ताव को आगे न बढ़ाकर यहीं समाप्त कर दो तो अच्छा है। क्योंकि शादी करने की मेरी इच्छा नहीं है और परिस्थिति भी ऐसी नहीं है।'

'यदि इस शादी से तुम्हारी परिस्थिति सुधर सके, तब ?'

'तब भी नहीं। क्योंकि जब तक मैं स्वयं अपने पैरों पर खड़ा न हो जाऊँ तब तक शादी का उत्तरदायित्व नहीं पसन्द करता।'

'यदि इस शादी से धनोपार्जन में भी शीघ्रता से उन्नति हो ? तब तो तुम्हें उज्र न होगा ?'

'ऐसी कौन लड़की है ? किसी वकील या बैरिस्टर की लड़की ?'

'नहीं, बिल्कुल दरिद्र-निराश्रय आदमी की लड़की है।'

'लेकिन तुमने तो अभी कहा था कि—इस शादी से···।'

'हाँ ठीक ही कह रहा था। गरीब की लड़की से शादी करने पर धन मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मान लो, वह लड़की अपने धनवान आत्मीय व्यक्ति की एकमात्र उत्तराधिकारिणी हो।'

'फिर भी वह लड़की है कौन ?'

'पहिले यह बताओ कि तुम सहमत हो या नहीं ?'

'लड़की का परिचय बिना मालूम किए नहीं बता सकता।'

'क्या परिचय मालूम करना चाहते हो—सवाल करो, लड़की के वंश कुल

का परिचय, रूप, गुण और योग्यता ?'

'पुरुष अपनी भावी पत्नी की सभी बातें मालूम करना चाहता है।'

'बहुत सुन्दर है। गुणवती, बुद्धिमती और सुशिक्षित है। उच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुई। पिता किसी समय में धनी आदमी थे, लेकिन आज दिन हाथ में पैसा नहीं है। पिता का धन कुछ न होने पर भी लड़की अपनी माता का सब धन पायेगी। वह धन भी कोई छोटा-मोटा नहीं है। कुल, वर्ण गोत्र के अनुसार तुम लोगों में उसका विवाह हो सकता है। हर प्रकार से वह किसी भी योग्य लड़के से विवाह करने के योग्य है।'

'लड़की के माता-पिता का नाम-पता और पेशा, क्या मैं जान सकता हूं ?'

'क्या इसी के ऊपर तुम्हारी 'हां' 'न' निर्भर है ?'

'न' और 'हां' पूरे नहीं तो कुछ अंशों में तो अवश्य इसी पर निर्भर है।'

राखाल कुछ देर चुप रहकर धीरे-धीरे बोला—'लड़की के पिता तुम्हारे लिए अपरिचित नहीं हैं। ब्रज बाबू की कन्या के विषय में ही कह रहा हूं।'

तारक चौंक पड़ा। कहने लगा—'यह क्या ? तुम कौन-सी लड़की के सम्बन्ध में कह रहे हो ?'

'रेणुका के सम्बन्ध में।'

'तुम पागल तो नहीं हो गये हो राखाल ?'

'पागल हो गया होता तभी ठीक था।'

'तुम्हारे पागल होने में शेष ही क्या बचा है ? पागल न होते तो क्या नई-मां की कन्या के साथ मेरी शादी का प्रस्ताव लेकर आते ?'

'लेकिन इसमें तुम्हारे इस प्रकार उत्तेजित होने की क्या बात है ?' राखाल ने कहा।

'बहुत बड़ी बात है। यह सब तुम्हारा रचा हुआ षड्यन्त्र है, मालूम पड़ता है, तुमने नई-मां को भी यही राय दी है।'

'नहीं, उन्हें मेरी राय की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने तो बहुत पहिले से ही तुम्हें चुन रक्खा है। मुझे यह बात मालूम भी न थी।' राखाल ने कहा।

'ऐसा नहीं हो सकता, झूठ बात है।'

'तारक ! तुम जानते हो कि मैं झूठ बात कभी नहीं कहता।'

'तुम्हीं रेणुका से शादी क्यों नहीं कर लेते ?'

'मैं उसके योग्य नहीं हूं—यह नई-मां को मालूम है।' राखाल ने उत्तर दिया।

'और शायद मैं अभागा ही हर प्रकार से उनकी कन्या के लिए योग्य वर हूं !'

'तुम इतना पढ़े-लिखे, परीक्षाएं पास विद्वान् युवक हो। बुद्धिमान हो, स्वस्थ हो, चरित्रवान हो।'

'तुमने इतने बाण मारने से पहले यह नहीं विचार किया कि लड़की को मैं अपने परिवार में पत्नी बनाकर नहीं रख सकता ? गरीब होने का अर्थ इज्जत छोड़ना तो नहीं है।'

राखाल ने खिन्न स्वर में पुकारा—'तारक ! तारक !'

'सत्य बात कहने से क्यों डरते हो ? क्या तुम स्वयं इस लड़की को शादी करके घर ला सकते थे ?'

एकटक दृष्टि से तारक की तरफ देखकर राखाल बोला—'उसी लड़की की मां के आश्रय में रहकर उन्हीं की सब सहायता लेकर अपना भविष्य बनाते हुए तुम्हारे वंश की मर्यादा और कुल गौरव उज्ज्वल हो उठा है। तारक, अपने मनुष्यत्व की हत्या करके यदि तुम अपनी उन्नति का रास्ता बना रहे हो तो यह अवश्य समझ लो कि वह रास्ता तुम्हें अवनति के गड्ढे में ही ले जायगा।'

झुंझला कर तारक बोला—'चुप ! मुंह संभाल कर बोलो राखाल ! मैं इन लोगों का हिसाब करके एक-एक पैसा लौटा दूंगा। इसी शर्त पर कर्ज के रूप में मैंने सहायता स्वीकार की है।'

'अच्छा, यह बात है ! तब फिर क्या बात है ? जिस दिन इन लोगों का कर्ज चुका दोगे उसी दिन शायद कृतज्ञता का सारा भार समाप्त हो जायगा। थोड़ा बहुत ब्याज और दे देना।'

रूखे स्वर में तारक बोला—'देखो राखाल, इन बातों को लेकर मेरे साथ

मजाक मत करो। जिस काम को स्वयं नहीं कर सकते हो, उसी काम को करने के लिए दूसरे से कहने तुम्हें लज्जा नहीं लगती ?'

इस बात का उत्तर न देकर राखाल ने कहा—'मैं देखता हूँ तुम्हारे विषय में मैंने जो कल्पना की थी, वह ठीक ही थी। मैं तो पहले से ही जानता था कि तुम इसी प्रकार की कोई बात कहोगे। फिर भी जब मैंने यह सुना कि नई-मां ने तुम्हें इस विषय में पहिले ही थोड़ा बहुत बतला दिया है तो मुझे आशा हो गई थी।'

तारक ने खड़े होकर कहा—'नई-मां ने कभी भी मुझसे इस प्रकार की बात नहीं कही! उन्हें मालूम है, तारक राखाल नहीं है। इस प्रकार का प्रस्ताव राखाल के आगे रख सकती हैं, तारक के आगे नहीं।'

उत्तर सुने बिना तारक तेजी से चला गया।

२५

विमल बाबू को अन्तिम बार सिंगापुर गये करीब डेढ़ साल हो गया, उसके बाद कलकत्ता फिर नहीं लौटे। इन दोनों वर्षों में राखाल को लगभग छः-सात बार दौड़-दौड़कर वृन्दावन जाना पड़ा। इससे उसके काम-धाम में बहुत हानि हुई। दिन-दिन वह ऋण के जाल में जकड़ता जा रहा है और छुटकारे का कोई उपाय नहीं। स्वामी पुत्री की आर्थिक सहायता करने के लिए सविता ने हजारों असफल प्रयत्न किये, जिसके लिए रमण बाबू की सहायता से जो सवा लाख रुपये की सम्पत्ति बहुत थोड़े दामों में सविता ने खरीदी थी। उन्होंने जब इस सम्पत्ति का स्पर्श तक न किया और भविष्य में भी किसी दिन स्पर्श करने की आशा न दिखाई दी तो सविता का दिल चकनाचूर हो गया। सील मोहर लगा जेवरों वाला बक्स बैंक में रेणुका के नाम से जमा कर दिया था। आज वह कल्पना भी स्वप्न हो गई। सविता ने सोचा था कि यह सम्पत्ति दहेज के रूप में उसे देगी। यह सम्पत्ति और किसी की नहीं, रेणुका के पिता की ही थी। उनकी यह इच्छा थी कि उनकी कन्या पूर्ण दाम्पत्य का सौभाग्य लेकर सुखी होगी और भरे पूरे घर में रहकर सुखी जीवन

व्यतीत करेगी। लेकिन जिसका भाग्य फूटा हो, उसकी अभिलाषाएं सर्वदा नष्ट ही होती देखी गई हैं। आज इतने दिनों के बाद, सविता यह बात निश्चित रूप से जान सकी हैं कि पति और बेटी के जीवन में उनका कहीं तिलमात्र भी स्थान नहीं है। पर हाय, वह स्नेह का पात्र कहां है ?

आज शाम की डाक से एक पत्र मिला, यह पत्र विमल बाबू का था। उसमें लिखा था—

'सविता ! शारदा बेटी के छोटे से पत्र से मुझे पता चला कि तुम्हारा स्वास्थ्य खराब हो गया है। इस तरह तुम किसी दिन जरूर चारपाई पकड़ लोगी। बिगड़े स्वास्थ्य, अकर्मण्य जीवन बिताने का कष्ट मौत से भी बढ़कर होता है। तुम्हारी यही दशा रही तो आगे चलकर तुम्हें अत्यन्त कष्टकर जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। इच्छा के विपरीत प्रयत्न करना मेरा स्वभाव नहीं है। इसीलिए तुम्हारी इच्छा के ऊपर अपनी इच्छा प्रकट करते हुए मैं कुण्ठित हो रहा हूं। जीवित रहने वाले आदमी के लिए स्वास्थ्य कितना आवश्यक है—यह भी भूल गई। मर्म वेदना से अपनी सुध-बुध खोनी अच्छी नहीं। भूल करके आदमी अपने आप ही यह समझ जाता है। लेकिन तब तक इतनी देरी हो चुकती है कि फिर कोई उपाय ही शेष नहीं रहता। इसीलिए अनुरोध करता हूं कि शरीर के प्रति लापरवाही मत करना।'

पत्र के अंत में लिखा था—'तारक अपनी शादी की बात शायद तुम्हें बतलाये। इस शादी के विषय में तुम्हारा क्या विचार है ? मेरी सम्मति और आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करके उसने पत्र लिखा है। लड़की तारक के सीनियर वकील शिवशंकर बाबू की भतीजी है। यह विवाह उसकी वकालत की उन्नति में सहायक होगा...।'

सविता ने एक लम्बी सांस खींचकर पत्र एक ओर रख दिया और फिर अपने काम में लग गई। मन एकाएक रो उठा। शाम को जब शारदा महिला शिक्षा-सदन से लौटकर आई तो सविता ने उससे कहा—'एक शुभ समाचार सुना है शारदा ! तुम्हारे तारक की शादी होगी।'

'कब होगी मां ? कहां से होगी ? लड़की देखने में कैसी है ?'

'यह सब तो नहीं मालूम बेटी, सुना है, तारक के सीनियर वकील शिव-

शंकर बाबू की भतीजी है।'

'यह क्या ? आपको कुछ भी नहीं मालूम ? फिर मालूम कैसे होगा ?'

'समय आने पर सब मालूम हो जाएगा बेटी, मैंने तो अभी सिंगापुर से सूचना पाई है।' सविता हंसकर बोली।

'कैसे अजीब आदमी हैं तारक बाबू।' उदास चेहरे से शारदा ने कहा।

'वह मेरा बड़ा शर्मीला बेटा है। उसे दोष मत दो। विवाह की तैयारी करो।'

शारदा निरुत्तर होकर घर से बाहर हो गई। डेढ़ साल से सविता ने शारदा को एक नारी-शिक्षालय में भरती करा दिया है। वहां शारदा लिखना पढ़ना, शिल्प कला, बच्चों का पालन, सेवा-शुश्रूषा इत्यादि सीखती है। नौ बजे रोज स्कूल जाती है और पाँच बजे शाम को लौट आती है। सविता उसके लिए भोजन लिए बैठी रहती है। तारक के साथ भी यही हाल है। उसके कचहरी से लौटने के पहले ही उसके विश्राम करने का और जलपान करने का प्रबन्ध अपने हाथों से किए बिना उन्हें सन्तोष नहीं होता। तारक रोकता, पर वह जैसे सुन ही नहीं पाती। शारदा कहती है—'मां, आपकी सेवा करने के लिए मैं आपके पास आई थी पर आपने उल्टी ही मेरी सेवा अपने हाथों में ले ली यह मुझसे सहन नहीं हो सकता।'

सविता हंसकर कहती है—'बेटी, मुझे इसमें खुशी होती है। अपने पैरों पर खड़े होने का सहारा न होने पर नारी के लिए दुःखों का ठिकाना नहीं रहता, तुम्हें पढ़ा-लिखाकर अपना सहारा बनाना है।' उस दिन रात को भोजन करते अचानक ही सविता उससे पूछ बैठी—'तुम शादी कर रहे हो तारक ?'

तारक ने विस्मय के साथ पूछा—'आपसे किसने कहा ?'

'मेरे पास सिंगापुर से पत्र आया है।' सविता ने हँसकर कहा।

'हमारे घर की शादी की सूचना हमें समुद्र पार से मिली है।' शारदा ने कहा।

शारदा के इस हास्य से तारक का हृदय जल उठा, लेकिन प्रकट कैसे करे ? सविता की तरफ देखकर कहा—'शिवशंकर बाबू अपनी भतीजी के लिए मेरे पीछे पड़े हैं। उन्हें मैंने निश्चित रूप से जवाब नहीं दिया है। अभी तक

किसी से बात भी नहीं की। केवल विमल बाबू को परामर्श के लिए लिखा था।

'यह संबंध तो तुम्हारे लिए हर तरह से ठीक ही है। ऐसे भले ससुर भाग्य से ही मिलते हैं। लड़की नापसन्द नहीं है तो शुभ काम में देरी क्यों कर रहे हो ?'

तारक संकुचित होकर बोला—'लेकिन शादी की कुछ अड़चनों के कारण जी चाहता है मना कर दूं।

'कैसी अड़चनें ?' सविता ने कहा।

शारदा के चेहरे पर अविश्वासपूर्ण हँसी आ गई। बोली—'माँ, मैं ऊपर जा रही हूं।'

शारदा ऊपर चली गई। तारक ने कहा—'शिवशंकर बाबू मेरे साथ अपनी भतीजी का विवाह करने के लिए बहुत उत्सुक हैं। पर उन्होंने कई शर्तें लगा रखी हैं। हालांकि उन्हीं की जिम्मेदारी से मैंने इतने थोड़े दिनों में इतना नाम पा लिया है और आगे उन्हीं की सहायता से मेरी उन्नति होने की आशा है···।' लेकिन तारक आधी बात कहकर चुप रह गया।

सविता उसकी तरफ प्रसन्नमय नेत्रों से ताकती रही।

थोड़ी देर ठहरकर फिर वह धीरे-धीरे बोला—'शिवशंकर बाबू की सबसे पहली और सबसे बड़ी शर्त यह है कि शादी के बाद कम-से-कम एक वर्ष तक मुझे उनके पास ही जाकर रहना पड़ेगा।'

'ऐसा क्यों ?'

'लड़की के पिता नहीं है। शिवशंकर बाबू के कोई अपनी कन्या नहीं है। इसीलिए···।'

'जान गई, भतीजी को ही बेटी करके पालापोसा है। शायद उसे अपने पास से दूर नहीं करना चाहते।'

'हां, उसे बेटी से अधिक स्नेह करते हैं। मुझसे कहा कि तुम यदि मेरे घर आकर रहोगे तो तुम्हें अपने काम में बहुत-सी सुविधाएं मिलेंगी। फिर कुछ दिन के बाद तुम्हारा पृथक मकान बनवा दूंगा।'

'इसमें तुम्हें क्या असुविधा है ?'

'असुविधा मेरे लिए कुछ भी नहीं है, यह कहना ठीक नहीं, बल्कि मुझे तो और सहायता मिलेगी। लेकिन मैं वहाँ कैसे जा सकता हूँ माँ ? आपकी देखभाल'''।'

'अच्छा, ऐसी बात है! लेकिन मेरे विषय में तुम कुछ चिन्ता न करो बेटा, मैं तो आज सवेरे ही सोच रही थी कि कुछ दिन कहीं बाहर ही रह आऊं, जीवन में आज तक तीर्थ नहीं कर सकी हूँ। सोचा था, अब तीर्थ कर आऊं।' सविता हँसकर बोली।

'अकेले ही जाओगी ?'

'यदि मैं गई तो शारदा को भी साथ लेती जाऊंगी, न होगा तो स्कूल के होस्टल में ही उसको भर्ती कर दूंगी।'

'कब लौटोगी ?'

'अब कलकत्ते में लौटकर आने की आशा नहीं है। अगर उस ओर कोई जगह पसन्द आई तो वहीं एक छोटा-सा मकान खरीद कर रहूँगी।' सांस भर कर सविता बोली।

तारक चुप बैठा रहा।

सविता ने कहा—'शादी पक्की कर लो।'

'कुछ सोच-विचार लूं।' तारक ने कहा।

उसी रात को जब सविता पलंग पर लेटी और शारदा मसहरी को चारों तरफ से ठीक कर रही थी तो सहसा वह शारदा से पूछ बैठी—'शारदा बेटी, तुम्हारी पाठशाला की परीक्षा कब शुरू होगी ?'

'अभी तो ढाई महीना है।'

'कुछ दिनों के लिए मैं तीर्थ-भ्रमण करने जाना चाहती हूँ—तुम मेरे साथ चलोगी ?'

शारदा ने उत्साह भरे कण्ठ से कहा—'हां-हां, जरूर चलूंगी। काशी को छोड़कर मैंने तो आज तक कोई तीर्थ नहीं देखा। गया जी एक बार जरूर गई थी, लेकिन तब बहुत छोटी थी। हम लोग कब जायेंगे माँ ?'

'तारक की शादी के बाद कलकत्ता सदा के लिए छोड़ जाने की बात सोच रही हूँ।'

'मुझे तो अपने साथ ही रखिएगा न ?'

'नहीं बेटी, तुम्हें कलकत्ते लौट आना होगा।'

'क्यों माँ ?' शारदा का स्वर व्यथा से भरा था।

तुम्हारी पढ़ाई अभी पूरी नहीं हुई। पढ़ाई पूरी करके मेरे पास आ जाना।

यह सुनकर शारदा उठ खड़ी हुई न जाने क्या सोचती रही, फिर मलिन स्वर से बोली—'मेरे लिए तीर्थ भ्रमण आवश्यक नहीं है माँ।'

'क्यों ? देश-देशान्तर में भ्रमण करने से बहुत कुछ देखने को मिलेगा, बहुत कुछ सीख जाओगी।'

'नहीं माँ, मैं नहीं जाऊँगी। यदि वे लोग मुझे देख लें !'

'कौन लोग ?'

'मेरे मायके के, पिता के घर के लोग।'

उसकी बात समझ कर सविता ने कहा—'तो फिर मत जाना। यहीं रह-कर लिखाई-पढ़ाई करना।'

'आपको छोड़कर रहने का मेरा साहस नहीं हो रहा है माँ, होस्टल में मुझे अकेली छोड़ते हुए आपको भय नहीं मालूम होता ?'

'भय किसका ? यहाँ तो तुम्हारी जैसी कितनी ही लड़कियाँ रहती हैं। राजू कलकत्ते में है। उससे कह जाऊँगी, तुम्हारी खोज खबर लेता रहेगा। जब किसी वस्तु की आवश्यकता हो, उससे कह देना।'

अँधियारे मकान में सविता की चारपाई के पास खड़ी-खड़ी शारदा अस्पष्ट स्वर में पुकार उठी—'माँ !'

'क्या है शारदा, मैं तो जाग रही हूँ।'

'आज मुझे अपनी सारी कहानी आप से कहने की इच्छा हो रही है !'

'रात बहुत हो गयी बेटी, फिर किसी समय कहना। अब सो जाओ।'

'जा तो रही हूँ—माँ, मैं ग्यारह वर्ष की आयु में विधवा हो गई थी। ससुराल फिर नहीं गई। बहुत छोटी थी तभी माँ मर गई। पिता जी ने दूसरी शादी कर ली···।'

बीच में सविता बोली—'तुम्हें कुछ सुनाने की आवश्यकता नहीं शारदा,

मुझे सब मालूम है।'

अगले दिन सविता ने विमल बाबू को यह पत्र लिखा—कहीं बहुत दूर चले जाने के लिए मेरा मन दिन रात बेचैन हो रहा है। बहुत सोच-विचार के बाद मैंने तीर्थाटन करने का निश्चय किया है। कलकत्ते फिर लौटने का मन नहीं है। मन हो रहा है, निरुद्देश होकर घूमते-घूमते जहां जिस स्थान पर मन लगे, वहीं रह जाऊँ। तारक के भावी ससुर उसे अपने पास ही रखना चाहते हैं। वकालत में सहायता देने के लिए और आगे चलकर उसका घर बसा देने के लिए उत्तरदायित्व लेने को तैयार हैं। मैंने तारक को इस व्यवस्था के लिए राय दे दी है। शारदा पढ़ाई समाप्त होने तक पाठशाला के होस्टल में रहेगी। पढ़ाई समाप्त करके यदि इच्छा हुई तो मेरे पास आ सकती है। अपने राजू का कुछ प्रबन्ध नहीं कर पाई हूं। वह कुछ दिन से काफी कर्ज में फंसा हुआ है। मेरी या किसी दूसरे की सहायता लेना इसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं। उससे अनुरोध करने का भी मेरा साहस नहीं पड़ता। राजू को मैं अपने साथ ले जाऊँ इसका भी कोई मार्ग नहीं है। क्योंकि उसे बार-बार वृन्दावन जाना पड़ता है। कब उसे वृन्दावन बुला लिया जाय, पता नहीं। तारक को अदालत का काम छोड़ना असम्भव है, यह तुम जानते हो। इसीलिए पुराने दरबान और शिबू की मां को साथ ले जाना है। कुछ दिन तो इधर-उधर घूमूंगी, इसके बाद किसी एक स्थान पर जम कर रहूंगी।'

उस दिन पाठशाला की किसी कारण से छुट्टी हो गई। शारदा दोपहर के एक बजे ही लौट आई। सविता उस समय दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर गई हुई थीं। शारदा अकेली घर में बैठकर इतिहास की किताब पढ़ने में लग गई। इतने में ही द्वार से पुकार आई—'नई-मां!' शारदा ने सुनकर द्वार खोल दिया। आने वाला व्यक्ति वह राखाल था।

'यह क्या बात? आज तुम्हारी छुट्टी थी क्या?'

'नहीं तो, लेकिन छुट्टी हो गई। आप आज यहां आयेंगे इसी कारण।' शारदा ने व्यंग की हंसी हंसकर कहा।

'इस प्रकार की बातें करते तुम्हें शर्म नहीं आती?' गम्भीरतापूर्वक राखाल ने कहा।

'जरा भी नहीं।' मुस्कुरा कर शारदा ने कहा।

'नई-मां क्या कर रही हैं ? उनसे मुझे कुछ आवश्यक काम है।' सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते राखाल ने कहा।

'उनसे मिलने के लिए तो शाम तक रुकना होगा।'

'क्या वे घर पर नहीं हैं ?'

'आज उनका व्रत है। वह दक्षिणेश्वर दर्शन करने गई हैं।'

'आज कौन-सा व्रत है ?'

'यहां तो कुछ बतलाया नहीं। यही कहा कि व्रत है।'

'इतने व्रत उपवास जाने कहाँ से चले आते हैं !'

'लेकिन मैं इसका कारण जानती हूं, देवता।'

'बतलाओ न !' आश्चर्य से राखाल ने पूछा।

'आज रेणुका की सालगिरह है।'

'ठीक बात है। शायद तुमसे मां ने बतलाया होगा।'

शारदा ने कहा—'सिर्फ इतना ही नहीं, आज के दिन मां गरीब दुखियों को दान भी देती हैं। रुपये-पैसे, नये कपड़े, कम्बल अलवान यह सभी तो देती ही हैं, इसके अतिरिक्त अपनी पसन्द की सुन्दर-सुन्दर साड़ियां, रंगीन धोतियां, ब्लाउज, कुर्त्ती यह सब खरीद लाकर भिखारिनी का लड़कियों को दे देती हैं। घर पर नहीं बांटतीं और कहीं जाकर बांट आती हैं। जैसे कालीघाट है, दक्षिणेश्वर है, गंगाघाट है। ऐसी ही किसी जगह।'

राखाल कुछ नहीं बोला। उदास मन से जाने क्या सोचता रहा।

'क्या आपने सुना है कि मां कलकत्ते का घर सदा के लिए छोड़कर और किसी जगह जा रही हैं ?' शारदा ने कहा।

'कहाँ जा रही हैं ?' राखाल ने पूछा।

'पहले तीर्थ करेंगी और फिर कहीं किसी स्थान पर जाकर रहने लगेंगी।'

'कब जायेंगी ?' राखाल ने पूछा।

'तारक की शादी हो जाने के बाद।'

'तारक की शादी ? कहाँ से ?' राखाल ने विस्मित होकर पूछा।

शारदा ने खोलकर सब कथा सुना दी।

राखाल ने कहा—'तारक क्या घर-जमाई बनने को सहमत हो गया ?'

'केवल दो वर्ष के लिए ! इसके पश्चात शिव बाबू, उनके श्वसुर, उनके लिए अलग घर देकर उनकी गृहस्थी बसा देंगे।'

राखाल ने हँसकर कहा—'फिर तो समझो तारक को राजकुमारी ही नहीं आधा राज्य भी मिलेगा।'

'यह सुनकर आपको दुःख अवश्य हो रहा होगा, देवता !' शारदा हँसी के स्वर में बोली।

राखाल ने इस व्यंग का उत्तर नहीं दिया। खोया खोया-सा जाने क्या सोचने लगा।

'आप भी शादी क्यों नहीं कर लेते देवता ?' शारदा ने विनती के स्वर में कहा।

यह सुनकर राखाल कहकहा मार कर हँस पड़ा और फिर बोला—'क्या तारक का मुकाबला करने को शादी कर लूं शारदा ?'

शारदा ने कहा—'इसमें मुकाबले की क्या बात है ? क्या जीवन भर इस प्रकार होटल में ही खाते रहोगे ? गृहस्थी बसाने का मन ही नहीं है आपका ?'

'मन होने से ही क्या हर व्यक्ति गृहस्थी बसा सकता है, शारदा ?'

राखाल तनिक अनमना-सा होकर बोला—'क्या यह सत्य नहीं है कि एक दरिद्र दुखिया होते हुए भी, अभाव होते हुए भी, एक व्यक्ति गृहस्थी बसाने में सफल होता है, और दूसरा धनी होने पर भी नहीं बसा पाता। अपनी ही तरफ विचार करके देखो। तुम्हारे प्रयत्न में कोई कमी नहीं रही, लेकिन क्या तुम गृहस्थी बसा सकी हो ?'

'मेरी बात रहने दीजिए ! इतनी कम आयु में यदि विधवा न हो गई होती तो आज मेरी भरी-पूरी गृहस्थी होती। फिर नये सिरे से गृहस्थी बसानी चाही लेकिन भगवान् से सहा नहीं गया, इसके लिए मैं क्या कर सकती हूँ ?'

'इसी से तुम्हें जान लेना चाहिए कि यह भाग्य पर ही निर्भर है, शारदा !' राखाल ने कहा।

'शादी करने पर अगर आप गृहस्थी नहीं बसा पाते या घर बसाते ही वह मर जाती या और कोई बात होती, तब मैं आपकी यह बात मान लेती। लेकिन आपने तो आज तक इसके लिए कभी प्रयत्न नहीं किया।'

'प्रयत्न करने से क्या होता है? यह सब इतिहास-भूगोल पढ़ना और गलीचा-दरी बुनना छोड़कर अब तुम कुछ दिन 'लॉजिक' पढ़ो।' राखाल ने कहा।

'लेकिन मुझे 'लॉजिक' पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। मुझ से तर्क करके देखिए, कितनी जल्दी आपको परास्त कर देती हूं।'

हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए राखाल बोला—'मैं तुमसे हार मानता हूं देवी! एक तो स्त्री और उसके ऊपर से अल्प से अल्प विद्या, ऐसी दशा में कैसी भयंकर स्थिति होती है, वह बात मैं जानता हूं। 'तर्क-शास्त्र' को बनाने वाले ऋषि-महर्षि और विद्वान् अगर स्वयं आकर तर्क करें तो वे भी तुमसे हार जायेंगे। इस चर्चा को छोड़कर काम की बात करो। नई-मां अगर कलकत्ते का रहना छोड़कर तीर्थ-यात्रा करने जायेंगी तो तुम्हारा क्या होगा? क्या तुम भी नई-मां के साथ ही जाओगी?'

'मान लो; यदि जाऊं तो आप इससे प्रसन्न होंगे या अप्रसन्न?' शारदा ने हंसकर कहा।

'प्रसन्न न भी होऊं, लेकिन अप्रसन्न होने का मेरा क्या अधिकार है?' राखाल ने कहा।

'यदि आपको अधिकार मिल जाय, तब?'

राखाल ने हंसकर कहा—'यह इतनी छोटी वस्तु नहीं है! अधिकार तो इस ढंग की वस्तु है जो दान के रूप में मिलने पर बहुत निर्बल होती है, इससे उसकी शान भी नहीं रहती। अधिकार अपनी जगह पर ही अपना असर रखता है।'

शारदा ने कहा—'तो फिर मुझे भी अनधिकार चेष्टा की बात नहीं करनी चाहिए। लेकिन मेरे मां के साथ जाने से आप प्रसन्न न होंगे, यह स्पष्ट ज्ञात होता है।'

'लेकिन यह बात तुम्हारे ही लाभ के कारण मेरे मन में है, शारदा।'

इतना कहते-कहते राखाल का चेहरा गम्भीर हो गया, बोला—इसमें मेरा अपना कुछ अर्थ है, यह सपने में भी मत सोचना।'

उदास होकर दूसरी तरफ मुंह करके शारदा ने कहा—'दुनिया में किस आदमी का किस बात में मतलब है, यह मेरे लिए समझना मुश्किल है, देवता! और न मैं समझना ही चाहती हूं।'

'मैं असत्य नहीं कहता शारदा।' राखाल व्यथित होकर बोला।

हंसकर शारदा ने कहा—'मेरी पढ़ाई पूरी न होने तक मुझे स्कूल के होस्टल में ही रखने का मां का विचार है।'

'ठीक तो है।' राखाल ने कहा।

शारदा का मुंह उदास हो गया। कुछ भारी स्वर में बोली—'लेकिन मुझे तो यह स्कूल बिल्कुल पसन्द नहीं देवता!'

'ऐसा क्यों?' आश्चर्य से राखाल ने पूछा।

शारदा सिर झुकाकर चुप हो गई।

राखाल ने फिर कहा—'काम सीखने में तो तुम्हें अच्छा लगना चाहिए, खुशी होनी चाहिए।'

'मुझे तो कुछ भी सीखना पसन्द नहीं।' शारदा ने कहा।

'फिर तुम्हें क्या पसन्द है?' राखाल ने विस्मित होकर पूछा।

'यह बतलाने से कोई लाभ नहीं है। आप सुनकर व्यंग करेंगे!' उदास होकर शारदा ने कहा।

'तुम्हारे जीवन की सुख-दुख की बात को लेकर व्यंग करूं, मैं ऐसा नीच नहीं हूं, शारदा।' राखाल ने कहा।

'ऐसी बात नहीं है देवता! मुझे क्या अच्छा लगता है, यह बात मैं स्वयं नहीं समझ पाती। सिर्फ इतना ही कह सकती हूं कि मशीन के समान स्कूल जाना, पढ़ना-लिखना, दस्तकारी सीखना, इनकी जगह पर मुझे गृहस्थी का काम ही अधिक पसन्द है। घर को ठीक-ठीक करके सजाकर रखना और हर प्रकार से प्रबन्ध करना इससे बढ़कर मुझे और कुछ अच्छा नहीं लगता है, इन कामों के करने में मेरे उत्साह का जैसे अन्त नहीं। छोटे-छोटे बच्चे मेरे सबसे अधिक प्रसन्नता की चीजें हैं। नई-मां के उस घर में रहती थी तब

किरायेदारों के सारे बच्चे ही पास सो जाते थे। अपने हाथों से अपने आदमी की सेवा करने में कितनी तृप्ति और कितना आनन्द मिलता है, इस बात को नारी के अलावा और कोई नहीं समझ सकता।'

'अपना मकान न होने के कारण गृहस्थी की तरफ तुम्हारा इस प्रकार झुकाव है शारदा !' राखाल ने दुःखी होकर कहा।

शायद ऐसी ही बात हो। इसीलिए तो आपसे प्रार्थना करती हूँ देवता, कि आप शादी कर लीजिए। गृहस्थ हो जाइए। मैं आपकी गृहस्थी लेकर जीवित रहूँगी। दोनों प्राणियों की अपने तन-मन-प्राण से सेवा करूँगी। अपने हाथों से घर को ऐसी सुन्दरता से सजाकर रक्खूँगी कि कोई आकर देखे तो दंग रह जाय और इसके बाद बाल-बच्चों का सारा भार मैं अपने सिर पर लिये रहूँगी। यह जो सिलाई-बुनाई मैं इतना परिश्रम करके सीख रही हूँ, यह क्या मैं सचमुच ही अस्पताल में जाकर या लोगों के द्वार-द्वार भटककर नौकरी के स्वार्थ से सीख रही हूँ? ऐसा मत सोचिएगा देवता ! मैं आपकी शादी करवा कर रहूँगी। स्वयं लड़की पसन्द करूँगी। घर की व्यवस्था करूँगी। बाल-बच्चों को पाल-पोस कर आदमी बनाऊँगी। ईश्वर न करें ऐसा दिन आये, कभी यदि घर में अभाव आ पड़े, गरीबी आ घेरे तो किसी के आगे जाकर हाथ नहीं पसारने दूँगी, मैं स्वयं नौकरी करके जैसे भी हो, संभाल लूँगी !'

'क्या तुम यही सोचकर स्कूल में दाखिल हुई हो शारदा ?' राखाल ने बहुत उत्सुकता से पूछा।

राखाल के चेहरे की तरफ देखकर शारदा ने कहा—'आपके होते हुए क्या मैं सचमुच पेट के लिए दूसरे के द्वार पर जाकर हाथ पसार कर नौकरी करके रह सकूँगी। भला मैं क्यों जाऊँगी ?' इतना कहते-कहते उसका स्वर काँप उठा। शारदा के मुख पर पूरी दृष्टि डालकर राखाल धीमे स्वर में बोला—'शारदा, यह क्या कह रही हो, अपना सारा जीवन इसी तरह दूसरे की गृहस्थी बनाने में बिता दोगी ? अपना पति नहीं, अपनी सन्तान नहीं, अपना घर नहीं—क्या तुम अपने जीवन में प्रसन्न रह पाओगी ?'

'आपसे तर्क करके यह बात नहीं समझा सकती देवता ! मैं तो यही जानती हूं कि नारी के लिए उसका पति, सन्तान, गृहस्थी यही वस्तुएं उसके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा की वस्तु है। जो नारी वास्तव में इन चीजों को प्यार करती है, वह नारी कभी इनमें जरा भी कालिमा न लगने देगी। कोई भी नारी यह नहीं चाहती कि उसकी अपनी सन्तान के माथे पर मां-बाप के किसी कलंक की छाप लगे। मेरे जीवन में अपवित्रता का धब्बा लग चुका है। अपने पति, अपने पुत्र को हीन करके मैं स्त्री बनूं, इतनी स्वार्थी मैं नहीं हूं। पति को नहीं पा सकी, सन्तान को नहीं पा सकी, लेकिन जिन्हें हृदय से स्नेह करती हूं, भक्ति करती हूं, उनकी सन्तान क्या अपनी सन्तान से कम स्नेह की वस्तु है? उनका घर-द्वार क्या अपने घर-द्वार से कम प्रसन्नता का होगा?'

राखाल चुपचाप पाषाण-मूर्ति के समान सुनता रहा।

शारदा कुछ देर तक रुककर फिर बोली—'मैं पागल नहीं हूं देवता। आप शादी कर लीजिए। आपकी बहू को मैं प्यार कर सकूंगी, वही बहू मुझे सब कुछ देगी। अपना घर, अपनी सन्तान, अपने सम्पूर्ण सुख के सब सामान मैं उसी से पा जाऊंगी।'

राखाल चुप होकर एक ही भाव से विचारों में डूबता-उतराता रहा। अन्त में सिर उठाकर गम्भीरता से कहा—'तुम्हारे इतने अनुरोध से आज मैं सचमुच ही अपने भविष्य-जीवन के विषय में विचार करने पर लाचार हो गया हूं, इस समय जा रहा हूं, फिर इस पर विचार करूंगा। नई-मां को मेरे आने की सूचना दे देना।'

२६

तारक की शादी हो गई। विमल बाबू के साथ तीर्थ-भ्रमण करने के लिए सविता तैयार हो गई है। कल वे लोग रवाना हो जायेंगे। पुराने दीवान महादेव के अलावा एक दासी और मिसरानी भी साथ जायेगी। सविता ने

राखाल को बुलवाया और उसके हाथ में अपने पति का दिया हुआ मोहरबन्द गहनों का बक्स देकर कहा—'लो, ये रेणुका के जेवर हैं। वह यदि इन्हें न लेना चाहे तो तुम जगत् की मातृहीन लड़कियों के बीच इन्हें बांट देना! जिसके लिए इतने दिनों तक यह सब जोड़कर रक्खे रही, वही आज परम दरिद्र होकर जीवन काट रही है तो मैं अब और क्यों इस भार को लेकर मरती रहूं? डेढ़ लाख रुपये की जो सम्पत्ति रेणुका के नाम रजिस्ट्री कर दी है, यह लो उसके कागजात। इस सम्पत्ति को भी यदि ग्रहण न करे तो फिर तुम्हें जो अच्छा लगे वह प्रबन्ध इसका कर देना और यह कई हजार के कम्पनी के शेयर और यह है मेरी चूड़ियां वाला, वह सब शादी के अवसर पर पिता जी ने मुझे दिया था। तुम्हारी गृहस्थी जो बसाने आयेगी, यानी मेरी बहूरानी, उसके लिए मैं यह सब वस्तुएं दिये जा रही हूं, मेरी ओर से उसे भेंट है। यह उसकी सास की ओर से आशीर्वाद है, इसे तुम लौटाना मत, बेटा!'

दूर पर खड़ी शारदा राखाल के चेहरे की तरफ देख-देखकर मुस्कराती रही। राखाल ने एक बार उधर देखकर सिर नीचा कर लिया। फिर कुछ दुःखी होकर बोला—'मां! अपने लड़के की विद्या-बुद्धि को आप जानती हैं। फिर इतना भारी काम मेरे ऊपर छोड़े जा रही हैं? मैं क्या इन सबका प्रबन्ध कर पाऊंगा? तारक के सुपुर्द कर जातीं। वह वकील है, जमीन जायदाद के मामले समझ सकता है। उसके हाथों में प्रबन्ध रहने से अच्छा रहेगा।'

सविता ने कहा—'क्या तू मुझे निश्चिन्त होकर नहीं जाने देगा राजू?' इतना कहकर प्यार से बोली—'जिस उद्देश्य को लेकर मैंने एक दिन यह सब तुम्हारे बाबू जी के हाथों से अपने हाथों में लिया था, वह उद्देश्य तो पूरा नहीं हुआ बेटा! तुम्हारे बाबू जी का व्यापार उस दिन डूब रहा था, उसके साथ ही यह भी डूब जाता, तभी ठीक था। शायद, उस समय मैं आज से अधिक सन्तोष अनुभव करती।'

दुःखी होकर राखाल ने कहा—'लेकिन इस विषय में आप कुछ भी कहें

नई-माँ ! मैं इन सब रुपये-पैसों के मामलों में एकदम अनजान हूँ।'

धीमे स्वर में सविता ने कहा—'भयभीत मत हो बेटा, इस विषय में तुम जो कुछ व्यवस्था करोगे वही कल्याणकारी होगी।'

× × ×

सबसे पहले इन लोगों ने द्वारिका की यात्रा की, वहां से फिर भ्रमण करते-करते गुजरात, राजपूताना होते हुए आगरा पहुँच गये। विमल बाबू पूछने लगे—'सविता ! अब मथुरा-वृन्दावन चलोगी न ? यहां से बिलकुल निकट है···।'

सविता ने कहा—'श्रीकृष्ण जी की लीला-भूमि देखी, द्वारिका देखी, मथुरा-वृन्दावन ही अब क्यों शेष रहे—चलो न !'

मथुरा आकर वे लोग एक परिचित धनी की कोठी में ठहर गये। व्यापार के सम्बन्ध में उनका अच्छा परिचय था। सेठ ने अपने अतिथि भवन में रहने के लिए व्यवस्था कर दी और अपनी एक कार घूमने के लिए दे दी। उसी कार से यह लोग वृन्दावन पहुँचे। यहां आकर फिर सविता से पूछा—'सविता ! ब्रज बाबू से भेंट करोगी ?'

सविता ने कहा—'पागल हो गये हो ! हम लोग तो भगवान् का दर्शन करने आये हैं। दर्शन करके लौट जायंगे।' फिर कुछ देर चुप रहकर सविता ने कहा—'सुनते हैं, वृन्दावन में गोविन्द जी की आरती बड़ी सुन्दर होती है, क्या आरती देख कर नहीं चलोगे ?'

विमल बाबू बोले—'आरती देखकर ही चलेंगे।'

एक लम्बे-चौड़े मैदान के किनारे वृक्ष के नीचे मोटर खड़ी कर, दरी बिछाकर वे लोग विश्राम करने लगे। महादेव दरबान ने कार से चाय बनाने का सामान उतारकर स्टोव जलाया और पानी गर्म करने लगा। सविता चाय नहीं पीती, लेकिन बनाती वे ही हैं।

'महादेव ! आज तुम्हीं चाय बना दो। मैं घूमते-घूमते थक गई हूं।' सविता ने थके स्वर में कहा।

'अगर तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है तो फिर मन्दिर की भीड़-भाड़ में

जाने की क्या ग्रावश्यकता है ?' विमल वाबू ने कहा।

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। ग्रारती देखूंगी। सोच लिया है तो बिना देखे नहीं जाऊँगी।'

पश्चिम में सूर्य डूब गया। गाढ़े लाल रंग के प्रकाश से सारा नीला ग्रासमान ग्रौर विस्तृत मैदान लाल रंग का हो गया। विमल बाबू ने कहा—'चलो मन्दिर में चलें, देर हो जाने पर भीड़ के बीच से जाने में कठिनाई होगी।'

मानो सविता ने सोते से चौंककर कहा—'तो चलो।' फिर गाड़ी में बैठकर एकाएक जाने क्या सोचकर बोली—'देखो तो, हम लोग थोड़ी देर बाद ही मन्दिर जायेंगे। पहिले ग्रारती के शंख घड़ियाल बजने दो। भला ऐसी भी क्या भीड़ होगी ?'

विमल बाबू ने इसके उत्तर में कुछ न कहा। समय बहुत हो चुका था। इस समय मन्दिर के घण्टे-घड़ियाल बजने लगे। विमल बाबू ग्रादि ने मन्दिर में प्रवेश किया। गोविन्द जी की ग्रारती होनी ग्रारम्भ हो गई थी।

मूर्ति के ग्रागे खड़ी होकर सविता दर्शन कर रही थीं। तो भी जैसे उनकी दृष्टि मूर्ति पर स्थिर नहीं थी, ग्रास-पास दौड़ती-फिरती थी। एकाएक उन्होंने देखा कि उसी बरामदे के एक कोने में उनके स्वामी खड़े हैं, दोनों हाथ जोड़े एकटक भगवान् पर दृष्टि जमाये, ग्रोठ धीरे-धीरे कांप रहे हैं, जप कर रहे हैं ऐसा मालूम होता है।'

ग्रारती समाप्त हुई। भीड़ छँट गई। विमल बाबू ग्रागे बढ़कर ग्राये ग्रौर व्रज बाबू के चरण छुए। सांप के कांटे के समान पीछे हटकर वह बोल उठे—'गोविन्द ! गोविन्द ! यह क्या ? भगवान् के मन्दिर में मुझे प्रणाम किया। महानरक में डुबो दिया।' उनका शरीर कांप रहा था।

विमल बाबू सकपकाकर बोले—'मैं नहीं जानता था कि मन्दिर में किसी को प्रणाम नहीं किया जाता। क्षमा कीजिएगा।'

'गोविन्द, गोविन्द, ग्राप विमल बाबू हैं ? चलिए, चलिए, उधर ग्रांगन में तुलसी कुञ्ज की ग्रोर चल कर बैठेंगे।'

विमल बाबू ने कहा—'ग्रच्छा, चलिए।'

इसी समय व्रज बाबू भगवान् की मूर्ति के आगे लम्बे लेट कर बार बार अपने नाक-कान पकड़ कर शायद प्रणाम के अपराध की क्षमा माँगने लगे। सविता पृथ्वी पर पड़े स्वामी की ओर देख रही थीं। लम्बे प्रणाम के बाद व्रज बाबू सविता और विमल बाबू के साथ मन्दिर के एक कोने पर जाकर खड़े हो गये। व्रज बाबू की दाढ़ी मूछ और चेहरा घुटा हुआ है। पीछे की ओर सफेद बालों की चोटी झूल रही है। गले में तुलसी-माला है। माथे पर तिलक है, हाथ में सुमरनी और कन्धे पर हरिनाम का दुपट्टा। गोरा-लम्बा शरीर बुढ़ापे के कारण आगे को थोड़ा झुक गया है। विमल बाबू ने कहा—गोविन्द जी ने इस दीन हीन पर बहुत कृपा की है। व्रज भूमि में मैं आ गया हूँ; व्रज रेणुका जिसने पाई है, यमुना-स्नान किया है, गिरि-गोवर्धन देखा है—उसके लिए फिर क्या कहीं अकल्याण है? वृन्दावन में तो सब प्रकार कुशल है। संसार में मेरे लिए अब कोई कामना शेष नहीं रही।'

सविता ने आगे बढ़कर कहा— राजू के मुँह से सुना था कि तुमने शायद यहाँ आकर वैष्णव बाबा जी से दीक्षा ले ली है?' क्या दिन-रात उसी को लेकर निमग्न रहते हो?'

कुछ रुक-रुक कर उन्होंने कहा—'तुम क्या जानो नई बहू, मेरे जीवन के शेष दिनों में गोविन्द जी ने मुझे अपने चरणों में बुला लिया है, बहुत भारी दया की है। यहाँ आकर सचमुच ही दुनिया का सब दुःख चला गया।'

सविता ने विस्मित होकर व्रज बाबू की ओर देखकर कहा—'तुम्हारी यह बात तो घुड़दौड़ में सब कुछ हार कर मदिरा पीकर नशे में चकनाचूर हो जाने वाले खिलाड़ी के समान है—इस आनन्द का मूल्य जानते हो?'

मन्दिर में कीर्तन मण्डली गा रही थी—प्रेमानन्द अमृत का सागर डूबे हरि भक्त तृप्त हुए...।

व्रज बाबू के दोनों नेत्रों से झर-झर आँसू गिरने लगे। विह्वल होकर बोले—'नई बहू, अब यही प्रार्थना करो कि इस मन्दिर का नशा कभी न उतरे!'

'और तुम्हारी बेटी? मेरी रेणुका!' गम्भीर स्वर से सविता ने कहा—'वह कहाँ है?'

'कौन ? मेरी लड़की ? अब अधिक अपना बेगाना न करो नई बहू, यहाँ तो सभी तुच्छ हैं —अपना कहलाने वाला कोई भी नहीं। यहाँ तो केवल व्रज-नन्दन श्रीकृष्ण ही अपने हैं—वे ही सब कुछ हैं। मैंने रेणुका को उन्हीं के चरणों में अर्पित कर दिया है। जब तक उसे अपना करके मानता रहा, सोच विचार में भटकता रहा। अब तो उन्हीं के हाथों में तुम्हारी रेणुका को सौंप कर निश्चिन्त हो गया हूँ। वे जो कुछ प्रबन्ध करेंगे उसे तोड़ने का साहस किसी में नहीं है। हृदय में बैठ कर वे हँस हँस कर जिस ओर को अँगुली हिलाते हैं, उसी तरफ का पासा पलट जाता है। हम उस कठपुतली वाले की कठपुतलियाँ हैं। मनुष्य अपनी इच्छा से कुछ कर ही नहीं सकता, उसी की इच्छा सब कुछ है।'

न जाने सविता क्या उत्तर देने जा रही थी कि सहसा यह आवाज आई—'बाबू जी···!' इस आवाज से चौंक कर सविता ने पीछे मुड़ कर देखा तो रेणुका, उसका मुख उदास हो गया है, बाल रूखे हैं, मुख पर दरिद्रता का चिह्न दिखाई दे रहा है। शरीर पर आधी मटमैली वृन्दावनी धोती है, उसके गले में भी तुलसी की माला है, मस्तक पर चन्दन का तिलक है। बेटी को देख कर सविता पागल-सी हो गई। लेकिन रेणुका ने सविता की ओर बिना देखे ही पुकारा—'बाबू जी घर चलिए, बहुत रात हो गई।'

'तूने अपनी माँ को नहीं पहचाना रेणुका?' उन्होंने पूछा।

'पहचान लिया है। लेकिन मन्दिर में प्रणाम नहीं किया जाता।' माँ के चेहरे की ओर एक बार शान्त दृष्टि से देखकर उसने पिता की ओर घूम कर कहा—'चलिए बाबू जी, दिन भर एकादशी का व्रत रह चुके हो, अब कब प्रसाद लोगे?'

माँ के प्रति बेटी का ऐसा पराये जैसा व्यवहार देखकर वह मन-ही-मन बहुत व्यथित हुए। शायद इसीलिए सविता से कहा—'नई बहू, तुम एक दिन के लिए गोविन्द जी की कुटी में सेवा करने के लिए ···।'

एक बार रेणुका के चेहरे की ओर देखकर सविता ने उनसे कहा—'नहीं! मुझ जैसी अपवित्र स्त्री के लिए यहाँ फिर आना ठीक नहीं है।'

व्रजबाबू ने दाँतों से जीभ काटकर कहा—'गोविन्द, दीनदयाल, दीनबन्धु

तो पतितपावन हैं। वह तो आश्रयहीन के आश्रयदाता हैं, नई बहू !'

दिल के उमड़ने वाले रुदन को किसी प्रकार रोककर सविता ने कहा—'तोते के समान यह सब केवल मुख से बोली जाने वाली बातें हैं, तुम लोगों का धर्म तुम लोगों को कैसे बना देता है, यह बात तुम लोग अपने नेत्रों से नहीं देख सकते। जिस धर्म में क्षमा नहीं है, वह धर्म अधर्म से क्या कम है ?' इतना कह कर सविता तेज चाल से मन्दिर से बाहर चली गई। पागल की भाँति व्रज बाबू से विमल बाबू ने कहा— मुझे आपसे कुछ कहना है, आपको कब अवकाश मिलेगा।

'जब आप कहें।'

'अच्छी बात है, मैं कल दोपहर को आऊँगा। आपका घर···?'

'मन्दिर से बाहर निकल कर बाईं ओर के रास्ते से थोड़ी दूर जाने पर दाहिने हाथ की ओर एक गली गई है। मैं वहीं रहता हूं। बाबा घनश्याम का कुञ्ज पूछने से मालूम हो जायगा।'

'बाबू जी, कल तो गुरु महाराज के कुञ्ज में अखंड कीर्तन होगा, वैष्णव सेवा होगी। कल तो तमाम दिन हम लोग वहीं रहेंगे।' रेणुका बीच में ही बोल पड़ी।

व्रज बाबू ने कहा—तुमने अच्छी याद दिला दी, बेटी ! विमल बाबू, कल के लिए क्षमा कीजिए। कल तमाम दिन मैं अपने गुरुदेव बाबा बैकुण्ठदास की कुटी में रहूँगा। परसों प्रातःकाल आप आ जायें तो···।

'अवश्य ! परसों प्रातःकाल ही मैं आपके पास आऊँगा। प्रणाम।'

'गोविन्द, गोविन्द !'

कार में बैठकर गद्दे पर शरीर डालकर सविता ने कहा—'अब और जगह मारे-मारे फिरना मुझे पसन्द नहीं। अब आराम करना चाहती हूं, दयामय !'

'क्या वृन्दावन में ही रहना निश्चय किया है ?' विमल बाबू ने पूछा।

'नहीं ! यहाँ तो मुझे अब एक पल भी रहना मुश्किल हो रहा है ! मुझे सिंगापुर ले चलो।' व्यथित स्वर में सविता बोली।

'यह क्या कह रही हो सविता ?'

'हाँ, कल प्रातः ही यात्रा की तैयारी कर लो। एक दिन का भी विलम्ब

न हो,' सविता ने कहा।

'इस प्रकार अधीर न होओ सविता, कल तो जाना हो नहीं सकेगा। रेल की तो यात्रा है नहीं, जहाज से जाना होगा। पहले कलकत्ता जाना पड़ेगा इसके अलावा मैंने व्रजबाबू को अभी वचन दे दिया है कि परसों प्रात:काल उनसे अवश्य भेंट करूंगा इसलिए कल रुके बिना तो काम चलेगा नहीं। हां, परसों रात की ट्रेन से हम लोग अवश्य मथुरा छोड़ सकेंगे।'

'नहीं, मुझसे यह न हो सकेगा। यहां तो अब मेरी सांस घुट रही है। अब तुम किसी प्रकार मुझे इस देश से सदैव के लिए कहीं दूर विदेश ले चलो। बहुत दूर, जिस जगह रीति नीति, समाज, मानव सब कुछ और प्रकार का हो। मैं अपना सब अतीत वहां धो डालूंगी!'

विमल बाबू ने कोई उत्तर न दिया। सविता के मन की दशा समझकर वे मौन हो गये।

दूसरे दिन प्रातः विमल बाबू ने निद्रा से जागकर देखा, सविता के कमरे के द्वार अभी तक बन्द हैं। विमल बाबू सदा ही विलम्ब से उठते हैं, पर सविता की प्रातः ही उठने की आदत है। इतना विलम्ब हो जाने पर सविता के द्वार बन्द देखकर वे कुछ चकित हुए, द्वार के सामने आकर खड़े हुए और सोचने लगे कि धक्का दूं या नहीं कि ठीक इसी समय द्वार खोलकर सविता बाहर आ गई। दोनों नेत्र लाल, रात भर जागने की क्लान्ति और कालिमा चेहरे पर और नेत्रों में छाई हुई थी मानो सविता रात भर योंही पड़ी रही थीं। विमल बाबू ने संतप्त दृष्टि से उनकी तरफ देखा लेकिन कुछ नहीं पूछा।

कुछ लजाकर सविता ने कहा—'देखती हूं, दिन बहुत चढ़ आया। तुमने अभी तक चाय नहीं पी होगी। मैं अभी तैयार करती हूं, तनिक स्नान करके कपड़े बदल लूं।'

'चाय ठाकुर बना देगा तुम विश्राम करो।'

'नहीं, वह ठीक प्रकार से नहीं बना सकेगा। मुझे अधिक समय न लगेगा।' और इसके बाद वह फिर बोली—'रात में मुझे ठीक तरह नींद नहीं आई। कल तो मेरा मस्तिष्क ऐसा बिगड़ गया कि रात की नींद हराम हो गई। अभी स्नान करके आती हूं।' कहकर तौलिया ले फिर सविता स्नानागार की ओर

चल दी।

× ×

चाय ढालते-ढालते सविता ने निश्चित भाव से कहा—'कल मैंने अच्छी तरह विचार कर उनके विषय में कर्त्तव्य निश्चय कर लिया है। समझ गये न

'किसके विषय में ?' विमल बाबू ने पूछा।

'उन्हीं लोगों के विषय में ···।'

यह 'उन्हीं' का प्रयोग किसके लिए किया गया है, विमल बाबू समझ गये। पूछा—'क्या तय किया है सविता ?'

'मैंने सिंगापुर ही जाना तय किया है।'

'मेरे विचार से अभी कुछ दिन और तीर्थ भ्रमण किया जाय, उसके बाद भी अगर मन करे तो सिंगापुर चलेंगे। ठीक रहेगा न ?'

'नहीं, अब अधिक तीर्थ-यात्रा नहीं करूँगी। मनुष्य के हाथों से बनाई मूर्तियों के खेल-तमाशे इन तीर्थों में भटकने से हृदय की भारी जिज्ञासा का उत्तर कहीं नहीं मिलता। इस तमाशे में और चाहे किसी का मन भूला रहे, पर जिसे सत्य की चाहना है उसका मन भूला नहीं रह सकता। मैं अब विश्राम चाहती हूँ, विमल बाबू !'

'परन्तु जिस स्थान पर तुम विश्राम की इच्छा कर रही हो, यदि उस जगह भी तुम्हारी इच्छा पूरी न हो सकी तब क्या होगा ? तुम्हारे हाथों से, जीवन के अन्त में, ईश्वर ने जो कुछ मेरे पास भेजा है, वह मामूली नहीं है। जो फूल टहनी से टूटकर नीचे आ गिरा, वह फूल फिर कभी लौटकर टहनी में नहीं लग सकेगा। मृग-तृष्णा के समान मारे-मारे फिरना अब व्यर्थ है। इस बात को मैंने अच्छी प्रकार से जान लिया है।' बहुत सावधानी से सविता ने कहा।

'न हो तो सिंगापुर तार दे दूँ, सिंगापुर वाले जहाज में दो कैबिन हमारे लिए रिजर्व हो जायेंगे ?'

सविता ने सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी।

× × ×

अगले दिन सवेरे विमल बाबू कार में बैठकर मथुरा से वृन्दावन को चलने लगे तो सविता से बोले—'उन्होंने तुम्हें भी बुलाया है। यदि चलो, तो मैं सम-

भता हूँ, कोई हानि न होगी।'

इसके लिए सविता तैयार न हुई। हारकर विमल बाबू अकेले ही वृन्दावन पहुँचकर व्रजबाबू का घर खोजकर उनके डेरे पर पहुँचे। वहाँ देखा कि रेणुका एक दिन पहले की रात से हैजे से बीमार पड़ी है। इलाज और सेवा का कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। केवल हरिनाम का कीर्तन सुनाया जा रहा है। रेणुका के पिता भगवान् के आगे लम्बे लेटे हुए हैं। बीच-बीच में वहाँ से उठ मृत्यु के मुख में पड़ी बेटी के मुंह में भगवान् का चरणामृत डाल जाते हैं और फिर दुःखी मन लिये भगवान् की मूर्ति के आगे जा लेटते हैं। उनके गुरुदेव बाबा बैकुण्ठदास की कुटी में सूचना भेज दी गई है। उन्होंने आश्रम से एक वैष्णवी दासी को भेज दिया है, पर वह इस विषय में कुछ भी नहीं जानती। अर्धचेतना कन्या के प्यास लगने पर पानी और बाबा बैकुण्ठदास की दी हुई दवाई और भगवान् का चरणामृत दिया जा रहा है। रोगिणी की चारपाई और वस्त्रों की दशा भी उनकी दृष्टि से छिपी नहीं रही। यह दशा देखकर वह तुरन्त सविता को लाने के लिए मथुरा लौट चले। रेणुका की दशा चिन्ताजनक हो गई है, यह समझने में उन्हें देर न लगी। सूचना पाकर सविता जैसे पत्थर सी हो गई। विमल बाबू अधिक विलम्ब न करके उन्हें साथ लेकर फिर वृन्दावन की ओर चल दिये। कार में बैठी सविता के चेहरे की ओर उस समय देखा नहीं जा रहा था। भूकम्प सा उनके हृदय में आ रहा था। एकाएक पानी में डूबते आदमी की तरह छटपटा कर वह बोलीं—'ओह! गाड़ी इतने धीरे-धीरे क्यों चल रही है? मेरा दम घुटा जा रहा है।'

विमल बाबू ने दो-एक सान्त्वना की बातें कहीं भी पर सविता के कानों में आवाज नहीं पहुँची। सविता फिर एकाएक कह उठी—'दयामय, तुमने तो अनेक देशों के अनेक इतिहास पढ़े हैं। स्वयं माँ अपनी बेटी की इतनी बड़ी दुर्गति का कारण हुई है, ऐसा कहीं पढ़ा है?'

विमल बाबू ने कोई उत्तर न दिया। मार्ग में एक जगह, कुएं के पास पानी भरने के लिए कार रुकी। किनारे के किसानों की झोपड़ियों से बालकों के कातर क्रन्दन की ध्वनि आ रही थी। सविता चौंक कर सिहर उठी और व्यथित कण्ठ से कहने लगीं—'ओह! इन बालकों को क्या हुआ है? क्यों रो

रहे है ? सुनते हो दयामय !'

विमल बाबू सविता की ऐसी दशा देखकर बहुत दुःखी हुए। बोले—'कुछ बात नहीं है। छोटे बच्चे तो ऐसे रोते ही रहते हैं। लेकिन सविता, तुम यदि चिन्तित होओगी तो वहाँ पहुँचकर रोगी की सेवा शुश्रूषा कैसे कर सकोगी ?'

सविता ने घबराकर कहा—'नहीं, मैं जरा-भी नहीं घबरा रही हूँ। जो कुछ है, सब वहीं पहुँचकर एक बार उसे छाती से लगाकर ठीक हो जायगा। वह चाहे मुझ पर क्रोध करे; चाहे घृणा करे। घृणा करने की ही बात है। मैंने चाहे कैसी ही भूल क्यों न की हो, फिर भी मैं उसकी माँ हूँ। इस बात को क्या अब वह समझ नहीं सकेगी ? अवश्य समझ लेगी, देख लेना। यह उसका क्रोध नहीं, घृणा नहीं; माँ के ऊपर अभिमान है। बेटी बचपन से अभिमानिनी है।'

विमल बाबू एक लम्बी साँस लेकर दूसरी ओर देखने लगे। बहुत जल्द यह लोग मकान पर पहुँच गये। मकान के सामने अर्थी का सामान और गेरुआ वस्त्रधारी वैष्णवों की भीड़ देखकर विमल बाबू ने शंकित नेत्रों से सविता की ओर देखा ! स्थिर, धीर मुख-मण्डल पर अब और व्यथा नहीं थी ! विमल बाबू चौंक उठे। याद आया, जिस दिन पहली बार उन्होंने सविता को देखा था उस दिन भी इसी प्रकार की वेश-भूषा थी, दुःख की छाया लिये हुए थी।

सविता ने अधीरता प्रकट नहीं की। कार से उतरकर सीधी घर में घुसती चली गई। शोक से व्रज बाबू अश्रु-मग्न कण्ठ से बोले—'नई-बहू, तुम आई हो ! देखो तो, ये सब रेणुका को यहाँ से ले जाने के लिए जिद कर रहे हैं। मैंने इनसे कहा है—'यह नहीं हो सकता। जिसकी सम्पत्ति है उसे आ जाने दो, इसके बाद तुम्हारा जो मन हो सो करना। तुम्हारी धरोहर मैं सुरक्षित नहीं रख सका, उसे खो दिया है ! मुझे क्षमा कर दो सविता ! मुझे क्षमा कर दो !'

सविता चुप थीं। कलेजा थामकर धूल भरे आँगन में पड़े बिस्तर की ओर देखती रहीं। जमीन पर मैले कपड़ों में लिपटाकर ठण्डा शरीर पड़ा

हुआ है। आस-पास पानी का लोटा, चरणामृत-पात्र, दवाइयां आदि हैं। सविता ने आगे बढ़कर कांपते हाथों से शव के मुंह पर से वह मैला कपड़ा हटा दिया। अत्यन्त शीर्ण, विवर्ण, रक्तहीन मुख है, आंखें भीतर को धंस गई हैं। चेहरे और गले की हड्डियां ऊपर को उभर आई हैं! स्नेहमयी माता के नेत्रों में उस समय मानो सारी दुनिया की वेदना आकर इकट्ठी हो गई थी। रेणुका के ठण्डे पड़े प्राण-हीन शरीर के शीतल मस्तक का एक बार चुम्बन लिया। फिर शव को ले जाने वाले आ गये! यह देखकर सविता स्वयं ही अलग हटकर खड़ी हो गईं। लेकिन बूढ़े पिता अपने सम्पूर्ण जीवन का संयम और साधना और भगवद्ज्ञान भूलकर आज बालक के समान रो-रोकर मिट्टी में लोटने लगे! पुकारते रहे—'बेटी, अपने इस बूढ़े बाप को किसके भरोसे छोड़े जाती हो, रेणुका?'

× × ×

कई दिन व्यतीत हुए। रेणुका के मरने का समाचार पाकर कलकत्ते से राजू आ गया, ब्रज बाबू की छोटी पत्नी आ गई। इन्हीं इने-गिने दिनों के बीच, सविता के शरीर पर आकस्मिक बुढ़ापे के चिह्न दिखाई देने लगे। सूखे ओठों पर लावण्य बिल्कुल न रहा। शोक में डूबे पति की सेवा का समस्त भार अपने ऊपर लेकर सविता दिन-रात इसी काम में लगी रहने लगीं।

घर में आंगन में बैठकर सविता खीलें बीन रही थीं। सिर पर की धोती बहुत मैली और जगह-जगह पर तेल, घी के धब्बे लगी हुई थी। माथे की मांग उल्टी सीधी, टेढ़ी-मेढ़ी हो गई थी। इसी समय विमल बाबू आकर उपस्थित हुए।

'आप कब तक यहां रहेंगे?'

'जब तक तुम कहो।' विमल बाबू ने उत्तर दिया।

'छोटी बहू आ गई है, उनके आने से पहिले ही मुझे यहां से चला जाना चाहिए था। आपका क्या विचार है?'

'मुझसे अच्छा तो स्वयं ही विचार सकती हो।'

'लेकिन, यह सब उन्हें निश्चिन्तता से नहीं रहने देंगे। यहां से उन्हें कलकत्ते ले जाने के लिए ही ये लोग यहां आये हैं।'

'इसमें क्या हानि है ?' विमल बाबू ने पूछा ।

'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । ऐसे असहाय रोग-शोक से जीर्ण व्यक्ति को उसके अन्तिम सहारे वृन्दावन से अलग कर दने के समान और क्या बेदर्दी हो सकती है ? हृदय की पुकार को यदि सुन पाती तो छोटी बहू यहीं रहकर स्वामी की सेवा करती ।' विमल बाबू ने कोई उत्तर न दिया ।

सविता ने फिर कहा—'इस धूल-भरे देश में तुम्हें खूब दुःख हो रहा है, मुझे मालूम है । अब तुम लौट जाओ । मैं यहीं रह जाऊँगी ।'

'ठीक है । कहकर विमल बाबू ज्योंही चले कि पीछे से सविता ने पुकारा—'सुनो तो एक बात का उत्तर देकर जाना ।' विमल बाबू ठहर गये ।

सविता फिर कहने लगीं—'जन्म-जन्मान्तर में भी क्या मुझे इसी क्षमा हीन ग्लानि को सहन करना होगा ?'—गला उनका रुंधा हुआ था, कहने-लगीं—'रेणुका ने एक दिन मुझे 'माँ' कहकर पुकारा था, अपने हाथों से मेरी सेवा की थी—इतने पर भी क्या मेरे मुंह का कलंक नहीं छूटा था ?'

'तुम्हारा हृदय ही इस बात का सही उत्तर दे सकता है सविता !'

'अच्छा, एक बात और पूछनी है । मानव के हृदय का एकमात्र अवलम्ब जब टूट जाय—मानव तब किस प्रकार जीवित रहेगा, किसके सहारे रहेगा ?'

'मेरे ख्याल से तुमने जो खो दिया है, उसे तुम संसार के अभागे लोगों के बीच में ढूंढ़कर कहीं पा सकोगी ।'

सविता का विचार ठीक निकला । छोटी बहू अपनी एक बहिन को साथ लेकर पति को अपने साथ कलकत्ते ले जाने के लिए आई थी । इस विषय में ब्रज बाबू के कुछ कहने के पूर्व ही सविता ने कहा—'उन्हें ऐसी हालत में कलकत्ता ले जाना ठीक नहीं । जीवन का अन्तिम कष्टदायक समय वृन्दावन में ही काटने के लिए इन्हें रहने दो ।'

'यहाँ रहकर एक मानव ने तो बिना इलाज के अपने प्राण गवाँ दिये ! अब यदि ये बीमार पड़े तो कौन देख-भाल करेगा ?'

'सेवा करनी चाहो तो तुम स्वयं यहाँ रह सकती हो । उन्हें यहाँ से ले नहीं जा सकोगी ।' सविता ने उत्तर दिया ।

'आपको मैं पहिचान नहीं पाई ।'

'मैं तुम्हारी ससुराल की एक स्त्री हूँ—सम्बन्ध की। तुमसे मुझसे कभी मिलाप नहीं हुआ। तुम मुझे पहिचान न पाओगी।'

छोटी बहू में आसानी से कोई बात समझ जाने की बुद्धि न थी। कहने लगी—'भैया की राय नहीं थी कि मैं वृन्दावन आऊं। बहुत हाथ-पांव जोड़ने पर दो-चार दिन के लिये ही उन्होंने मुझे भेजा है। स्वामी को यहां से ले जाना ही मेरे लिए उचित है।'

'लेकिन, उनके लिए यह बात हर प्रकार के अनुचित है।'

'यदि ये मेरे साथ नहीं जायंगे तो यहां देख-भाल कौन करेगा ? हम लोगों को कल तक अवश्य लौट जाना चाहिए।'

'जिस समय लोगों में से कोई भी उनका अपना नहीं था, उन्हें पहिचानता भी नहीं था, उस समय जिस व्यक्ति पर उनकी सम्पूर्ण देख-भाल का भार था, उस व्यक्ति ने फिर उनका भार अपने ऊपर ले लिया है। अपने भैया से बता देना।'

'वह व्यक्ति कौन है ?' छोटी बहू ने उत्कण्ठा से प्रश्न किया।

'पहचान न पाओगी, बहन। अपने भाई से कहोगी तो वे पहचान लेंगे।'

छोटी बहू बहिन के साथ कलकत्ता लौट गई। विमल बाबू ने भी सिंगापुर लौटने की तैयारी की। जाने से पूर्व सविता ने आकर उन्हें नमस्कार करके अपराधिनी के समान कहा—'तुम मुझे कुछ गलत न समझ बैठना। जीवन में बार-बार आश्रय से भ्रष्ट होना ही शायद मेरे भाग्य में लिखा है।'

उत्तर दिये बिना ही विमल बाबू की कार वृन्दावन की लाल धूलि उड़ाती हुई सविता की दृष्टि से ओझल हो गई। स्तब्ध-मूर्ति सविता के रक्तहीन मुखमण्डल की ओर दृष्टिपात कर राखाल ने शंकित स्वर में पुकारा—'मां ! मां ! नई-मां···!'

राखाल की आवाज सुनकर मुख घुमाकर सविता अचानक उच्छ्वसित क्रन्दन करके धरती पर लोटने लगी—'राजू ! जब रेणुका ने ही मुझे क्षमा नहीं किया, उसी दिन मैंने यह अच्छी प्रकार समझ लिया था कि अब संसार में किसी से भी मैं क्षमा नहीं पा सकूंगी।'

कई माह पश्चात् समुद्र पार से एक पत्र सविता को मिला। विमल बाबू

ने लिखा था—

'रेणुका की माँ !

तुम्हारा तीर्थ-भ्रमण समाप्त हो गया। मैं अब पृथ्वी-भ्रमण करने जाता हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में तनिक भी दुःख या क्षोभ है, यह सन्देह मन में मत करना। तुम्हारे साथ हुए मेरे परिचय का मेरे जीवन में बहुत बड़ा मूल्य है। मैं जीवन में कभी भी घर न बना पाया। केवल धन-दौलत ही इकट्ठा कर सका हूँ। दौड़-धूप में ही यौवन के दिन बीत गये और आज प्रौढ़ता भी समाप्त हो रही है। जीवन के इस अन्तिम समय में घर का आनन्द तुमसे पाकर मैं तृप्त हो गया। इसके लिए मैं सदा कृतज्ञ रहूँगा।'

'सविता, तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो गम्भीर सहानुभूति और श्रद्धा है, उससे मुझे विश्वास है कि मेरी यह नौका किनारे से कितनी भी दूर क्यों न रहे, लेकिन इसका लंगर तुम्हारे पास ही रहेगा। जब कभी भी तुम्हें मेरी आवश्यकता हो तुरन्त तार भेज देना। यदि जीवित रहा तो दुनिया के किसी भी कोने से तुम्हारे पास चला आऊँगा।'

'मुझे यह भी मालूम है कि आज मेरे लिए संसार में एक ऐसा व्यक्ति भी है, जो अन्त समय आने पर, सारी बाधाओं को तुच्छ करके मेरे पास आ सकता है। जीवन की यही अन्तिम सान्त्वना है। क्या यह मेरे जीवन के लिए सबसे बड़ा अवलम्ब नहीं है?'

* समाप्त *